

सूर्य जयंती विशेषांक

ISSN-0971-8397



विकास को समर्पित मार्शिक योगिया

वर्ष : 50 • अंक : 10

जनवरी 2007

मूल्य : 15 रुपये



1957 से 2007

रोजगार समाचार

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान/एसएससी/यूपीएससी/
आरआरबी/सशस्त्र सेनाओं/बैंकों में रोजगार की तलाश में हैं?

तो अब और तलाश करने की आवश्यकता नहीं

रोजगार समाचार खरीदें और रोजगार के अनेक अवसरों/दाखिलों/
परिणामों के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त करें।



हमारी वेबसाइट देखें :

www.employmentnews.gov.in

पाठक वेबसाइट के माध्यम से रोजगार संबंधी सूचनाएं व अपने कैरियर
संबंधी सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

रोजगार समाचार

ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-5, आर के पुरम, नई दिल्ली
फोन-26182079, 26107405



प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

योजना



वर्ष : 50 अंक 10

जनवरी 2007 पौष-माघ, शक संवत् 1928

कुल पृष्ठ : 108

प्रधान संपादक

अनुराग मिश्रा

कार्यकारी संपादक

राकेशरेणु

उप संपादक

रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

कमरा नं. 538, योजना भवन, संसद मार्ग,

नवी दिल्ली-110 001

दूरभाष : 23096738, 23717910

23096666/2508, 2511

टेलीफँस : 23359578

ई-मेल : yojana@techpilgrim.com

www.publicationsdivision.nic.in

a) dpd@nic.in

b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)

एन.सी. मजूमदार

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)

जगदीश प्रसाद

दूरभाष : 26100207, 26105590

फैक्स : 26175516

आवरण - सी.बी. पटेल

योजना हिन्दी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उडिया, पंजाबी, तेलुगु तथा डर्बू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नवी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिये मनीआईर/डिमांड ड्राफ्ट/योस्टल आईर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें :

व्यापार प्रबंधक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, इंस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नवी दिल्ली-110 066 टेलीफँस : 26100207, 26105590

चांद की दरें : वार्षिक : 70 रु. द्विवार्षिक : 135 रु.; त्रिवार्षिक : 190 रु; विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश : 500 रु.; यूरोपीय एवं अन्य देश : 700 रु.

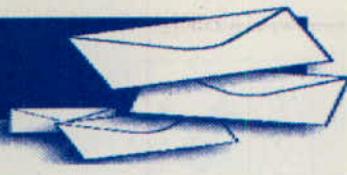
'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिये 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

इस अंक में

● संपादकीय	खुशबूत सिंह	5
● योजना क्या है	वी.टी. कृष्णमाचारी	6
● योजना के मूल तत्व	-	7
● संदेश और शुभकामनाएं	-	8
● दूसरी योजना पर मेरे विचार	मीनू मसानी	10
● इस विभाग का नाम क्या रखा जाए	सत्यदेव नारायण सिन्हा	12
● सहकारी खेती के आर्थिक पहलू	श्रीमनारायण	14
● पंचवर्षीय योजनाएं और कृषि उत्पादन	वी.टी. कृष्णमाचारी	16
● भारत के आर्थिक विकास का बाह्य रूप	मनमोहन सिंह	18
● इंजीनियरिंग शिक्षा में प्रगति	ए.एन. खोसला	20
● भारत में आय का पुनर्विभाजन	ए.एम. खुसरो	22
● जीना है तो मिटा दो यह जात-पात	सत्यराम	25
● कहानी : पिरश्चुली आमा	शैलेश मठियानी	27
● समय पर पूरी हों परियोजनाएं	मनमोहन सिंह	30
● बैंक राष्ट्रीयकरण : समाजवादी समाज की दिशा में	रुद्र दत्त	32
● बैंकों का राष्ट्रीयकरण क्यों	इंदिरा गांधी	35
● भारत में कंप्यूटर युग का आरंभ	हरीश अग्रवाल	37
● भारत में टेलीविजन	-	38
● ऊर्जा चुनौती का मुकाबला कैसे करें	जगजीत सिंह	40
● बीस सूनी कार्यक्रम और ग्रामीण विकास	शंकर दयाल शर्मा	42
● ग्रामीण बैंक और कृषि विकास	देवीदत्त पंत	43
● संपूर्ण कांति की परिकल्पना	लोकनायक जयप्रकाश	44
● विश्वविद्यालय शिक्षा	शिवमंगल सिंह सुमन	46
● सार्वजनिक बैंकों की कार्यप्रणाली	एस.एल.एन. सिन्हा	47
● हप्तारे ये राजनीतिक खेल	मधु दंडवते	51
● काला धन: हम इसे सीमित करने का प्रयास करें	कमल नयन काबरा	52
● धर्म जड़ता को सहारा देता है	इरफान हबीब	54
● विकल्प जो वास्तव में करारग हो	ज्योति बसु	56
● और भी अच्छे तरीके से आगे बढ़ा जाएं	ए.ल.के. झा	58
● क्या विविधता हमारी शक्ति है	एस.एम.एच. बर्नी	61
● योजना संपादक सम्पेलन: एक रिपोर्ट	-	63
● हिंदी का सवाल भारतीय भाषाओं का सवाल है	मस्तराम कपूर	65
● भूमि सुधार एक डॉक्टिकोण	-	68
● सामाजिक परिवर्तन में अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी की भूमिका	यू.आर. राव	71
● फिल्म और सामाजिक विकास	अनिल सारी	74
● अवमूलन भारतीय मुद्रा का	एन.पी. माहेश्वरी	77
● रुपये की पूर्ण परिवर्तीयता	श्याम सुंदर सिंह चौहान	79
● सूचना प्रौद्योगिकी और इसके प्रयोग	शेफाली एस. दास	80
● वायदों का सच	ज्यां द्रेज	82
● शोधाधारा : पानी और जमीन पर चलने वाली साइकिल	-	85
● झोरेखा जम्प-कैश्मीर का : छात्रों के साथ राष्ट्रपति	-	87
● शीर्ष लोक सेवा में प्रतिस्पर्धा ज़रूरी	अरविंद पनगढ़िया	89
● सूचना के अधिकार की लड़ाई	अरुणा राय	91
● अनुकरणीय पहल : सुखदाही सफलता	संजय त्रिपाठी	94
● कृषि का नवीकरण और कृषि जनित समृद्धि	एम.एस. स्वामीनाथन	96
● भारतीय कृषि : समस्याएं एवं संभावनाएं	योगेन्द्र के. अलघ	98
● मंथन : विशालता का बोध	सरोज कुमार शुक्ल	99
● इतिहास, उत्तरविद्या और कमियां	एल.सी. जैन	100
● योजना भवन और योजना की यादें	एच.बाई. शारदा प्रसाद	102
● राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक	देवेन्द्र कुमार	104



आपकी राय



बेकारों पर टैक्स क्यों?

हमारा ही एक गुरीब देश ऐसा है जहां सरकार बेकारी पर भी टैक्स लगाती है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन तथा अन्य अनगिनत स्टेट सर्विस कमीशंस तथा रेलवे सर्विस कमीशंस द्वारा एक जगह की पूर्ति के लिये हजारों बेकारों से फीस के रूप में टैक्स वसूल किया जाता है। क्या कोई ऐसी योजना है, जिसमें गुरीबी पर टैक्स न लगे? हाँ, है, और वह है केवल गृह उद्योग। इस ओर यदि आप चाहें तो कुछ ध्यान दिला कर उचित कार्यवाही करें। इतने अधिक सरकारी पत्र छपने लगे हैं परं गुरीब गंव की जनता के लिये वह सब बेकार हैं। उनके पास तक एक भी अखबार नहीं पहुंच सकता। इस कारण वह कभी आपकी बात नहीं सुन सकते और न कोई उत्तर ही दे सकते हैं।

बलवीर सिंह, सिविल लाइंस, रुड़की
(2 मार्च, 1957 अंक से)

जाति सूचक शब्द

मैं योजना का ग्राहक हूं और इसकी निरंतर उन्नति चाहने वालों में से हूं। योजना के हर अंक में जाति-पात, रिवाज़ व ढोंग के विरुद्ध रचनाएं प्रकाशित होती हैं, जिन्हें पढ़कर मेरे ही समान अन्य पाठक भी जाति-पात, रीति-रिवाज़ व धर्म के विरुद्ध आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। उपर्युक्त विषयों के लेखों की छाप योजना के हर ग्राहक पर पड़ती है। योजना में प्रकाशित होने वाले लेखकों की रचनाओं (जाति-पात व रिवाज़, धर्म विषयक) के मैं प्रत्येक वाक्य से सहमत हूं और उनके बनाए हुए रस्ते पर सहर्ष चलने को तैयार हूं। लेकिन इन्हीं लेखकों के नाम से अंत में जाति सूचक शब्द देख कर दुख होता है। अतः योजना के लेखकों से निवेदन है कि वे राजेंद्र प्रसाद, यशपाल की तरह अपने नाम के अंत में

जातिसूचक शब्द न लगाएं, क्योंकि इसका असर पाठकों पर पड़ता है और पाठक रचनाओं को कोरा उपदेश ही समझने लगते हैं। यदि निवेदन में कोई त्रुटि हो तो लेखक और पाठक मुझे उचित सलाह दें ताकि मैं भी अपने नाम के पीछे जातिसूचक शब्द लगा सकूँ?

रामावतार, अध्यापक छिरहिटी,
पो. खैरहरा, जिला शहडोल, म.प्र.
(27 मार्च, 1960 अंक से)

एक कलंक यह भी

समाचारपत्रों के आंकड़ों के अनुसार, आज इस शस्य-श्यामला भूमि पर 30 लाख भिखारी भीख मांगते नज़र आ रहे हैं, जिनमें 7 लाख अंधे, 1 लाख पागल, ढाई लाख गूंगे, डेढ़ लाख कोड़ी हैं। शेष 18 लाख व्यक्ति जीवनयापन के लिये परिश्रम कर सकते में समर्थ हैं। इन भिखारियों में 25 प्रतिशत से भी अधिक बालक और किशोर वर्ग के हैं, जो आगामी पीढ़ी और राष्ट्र के लिये कलंक और ख़तरा, दोनों ही हैं।

भगवा वेश, गले में रुद्राक्ष की माला, हट्टे-कट्टे निकम्मों को रोटी, पैसा और गांजा-सुलफा पाने का बड़ा ही अच्छा हथियार हाथ लग गया है। अन्य व्यवसायों की तरह भारत में आज यह धंधा भी निरंतर प्रगति के पथ पर सुरसा के मुंह की भाँति बढ़ रहा है।

भारत की धर्मभीरु जनता बिना किसी विवेक के, राह चलते भिखारियों को दान देना अपना परम पुण्य कर्तव्य समझ रही है। लेकिन वह भूल रही है कि इन लोगों को दान दे कर वह पुण्य नहीं पाप कमा रही है।

मित्रो! अब भी संभलो। अयोग्य भिखारियों को दान दे कर कलंक को प्रश्रय मत दो। इसी धन को आप अपने ही ग्राम की सुधार योजनाओं और राष्ट्र समृद्धि की पंचवर्षीय योजनाओं में लगा कर महापुण्य प्राप्त कर सकते हैं। आपका वह दान युग-युग तक जन-जन को प्रेरणा देता रहेगा और उसका सदुपयोग भी होगा, जो आपके लिये गर्व की बात होगी।

यदि आपको अपना देश, राज्य और समाज

प्यारा है; अपनी संस्कृति, परिवार व्यवस्था तथा धर्म प्यारा है, तो इस कलंक को धो डालने का प्रयत्न आज से ही आरंभ कर दीजिए। आप आज ही निश्चय करिए कि कभी अयोग्य भिखारियों को दान नहीं देंगे। इसी प्रकार बालक और नवयुवकों को तो डाँटेंगे भी। उनको यह धंधा अपनाने की प्रेरणा देंगे और हो सके तो यथासंभव उन्हें किसी काम पर लगा देंगे।

धर पर एक 'योजना पात्र' बना कर रख लीजिए और जितने भी भिखारी आएं उन्हें देजाने वाली सामग्री उसमें डालते जाइए। इस प्रकार बाद में आप इस जमा-पूँजी को या तो ग्राम सुधार के कार्यों में लगा दें, या नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट खरीद लें।

दुर्गाशंकर त्रिवेदी, प्रधान पाठक बलोला, पेरा, झावुआ (म.प्र.)
(12 फरवरी से 19 फरवरी, 1965 अंक से)

समाजवाद के नकली मित्र

इस समय समाजवादी समाज रचना की चर्चा बहुत जोरों पर है। हम समझते हैं कि इसका अन्त बहुत थोड़े लोग जानते हैं। बातें बहुत हो रही हैं जो लोग इस पर बातें करते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं व्याख्यान देते हैं, वे स्वार्थ के खूटे में बहुत मज़बूत रस्सी से बंधे हुए हैं। उनके आचरण से इस सिद्धांत को बड़ा धक्का लगा है। वे दूसरों को जो कुछ शिक्षा देते हैं, उस पर अमल नहीं करते। हो सकता है कि यह बात झूठी हो, पर जनता में इसका प्रचार बहुत अधिक है, अधिकारियों में भ्रष्टाचार बहुत फैला हुआ है।

जनता देखती है कि पुलिस का हाल जो पहला था, वही अब भी है। कच्चही में भीड़-भड़क्का पहले से भी अधिक है। गांव की सड़कें टूटी-फूटी अवस्था में पड़ी हैं। नलकूप की नालियां बुद्धि दशा में हैं, पानी के लिये किसान मार-पीट करते हैं, अनुशासनहीनता, आत्मकारुण्य, निरुत्साह, भय आतुरता जनता में व्याप्त है। पंचायतों में स्वाकूट-कूट कर भर गया है। रचनात्मक कार्य क्षेत्रों द्वारा जो चल निकली थी, वह मंद हो गई। सहकारी सहयोग अब हंसी की चीज हो गई।

प्रयोग की कीमत के बबूल के काटने का मामला याय पंचायतों की अकर्मण्यता के कारण सर्वोच्च यायालय तक पहुंचने लगा। सामाजिक संगठन प्रतिदिन टूटता जा रहा है। जितने सरकारी अधिकारी हैं, वे अपने कर्तव्य को जिस शुद्ध भावना से करना चाहिए, न करके किसी तरह से गतिस्थिता के भाव से निभाते चले जा रहे हैं। जब तक गांव की जनता अपनी आँखों से अपने गांव की सामूहिक उन्नति न देख लेगी, तब तक उसको समाजवादी समाज की रचना का नारा व्यर्थ प्रतीत होगा। मोटर पर चढ़ कर गांव में जाना, विमान में उड़ कर गांव की दशा देखना समाजवादी समाज चना के प्रतिकूल काम है। यदि गांव का कल्याण करना है, तो अधिकाधिक ग्रामीणों से संपर्क ऊपरित करना ज़रूरी है। त्याग की मात्रा श-सेवकों में बहुत घट गई है। स्वयं त्याग करके श के दुख को दूर कीजिए। वह समाजवाद का अधिक सुंदर प्रचार होगा।

श्रीनाथ मिश्र
कूंडी-बड़ागांव, वाराणसी

फिल्म सेंसर नीति

मैं योजना का दीर्घकाल से पाठक हूं। त्रकारिता को एक नया आयाम प्रदान करने में योजना की भूमिका निस्संदेह स्तुत्य है। 7-21 वंवर अंक विविध पठनीय लेखों एवं अन्य पयोगी सामग्री से युक्त होने के कारण संग्रहणीय। माधुरी के संपादक अविंद कुमार का चारोंतेजक लेख 'फिल्म सेंसर नीति' अच्छा गा। मेरी व्यक्तिगत धारणा यह है कि वर्तमान मय में फिल्म सेंसर नीति में आमूलचूल परिवर्तन। सेंसर बोर्ड के गठन में व्याप्त पक्षपात, जननीति पैतृवाजी तथा अदूरदर्शिता का खात्मा। उन्हीं लोगों को सेंसर बोर्ड का सदस्य नियुक्त कर्या जाए जो फिल्म विधा के माध्यम से भारत व्याख्या पढ़कर बहुत बड़ी भ्रांति दूर हुई। सचमुच हमारी सरकार धर्म निरपेक्षता का केवल राग अलापती है जबकि वास्तविक यह है कि सही माने में हमारी सरकार विभिन्न धर्मों को प्रश्रय तथा धर्म से संबंधित संस्थाओं को अनुदान देकर धर्म निरपेक्षता से विमुख हो रही है। हमारा संविधान कुछ अर्थ में भ्रामक ही है। अतः कुछ संविधान-संशोधन आवश्यक है।

कामेश्वर प्रसाद सिंह, अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एस. मेमोरियल कॉलेज, रांची
(22 दिसंबर '77 से 6 जनवरी '78 अंक से)

यो जना निश्चय ही एक ज्ञानवर्द्धक व्योगी पत्रिका है। मैं पिछले एक वर्ष से इसका उक होने के नाते यह दावे के साथ कह सकता कि अर्थशास्त्र से संबंधित महत्वपूर्ण अंकड़े

जितने इस पत्रिका द्वारा प्राप्त होते हैं, शायद ही किसी अन्य पत्रिका द्वारा। इसकी प्रायः सभी रचनाएं प्रेरणाप्रद सामग्री हम लोगों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। योजना के 16-30 अप्रैल, 1981 के अंक में बी.एम. भाटिया का 'छठी योजना एक विवेचना-2' शीर्षक लेख छठी पंचवर्षीय योजना के संबंध में सरल शब्दों में विस्तृत जानकारी की दृष्टि से प्रशंसनीय है। कुलदीप चंद अग्निहोत्री का लेख 'एक भारत और भी' यह जानकारी दिलाने में लाभकारी सिद्ध हुआ है कि विश्व में भारत को कितना महान स्थान प्राप्त है। असमिया कहानी 'प्रतिरोधक सुई' भी प्रशंसनीय रही।

सचिवदानन्द सिन्हा
मारवाड़ी कालेज, किशनगंज (बिहार)
(16-31 अगस्त 1981 अंक से)

योजना हर पंचायत में पहुंचे

यो जना का 15 अगस्त, विशेषांक प्राप्त हुआ। इस अंक में वर्तमान समय की ज्वलंत तथा सामाजिक समस्या 'ये ढोंग-पाखंड आखिर कब तक' विषय पर देश के चिंतकों, विचारकों तथा प्रशासन से संबंधित लोगों के विचार प्रस्तुत करने के लिये हार्दिक बधाई।

इससे पहले मैं योजना को मात्र आर्थिक पहलुओं पर विचार करने वाली पत्रिका ही समझता था मगर इस अंक को देखकर लगा कि योजना व्यापक अर्थ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह विशेष अर्थ रखती है। इस पत्रिका में सामाजिक समस्याओं तथा उनके समाधान प्रस्तुत कर आप पाठकों का बहुत कल्याण कर रहे हैं।

योजना के लेखकों का परिचय देकर आपने पत्रिका में चार चांद लगा दिया है। कृपया हर अंक में ऐसा परिचय देने की कृपा करें। निखिल चक्रवर्ती द्वारा, प्रस्तुत 'धर्म निरपेक्षता' की सही व्याख्या पढ़कर बहुत बड़ी भ्रांति दूर हुई। सचमुच हमारी सरकार धर्म निरपेक्षता का केवल राग अलापती है जबकि वास्तविक यह है कि सही माने में हमारी सरकार विभिन्न धर्मों को प्रश्रय तथा धर्म से संबंधित संस्थाओं को अनुदान देकर धर्म निरपेक्षता से विमुख हो रही है। हमारा संविधान कुछ अर्थ में भ्रामक ही है। अतः कुछ संविधान-संशोधन आवश्यक है।

धर्म, मानवतावाद, शिक्षा तथा जनसंचार माध्यमों पर एक साथ सामग्री देकर तथा उनके पारस्परिक संबंधों की विभिन्न विचारकों के शब्दों में विवेचना कर आपने पाठकों के ज्ञान में

अत्यधिक वृद्धि करने का सफल प्रयास किया है। सचमुच इस विषय को उठाकर, पत्रिका ने एक क्रांति ही कर दी है। ऐसी उच्च स्तरीय पत्रिका के सफल संपादन हेतु हार्दिक बधाई।

अशोक कुमार दूबे, इलाहाबाद (उ.प्र.)
(16-31 अक्टूबर, 1985 अंक से)

सतही लेख

यो जना का 15 मई, 1991 अंक पढ़ा। किंतु खेद है कि यह अंक आपके पूर्ववर्ती अंकों के समान रोचक नहीं लगा। प्रकाशित लेख काफी सतही थे। कृपया ग्रामीण शिक्षा के महत्व तथा विभिन्न पहलुओं पर कोई अंक प्रकाशित करें ताकि पाठकों को इसका ज्ञान हो सके। यह पत्रिका ज्ञानवर्द्धन का साधन ही नहीं बल्कि बौद्धिक क्षमता में बृद्धि करने का एक माध्यम भी है। अतः आपसे शिक्षा व्यवस्था, विशेषतः ग्रामीण शिक्षा पर जानकारी अपेक्षित है।

महेंद्र श्रीबास्तव, सतना (म.प्र.)
(16-30 जून, 1991 अंक से)

सांप्रदायिकता नहीं, भाईचारा

यो जना का 1-15 मार्च, 1991 अंक पढ़ा। इसमें सबसे ज्यादा रोचक लेख '1857 की जनक्रांति : एक अटूट सांप्रदायिक सद्भाव' लगा। सचमुच आज के माहील में सांप्रदायिकता पर करारा आक्षेप किया है लेखक ने। एक समय था 1857 का, जब शहीदों ने अपने प्राणों की आहुति देकर हमारी भारत माता की एकता और अखंडता को बरकरार रखने की शुरुआत की थी और अंतः हमें आजादी मिली। हालांकि उस समय भी कुछ धार्मिक और राजनैतिक नेताओं ने भारत मां को दो टुकड़ों में करने हेतु ज़ेहाद छेड़ा। शहीदों के खून और धर्माधि लोगों के खून में स्पष्ट फ़र्क देखा जा सकता है। तब लोग एकता और अखंडता के लिये प्राणों की आहुति देते थे जबकि आज के हमारे धर्माधि लोग धार्मिक और राजनैतिक नेताओं की शह पर भारत के टुकड़े करने को कृत-संकल्प हो गए हैं। साधारण जनमानस पूर्वजों की धरोहर को संभाले रख पाने में असफल हो रहा है। सभी अपनी-अपनी स्वार्थसिद्धि में लगे हुए हैं। क्या मिला मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे से? अगर मिलेगा तो वह सद्भाव, भाईचारे और सामाजिक उत्थान से ही।

उज्ज्वल कुमार, वैशाली, बिहार
(31 मई, 1991 अंक से)

अरिहन्त™

भारत की सबसे तेजी से बढ़ती मासिक पत्रिका

समसामयिकी महासागर

नवीनतम् घटनाओं की
सम्पूर्ण मासिक पत्रिका

15/-

- ★ इस पत्रिका में समायी है एक महीने की बो सारी महत्वपूर्ण घटनाएँ जो हैं परीक्षा की दृष्टि से अति उपयोगी।
- ★ माह की महत्वपूर्ण घटनाओं की पूरी व रोचक जानकारी करेंट अफेयर्स पर आधारित 300 अति उपयोगी सवालों के साथ।
- ★ एक विध्य विशेष की अत्यन्त सरल तरीके से बिन्दुवार व्याख्या, पाठकों के प्रोत्साहन के लिए ज्ञान प्रतियोगिता और उत्साह बढ़ाने के लिए बड़ों की बातें, आगे आने वाली परीक्षाओं की जानकारी।
- ★ कम मूल्य में उच्च कोटि की पाठ्य सामग्री।

बदल गई पुरानी परिभाषाएँ, बनाए गए नए नियम खोजे गए अनोखे तरीके, नया कलेक्टर, नया पलेकर

समसामयिकी महासागर

दरअसल ये हल्की सी नमकीन हैं !



अरिहन्त मीडिया प्रमोटर्स

कालिन्दी, ड्रान्सपोर्ट नगर, मेरठ-250001 (उ० प्र०)
फोन- (0121) 2401479, 2512970, 2402029

आपके निकटतम
बुक स्टॉल पर
उपलब्ध

एक राष्ट्र के गुण तत्व : पचास वर्षों का आत्मावलोकन

नयी सहमानी हमारे देश में विकास का एक नया युग लेकर आई है। संपोषित विकास, आर्थिक सुधार और आम आदमी की चिंता नवीन वास्तविकताएँ हैं। देश तीव्रगामी विकास-पथ पर अग्रसर है। समृद्धि के स्पष्ट संकेत और उम्मीद के पर्याप्त कारण हैं।

इसी पृष्ठभूमि में, योजना अपने 50 वर्ष पूरे कर रही है। अपनी 50वीं वर्षगांठ में हम अपने 50 चुनिंदा लेखों को शामिल कर रहे हैं।

एक पाक्षिक के रूप में योजना की शुरुआत 1957 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर पंडित जवाहरलाल नेहरू की शुभकामनाओं के साथ हुई थी। खुशबूत सिंह के संपादकीय मार्गदर्शन में इसका पहला अंक हिंदी और अंग्रेजी में निकला। पंचवर्षीय योजना एवं उसके कार्यान्वयन की जानकारी में रुचि रखने वाले लोगों को ध्यान में रखकर 20 पृष्ठों वाली यह टेबलॉयड पत्रिका निकली थी। आशा यह की गई थी कि समय के साथ यह पाक्षिक पत्रिका साप्ताहिक बन जाएगी और रंगीन कलेक्टर के साथ सभी मुख्य भाषाओं में इसके संस्करण निकलने लगेंगे।

किंतु, योजना का विकास अलग तरह से हुआ। हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त अब यह 11 अन्य भाषाओं में निकलती है। विकास आधारित पत्रकारिता के क्षेत्र में स्थानीय अपेक्षाओं को पूरा करने वाली तथा हिंदी और अंग्रेजी में प्रकाशित एक राष्ट्रीय पत्रिका के रूप में योजना की भूमिका अतुलनीय है। सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर 13 भाषाओं में एक साथ छपने वाली यह संभवतः अकेली मासिक पत्रिका है।

योजना का यह विशेषांक पिछले 50 वर्षों के उन संघर्षों का अंदरूनी चित्र प्रस्तुत करता है, जो इस राष्ट्र ने शताब्दियों तक ग्रीष्मी और अंधकार का दंश भोगने के बाद अपने पांच पर खड़े होने के क्रम में किए। यह इस पत्रिका के रचना-संसार की व्यापकता और उसकी रोचकता का भी आभास करता है। यह उल्लेख करते हुए गौरव का अहसास हो रहा है कि योजना से देश के न केवल शीर्ष विचारक और अर्थशास्त्री, बल्कि अग्रणी साहित्यकार और कलाकार भी जुड़े रहे। हमारी कोशिश योजना में अलग-अलग समय में प्रकाशित होने वाली उन सभी विविधतापूर्ण सामग्रियों व स्तंभों की बानगी देने की है। योजना के विभिन्न भाषायी संस्करणों का प्रकाशन 1957 के बाद अलग-अलग वर्षों में शुरू हुआ। परिवार के कनिष्ठ सदस्यों के रूप में 50वीं वर्षगांठ के इस आयोजन में वे संस्करण भी शामिल हैं और विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं।

पिछले 50 वर्ष विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी भी पहलू को लें - प्रतिव्यक्ति आय, जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक उपलब्धियां, खाद्य सुरक्षा, सामाजिक बदलाव और कई अन्य क्षेत्र - भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है। फिर भी, समाचारपत्रों और दृश्य माध्यमों में दुर्भाग्यपूर्ण कहानियां हमें दिखाई देती हैं। इस किस्म की विकृति को सुधारने की आवश्यकता है। एक छोटे स्तर पर, योजना इस दायित्व को पूरा करती आ रही है।

चुनौतियां फिर भी बरकरार हैं। हाल के वर्षों में, हिंदी और अंग्रेजी संस्करणों की प्रसार संख्या में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि हुई है। किंतु, अन्य भाषायी संस्करणों की प्रसार संख्या कम है। हम योजना को और अधिक आर्कषक बनाना चाहते हैं।

सरकार द्वारा वित्त-पोषित पत्रिका की विश्वसनीयता सदा संदेह के घेरे में रहती है। यद्यपि योजना सरकार द्वारा प्रायोजित और एक सरकारी उपक्रम है, लेकिन यह सिर्फ सरकारी दृष्टिकोण को व्यक्त करने तक ही सीमित नहीं है। इसकी पुष्टि इसमें शामिल लेखों की प्रकृति एवं उनके विश्लेषण की वस्तुनिष्ठता से स्वतः हो जाती है।

योजना के अधिलेख में शामिल अब तक प्रकाशित विविधतापूर्ण विपुल और समृद्ध सामग्री में से अपने 50 सर्वश्रेष्ठ लेखों को छान्टना एक कठिन कार्य था। हमारी संपादकीय टीम के लिये यह इस मायने में एक 'आंखें खोलने वाला' अनुभव था कि इस पत्रिका का अतीत किस कुदर गौरवशाली रहा है। पत्रिका आपके सम्मुख प्रस्तुत है। इसे पढ़ने का लुत्फ उठाइए।



‘योजना’ क्या है

जब संसार के लोग भारत के बारे में सोचते हैं तो उनके मन के सामने महात्मा गांधी तथा उस शांतिमय क्रांति का चित्र आ जाता है, जिसके द्वारा उन्होंने भारत की राजनीतिक आज़ादी प्राप्त की। उनका व्यक्तित्व सारे संसार में अनोखा था और हमारी आज़ादी का आंदोलन भी इस प्रकार का था, जिसके संबंध में लोगों ने कुछ सुना नहीं था। महात्मा और उनके द्वारा चलाया हुआ आंदोलन दोनों ही अनोखे थे, पर वे थे सोलहों आना भारतीय। इस समय हम एक क्रांति के अंदर से गुजर रहे हैं, जो सामाजिक होने के साथ ही साथ आर्थिक भी है और वह अपनी विशालता तथा कार्यपद्धति की दृष्टि से बिल्कुल अद्वितीय है। यह क्रांति किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व में नहीं हो रही है, क्योंकि देश की सारी जनता इसमें भाग ले रही है। कभी भी इतने करोड़ लोगों ने किसी ऐसी उथल-पुथल में भाग नहीं लिया जो शताब्दियों के पिछड़े पन को दूर कर देगी और जिससे हम यह आशा करते हैं कि हम सामंतवादी समाज से बीच के सारे सोपानों को छलांग लगा कर जिनसे औरें को गुजरना पड़ा है, सीधे-सीधे समाजवादी समाज में पहुंच जाएंगे और यह सारी सिद्धि हमें हिंसा के बिना ही प्राप्त होगी। यदि यह सफल रही तो यह भी इतिहास के पृष्ठों में इस रूप में चला जाएगा कि यह संसार को भारत की अनोखी देन है।

शांतिपूर्ण क्रांति तभी सफल हो सकती है जब जनता इसके साथ पूरा सहयोग दे। हमारी योजनाएं मानों क्रांति के नील मुद्रण हैं, और वे तभी सफल हो सकती हैं, जब जनता उसमें



प्रवेशांक में प्रकाशित महात्मा गांधी का रेखाचित्र हाथ बटाए और जनता दिल खोल कर तभी हाथ बंटा सकती है, जब इस देश के विभिन्न भागों में योजना की क्या प्रगति रहती है, उस संबंध में लोगों को जानकारी हो। पहली पंचवर्षीय योजना काल में जनता की भाषा तथा प्रतीक में योजना के संबंध में अधिक से अधिक जानकारी और उनकी सामान्य ज़रूरतों और समस्याओं के क्षेत्र में सहयोग के अभाव का अनुभव हुआ था। दूसरी योजना में इसी ज़रूरत की पूर्ति के लिये व्यवस्था की गई है और योजना उसी व्यवस्था का एक रूप है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में योजना के कर्तव्य का निम्न शब्दों में वर्णन किया गया है :

“देशभर के गांवों, सहकारी, संस्थाओं, पंचायतों, स्वयंसेवी संगठनों और सभाओं तथा राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी नौकरों में और गैरसरकारी कार्यकर्ताओं के निकट दूसरी पंचवर्षीय योजना के संदेश को इस तरह से पहुंचाना है कि लोग इसके लक्ष्यों तथा मान्यताओं को समझ जाएं।”

यह एक बहुत ही बड़ा कर्तव्य है। हम पहले पहल हिंदी और अंग्रेजी दो भाषाओं में पाक्षिक पत्र के रूप में आपके सामने उपस्थित हो रहे हैं। हम निकट भविष्य में एक साप्ताहिक हो जाने की आशा रखते हैं, और देश की प्रधान आंचलिक भाषाओं में प्रकाशित होकर उन लाखों घरों में से कुछ घरों में पहुंचने की आशा करते हैं, जिनमें ज्ञान का दीपक जल चुका है।

हमारी योजनाओं की तरह योजना भी विकास के सारे क्षेत्र में चाहे वह आर्थिक हों, शिक्षा संबंधी हों, सामाजिक हों अथवा सांस्कृतिक हों, छा जाने की चेष्टा करेगी। विभिन्न राज्यों से खबरें तथा हमारे कार्य के प्रत्येक पहलू पर प्रगति की रिपोर्ट इसमें हर पंद्रहवें रोज़ छपा करेगी।

एक बात और। यद्यपि योजना सरकारी प्रयास है, फिर भी यह सरकारी मतों के प्रकाशन तक सीमित नहीं रहेगी। जहां प्रशंसा अपेक्षित है, वहां प्रशंसा की जाएगी और जहां आलोचना की आवश्यकता होगी वहां आलोचना की जाएगी। □

(योजना के पहले प्रधान संपादक थे; खुशवां मिंह द्वारा लिखित प्रवेशांक का संपादकीय 26 जनवरी,

1957 अंक से)

योजना के मूल तत्व

○ वी.टी. कृष्णमाचारी

हम साधारण रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के संबंध में यह समझते हैं कि इनका अर्थ निर्माण कार्यों तथा कार्यक्रमों - बहुउद्देशीय तथा बहुत नदी घाटी और विजली उत्पादन के कार्य, इस्पात के कारखाने, रेल पद्धति के विस्तार आदि हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और यह आशा की जाती है कि योजना की प्रत्येक संस्था में इन निर्माण कार्यों की प्रगति के संबंध में तथा देश की अर्थव्यवस्था पर उनके असर के संबंध में एक विभाग रहेगा। पर हमारी योजनाओं का इनसे कहीं अधिक गहरा तात्पर्य है। हमारे प्रधानमंत्री के शब्दों में “वे इनसे कहीं विशाल हैं” - “इनमें हमारे सामने एक जाति के

आत्मनिर्माण बल्कि पुनर्निर्माण का चित्र आता है, हम सब मिलकर एक नये भारत का निर्माण कर रहे हैं और यह केवल ख्याली रूप में एक जाति के लिये नहीं बल्कि 36 करोड़ लोगों के लिये है।” स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से भारतवासी अपने लिये नवजीवन के निर्माण में लगे हुए हैं। वे एक नये सामाजिक ढांचे का निर्माण कर रहे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं का आधारभूत उद्देश्य यह होना चाहिए कि इन प्रयासों को कार्यान्वित और फलीभूत किया जाए, तथा हमारे सामने सामाजिक परिवर्तन का जो ढांचा लक्ष्य रूप में है, उसकी दिशा बताएं और साथ ही यह बताएं कि किन उपायों से ये परिवर्तन लाए जाएंगे।

हमारे संविधान में देश के सामने समाज के उस नये ढांचे की मोटी रूपरेखा रख दी गई है, जिसके लिये काम करना है। साथ ही इसमें यह माना गया है कि भारत को इस लक्ष्य की ओर अपने ही ढंग से अपनी प्रतिभा और सांस्कृतिक तथा अन्य परंपराओं के अनुसार आगे बढ़ना है। मैं समाज के इस ढांचे की आवश्यक विशेषताओं को यहां बताना चाहूँगा।

पहली बात यह है कि हमारा संविधान लोकतांत्रिक है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने अभी हाल ही में कहा था - “हम जीवन के लोकतांत्रिक ढंग को बहुत दृढ़ता के साथ अपना चुके हैं।” “सर्वोपरि हम स्वतंत्रता, समानता, व्यक्ति की मर्यादा और मानवीय आत्मा की



झरिया के कोयला खदान का पिटहेड फ्रेम (16 फरवरी, 1957 अंक से)

स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं।"

दूसरी बात यह है कि हम लोगों के रहन-सहन के स्तर को तेज़ी से ऊपर उठाने का और रोज़गार की बढ़ी हुई सुविधाओं और अधिकतर उपज के जरिये पूर्णतर और अधिक ऐश्वर्यशाली जीवन की कामना करते हैं। इसी के साथ समान महत्व का लक्ष्य यह है कि एक निरंतर बढ़ती हुई तथा विविध कृषि पद्धति के विकास, कुटीर शिल्प तथा छोटे पैमानों के धंधों को प्रोत्साहन, बड़े पैमाने के उपभोग्य द्रव्यों तथा भारी उद्योगों के विकास के द्वारा हम एक संतुलित अर्थव्यवस्था स्थापित करना

चाहते हैं। अर्थव्यवस्था के ये भाग आपस में घनिष्ठ रूप से संबद्ध होंगे। वे एक-दूसरे के साथ सामंजस्य रखने के साथ ही एक-दूसरे के पूरक भी होंगे।

तीसरी बात यह है कि हम एक ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना चाहते हैं, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय होगा और जो राष्ट्रीय जीवन की सारी संस्थाओं तक व्याप्त होगा। हम जिस सामाजिक ढांचे को स्थापित करना चाहते हैं, उसके लिये यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक सामाजिक न्याय हो।

थोड़े में हम एक ऐसी लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें पूर्णतर रोज़गार, बड़े हुए उत्पादन तथा अधिक से अधिक सामाजिक न्याय के जरिये रहन-सहन के स्तर की तेज़ी से अधिक से अधिक उन्नति हो।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या पहली पंचवर्षीय योजना ने सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया का श्रीगणेश किया है? इसका उत्तर देते हुए मैं राष्ट्रीय विस्तार सेवा आंदोलन का उल्लेख करना चाहूंगा, जिसमें सामुदायिक विकास कार्य भी आ जाते हैं। पहली पंचवर्षीय योजना काल में यह आंदोलन देश के एक चौथाई भाग में व्याप्त हो गया, और 1960-61 तक यह सारे देश में व्याप्त हो

भारत के नये मंदिर!

31 दिसंबर, 1956 की बात है। हमारे प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू चीनी गणतंत्र के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई के साथ नंगल का दौरा कर रहे थे। दोनों प्रधानमंत्री देर तक घूमते रहे। अंत में पं नेहरू एक ऊंची जगह देखकर बैठ गए, जहां से वे सारे निर्माण कार्यों को देख सकते थे। फिर वे एकाएक मानो अपने से बातचीत करते हुए बोले - "भारत के ये ही वे नये मंदिर हैं, जहां मैं पूजा करता हूं।"

श्री चाऊ एन लाई चुपचाप अपने विचारों में डूबे हुए बैठे थे, उन्होंने कहा - "मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं।"

बात यह है कि श्री चाऊ एन लाई भाखड़ा नंगल के सारे कार्य देख चुके थे। उन्होंने भी एक मौके पर 760 फुट ऊंचे भाखड़ा बांध को देखकर कहा था - "यह बड़ा, बहुत बड़ा है।"

सचमुच यह बांध भारत के लिये एक तीर्थ स्थान है, क्योंकि जब यह पूरा हो जाएगा तो इससे 1 करोड़ एकड़ ज़मीन की सिंचाई होने के साथ ही 10 लाख किलोवाट बिजली भी पैदा होगी। □

जाएगा। इस आंदोलन का उद्देश्य देहाती जीवन के सभी पहलुओं का उन्नयन है। 70 प्रतिशत भारतवासी गांवों में बसते हैं, इसलिये इस कार्य को जो प्राथमिकता दी गई है, उसके समर्थन में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, लक्ष्य यह है कि "देहातों में रहने वाले लाखों परिवारों का दृष्टिकोण बदल दिया जाए। उनमें नये ज्ञान के नये तरीकों के लिये जोश पैदा किया जाए, और उनमें उच्चाकांक्षा और बेहतर जीवन के लिये इच्छा उत्पन्न की जाए।" इसी के साथ-साथ राज्यों के भूमि व्यवस्था सुधार संबंधी कानूनों से देहाती समाज का ढांचा बदल रहा है। बिचौलियों का अंत कर तथा किसानों को स्थाई अधिकार देकर, साथ ही उन्हें अनुचित लगान से मुक्त कर किसान मालिकों का एक देहाती समाज पैदा हो रहा है। राष्ट्रीय विस्तार सेवा आंदोलन में लगे हुए लोगों के सामने जो कार्यक्रम हैं, और यह बता दिया जाए कि इस आंदोलन की सभी सतहों पर प्राप्त उत्तम से उत्तम सरकारी या गैरसरकारी नेतृत्व है, वह इस प्रकार है :

क. प्रत्येक परिवार में अपनी उन्नति की एक योजना होगी, जिसके अंतर्गत उन्नत खेती, कुटीर शिल्प और छोटे पैमाने के धंधे इत्यादि होंगे। इस कार्यक्रम को कार्यान्वित

करने के लिये आवश्यक सहायता दी जाए।

ख सहकारी आंदोलन का इतना विस्तार किया जाए कि प्रत्येक परिवार का अपने हक्क से कम से कम एक सहकारी संस्था में प्रतिनिधित्व हो।

ग. प्रत्येक परिवार समाज के लिये स्थायी लाभ के कार्यों में श्रम और धन का या धन द्वारा सहायता दे और इस प्रकार से देहात में जो बहुत बड़ी कर्मशक्ति बेकार नष्ट होती है, उसका समाज के लिये उपयोग हो।

घ. सभी गांवों में एक सुसंगठित महिला और युवा आंदोलन विकसित हो।

इसप्रकार से यह आंदोलन अनिवार्य रूप से जन आंदोलन है, और इसे जनता से ही शक्ति प्राप्त होती है। गत तीन सालों में जब से यह चालू है, इसने बहुत बड़े पैमाने पर जनजागृति उत्पन्न की है, जो लगभग क्रांतिकारी परिवर्तन की मात्रा तक पहुंच चुकी है।

मैं राष्ट्रीय विस्तार आंदोलन पर आगे और लिखूंगा, पर मैंने विशेषकर यहां उसका उल्लेख इसलिये किया कि यह एक ऐसा आंदोलन है, जिसके लिये हमें बहुत से स्वयंसेवकों, सच्ची सेवा और लगन से युक्त हजारों नवयुवकों तथा नवयुवितयों की ज़रूरत है।

हमारी योजनाएं लोकतांत्रिक योजनाएं हैं। इसलिये उन्हें देश के प्रत्येक पुरुष और स्त्री के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है। योजना का उद्देश्य इस प्रकार के सहयोग के लिये अपील करना है। हम यह चाहते हैं कि लोग योजनाओं के लक्ष्यों और उद्देश्यों के संबंध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करें, जिससे कि हम सब कंधे से कंधा मिलाकर गरीबी और अज्ञान के विरुद्ध जो लड़ाई जारी है, उसमें लड़ सकें। यदि एक राष्ट्र जाग उठे, तो वह जो भी कर गुज़र, इसकी कोई सीमा नहीं है। □

(लेखक योजना आयोग के उपाध्यक्ष थे;

26 जनवरी, 1957 अंक से)

संदेश और शुभकामनाएँ

आशा का अलंबरदार हो!

मैं

योजना के प्रकाशन का स्वागत करता जो दूसरी पंचवर्षीय योजना का संदेश जनता तक ले जाएगी और इसके लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को समझने में मदद देगी। जहां तक हमारी कल्याणकारी योजनाओं तथा निर्माण कार्यों का संबंध है, मैं समझता हूं कि जनता का सहयोग प्राप्त करने तथा उनके विषय में जनता को जोश दिलाने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उनके सामने देशभर में सहकारी समितियों, पंचायतों, स्वयंसेवी संगठनों तथा अन्य संस्थाओं और राष्ट्रीय

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं के तजुब्बों का एक स्पष्ट चित्र पेश किया जाए।

यही वह काम है, जिसे योजना की तरह एक पत्र, जो पहले अंग्रेजी और हिंदी में पाक्षिक के रूप में प्रकाशित होने जा रहा है, कर सकता है। मुझे इसलिये इस बात की बहुत खुशी है कि योजना आयोग बाद में इसे साप्ताहिक बना देगा और भारत की सभी आंचलिक भाषाओं में प्रकाशित करेगा। मैं आशा करता हूं कि इसमें जो कुछ छपेगा और उसे जिस तरह पेश किया जाएगा, वह जनप्रिय होगा

और यह बात लोगों की समझ में आ जाएगी कि योजना बनाने के क्या-क्या फायदे हैं तथा वे यह भी महसूस करेंगे कि राष्ट्र निर्माण के महान कार्य में सार्वजनिक सहयोग कितना ज़रूरी है।

मैं चाहता हूं कि योजना खूब फले-फूले और इसके द्वारा न केवल उपयोगी सूचनाएं प्रचारित हों, बल्कि यह आशा का अलंबरदार हो। □

7 जनवरी, 1957

डा. राजेंद्र प्रसाद
भारत के राष्ट्रपति

भा

रत में बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। फिर भी योजना के प्रकाशन का स्वागत करना चाहिए। इसके नाम से ही प्रकट है कि इसका क्या कार्य होगा। हमने दूसरी पंचवर्षीय योजना तैयार की और उसे प्रकाशित किया। उसके कुछ नतीजे भी हुए। फिर भी मैं समझता हूं कि इसका जितना प्रचार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। योजना ऊपर के कुछ थोड़े से लोगों के लिये नहीं है। यह निश्चित रूप से जनता की योजना है और इस बात की ज़रूरत है

कि सारे भारत के लोग इसे अच्छी तरह समझें और इसके साथ इच्छापूर्वक सहयोग करें। इसलिये यह ज़रूरी है कि योजना का संदेश आम जनता तक और विशेषकर हमारे देहातों तक पहुंचे। योजना एक ऐसा पत्र होगा, जो जनता में बहुत बड़े पैमाने पर प्रचारित किया जाएगा और हमारे सारे सामुदायिक विकास कार्यों, राष्ट्रीय विस्तार खांडों, सहकारी समितियों, पंचायतों, स्वयंसेवी संगठनों और राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं तक पहुंचाया जाएगा। इसमें से बहुत-सा क्षेत्र

अभी अद्यूता है और इसलिये योजना बहुत महत्व का कार्य करेगी। मैं आशा करता हूं कि इसकी भाषा सरल होगी, जिससे इसे देहात में रहने वाले भी समझ सकें। मैं यह भी आशा करता हूं कि भारतीय भाषाओं में यह इस तरह से छापा जाएगा कि इसे कम पढ़े-लिखे लोग भी आसानी से पढ़ सकें।

मैं इस पत्र का स्वागत करता हूं और इसके सामने जो बड़ा भारी काम है, उसके लिये इसकी सफलता चाहता हूं। □

7 जनवरी, 1957

पं. जबाहरलाल नेहरू

जनता में जोश पैदा करें

सरी पंचवर्षीय योजना चाहे उसे विस्तार दृष्टि से देखा जाए या दायरे की दृष्टि से, बहुत बड़ा साहसिक कार्य है, जिसमें हममें से प्रत्येक को सोदेश्य भाग लेना है। योजना में यह प्रयास किया गया है कि प्राप्त जनबल तथा प्राकृतिक साधनों के वास्तविकतापूर्ण उपयोग के द्वारा हमारी

अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा परिवर्तन किया जाए। एशिया की अर्थव्यवस्था के विकास में भारत की दूसरी योजना के महत्व को सभी मानते हैं।

हमें योजना के लक्ष्य तथा उसके उद्देश्यों के संबंध में जानकारी को अधिक से अधिक फैलाना है और अर्थव्यवस्था के सारे भागों में

योजना के संबंध में जागरूकता की जड़ जमाना तथा उसे विकसित करना है।

मेरा विश्वास है कि योजना बृहत् तथा उत्सुक जनता तक पहुंचेगी और योजना के लिये जनता में जोश उत्पन्न करेगी। □

7 जनवरी, 1957

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
उपराष्ट्रपति

दूसरी योजना पर मेरे विचार

○ मीनू मसानी

योजना में किसी धर्माधिता से काम नहीं लेना चाहिए और न ही योजना कोई ऐसा तीर्थ स्थान है जिसकी हमें पूजा ही करनी चाहिए। योजना तो किसी लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है, और हमारा लक्ष्य है जनता की खुशहाली और आज़ादी

हर आदमी योजना बनाकर चलता है। किसान योजना बनाता है क्योंकि उसे समय पर बुवाई, जुताई और फसल समेटनी होती है। दफ्तर में या कारखाने में काम करने वाला भी योजना बनाता है क्योंकि उसे वक्त पर काम पर पहुंचना होता है। यहां तक कि स्कूल में पढ़ने वाला विद्यार्थी भी योजना बनाता है ताकि साल के बाद वह पास हो जाए। यदि गृहिणी भी योजना न बनाए तो पैसे चुक जाने पर वह भोजन का प्रबंध न कर पाएगी। यदि माता-पिता भी अपने परिवार की योजना न बनाएं तो उनकी संतान इतनी बढ़ जाएगी कि उसका पालन-पोषण वे खुद या देश न कर सकेगा। इसलिये आयोजन का काम हाथ में लेकर हमारी सरकार ने बड़ी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

पहली योजना

पहली पंचवर्षीय योजना काफी सफल रही है। इसमें अपने साधनों पर दृष्टि रखते हुए देश में अन्न की कमी दूर करने की तरफ हमें खास ध्यान दिया। चूंकि भारत एक कृषिप्रधान देश है और कई पीढ़ियों तक यह कृषिप्रधान ही रहेगा, इसलिये इस समस्या को आरंभ में ही ले लेना उचित था।

दूसरी योजना

पर दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा

पहली योजना से भिन्न है। दूसरी योजना में देश का औद्योगिकरण करने का लक्ष्य रखा गया है, इस ख्याल से कि लोगों को अधिक नौकरियां दिलवा कर, उजरत और वेतन के रूप में अधिक धन प्राप्त करके, अधिक चीजें और सेवाओं तथा अधिक व्यापारिक गतिविधि के जरिये जीवनस्तर को समग्र रूप से ऊपर उठाया जाए। यह एक अच्छा उद्देश्य है, बशर्ते कि कृषि और उद्योग तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगों और सेवाओं में ठीक-ठीक संतुलन रखा जाए।

सन् 1940 में मैंने एक छोटी-सी पुस्तक आवर इंडिया लिखी थी और उन्हीं दिनों मैंने यह भी कहा था कि योजना बनाकर काम किया जाना चाहिए। और मैं इस योजना को पसंद करता हूं, क्योंकि इसका जाविया बड़ा है और इसके लक्ष्य ऊंचे हैं। लेकिन इस योजना में कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें मैं पसंद नहीं करता। **दूसरी योजना का दृष्टिकोण**

पहली बात है योजना बनाने के प्रति दृष्टिकोण। मैं तो यह कहता हूं कि गांधीजी के देश में हमें सबसे पहला काम गांवों की ज़रूरतों का पता लगाने से शुरू करना चाहिए था, यानी गांव वालों को कितने कुओं, कितनी रासायनिक खादों, कौन-से औजारों और किस तरह के बीज की ज़रूरत है। इनमें और भी

अनेक चीजें हैं। उसके बाद हमें कच्चे माल, जनशक्ति और पूँजी के अपने साधनों का पता लगाना चाहिए था, जिनको जुटा लेने के बाद जनता की ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। इसी खोजबीन के आधार पर ही हमें यह देखना चाहिए था कि हम इन पांच वर्षों के दौरान कितना उत्पादन करने की आशा करते हैं और कितना कर सकते हैं। अंत में इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हम कह सकते थे कि प्रतिव्यक्ति आमदनी में कितनी प्रतिशत वृद्धि हो सकती है।

लेकिन, दूसरी योजना इसके बिल्कुल उल्टा बनाई गई है। कुछ लोग दिल्ली में बैठे और उन्होंने फैसला कर दिया कि पांच वर्षों में राष्ट्रीय आय इतनी बढ़नी चाहिए। अपनी मर्जी के मुताबिक उन्होंने आंकड़े निश्चित किए और फिर वे यह पता लगाने की कोशिश करने लगे कि भिन्न-भिन्न उद्योगों में कितना उत्पादन करके इस लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन के लक्ष्य निश्चित करके बाद मैं वे यह पता लगाने निकले कि हमारे पास आवश्यक साधन कितने हैं। यह जानकार कि हमारे साधन थोड़े हैं उन्होंने फैसला किया कि इस कमी को घाटे की अर्थव्यवस्था से पूरा किया जाए, जिसका अर्थ यह है कि अधिक करेंसी नोट छापे जाएं।

लेकिन उससे जनता की जेब में रुपये की कीमत घट जाती है। इसे ही मुद्रास्फीति कहते हैं। बाद में उन्होंने निश्चय किया कि इतने अधिक नोट तो न छापे जाएं, पर कुछ कमी को पूरा करने के लिये कर बढ़ा दिए जाएं। हमारी अर्थव्यवस्था में जो त्रुटियाँ हैं उसका कारण योजना बनाने में ज़रूरत से ज्यादा यही केंद्रीकरण और अ-गांधीवादी दृष्टिकोण है। भारी उद्योगों पर अनुचित बल

योजना के जिस दूसरे पहलू से मुझे क्षोभ होता है वह है भारी उद्योगों पर अनुचित ज़ोर और उन्हें प्राथमिकता देना। दुनिया के सभी प्रगतिशील और बहुत अधिक औद्योगीकृत देशों ने औद्योगीकरण का सिलसिला पहले-पहल उपभोक्ताओं की ज़रूरतें पूरा करने के लिये कारखाने बनाकर आरंभ किया, यानी उन्होंने कपड़े, साबुन, जूते, मृगार संबंधी सामान और जीवन की सुख-सुविधा की अन्य चीजें बनाने के कारखाने बनाए। उन मशीनों के बनाने का काम उन्होंने बाद में हाथ में लिया, जिनसे दैनिक जीवन की ज़रूरतों की चीजें बनाने के लिये मशीनें बनती हैं। हमारी दूसरी योजना में इस प्राकृतिक और ऐतिहासिक परिपाठी को उलट दिया गया है, और हमारी योजना सिर के बल खड़ी है। 'उत्पादक चीजों' (मशीने आदि) को प्राथमिकता देखकर, जिन्हें हम न पहन सकते हैं, न खा सकते हैं, न जिनका हम प्रयोग कर सकते हैं और कारखाने आदि बनाने की बात को खटाई में डालकर जिनसे जनता के लिये दैनिक जीवन की चीजें बनती हैं यह योजना (जिसके द्वारा जनता का जीवन अधिक सुविधाजनक बनाने की आशा की जा रही है) जनता पर और भी बोझ लाद रही है। इस वर्ष के बजट में भी यही किया गया है। जनता से कहा गया है कि वह कुछ कुर्बानी करे, लेकिन जनता की तो आगे ही हालत अच्छी नहीं है। औद्योगीकरण का यह सिलसिला अभी तक केवल रूस और अन्य साम्यवादी देशों में ही थोपा गया है जहां हर पांच साल के बाद ग्रीष्म से यह कहा जाता है कि वह अपनी मेहनत का फल छोड़ दे ताकि अगली पंचवर्षीय योजना को सफल बनाया जा सके। इन देशों

में साधारण जनता का जीवन पहले की तरह कठोर और दयनीय है, और पूर्वी यूरोपीय देशों में और रूस में जनता यह आवाज़ उठा रही है कि हमें राहत देने के लिये इस सिलसिले में तबदीली करनी चाहिए।

आज जो अन्न की कमी है उसका एक कारण यह है कि दूसरी योजना में पहली योजना के विरुद्ध कृषि पर पर्याप्त बल नहीं दिया जा रहा है। इसलिये यह योजना ऊपर से भारी और इकतरफी है।

साझा खेती

दूसरी योजना में साझा खेती को जो तरजीह दी गई है वह उन लोगों को पसंद नहीं है जिन्होंने इस विषय का गहरा अध्ययन किया

**दूसरी योजना में साझा खेती
को जो तरजीह दी गई है वह
उन लोगों को पसंद नहीं है
जिन्होंने इस विषय का गहरा
अध्ययन किया है। जहां कहीं
भी किसान से भूमि लेकर उसे
सामूहिक अथवा साझे खेतों के रूप में रखा
गया है वहां पैदावार घटी है। सोवियत रूस
और पूर्वी यूरोपीय देशों में भी यही हुआ है।
इसी कारण यूरोप्लाविया और पोलैंड की
साम्यवादी सरकारों ने अपनी गलती महसूस
की है और उन्होंने किसानों को साझा खेती
को छोड़कर अपनी ज़मीन खुद जोतने की
छूट दे दी है। इस लिहाज़ से चीन की निस्वत्त
हमें जापान को अपना पथप्रदर्शक मानना
चाहिए। जापानी किसान ने उपयुक्त सहायता
से ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों से भी इतनी
अधिक पैदावार की है जितनी कि साझे खेतों
से नहीं की जा सकती। हम जितनी बहुमुखी
सहकारी संस्थाएं बना सकते हैं, बनाएं। उन
किसानों को जो खुशी से अपनी-अपनी भूमि**

इकट्ठी करके, मिलकर खेती करना चाहते हैं हर तरीके से सुविधा भी दी जानी चाहिए। लेकिन फिर भी हमारी ज्यादा कोशिश यह होनी चाहिए कि किसान-मालिकों की मदद की जाए, जो कि हमारे राष्ट्र की रीढ़ है, ताकि जिस भूमि से उन्हें इतना लगाव है और जिसे एकाएक छोड़ने को बे तैयार नहीं हैं उससे वे अधिक पैदा करें।

योजना के बारे में विचार करते हुए हमारा ध्यान एक दार्शनिक प्रश्न की ओर जाता है।

क्या योजना जनता के लाभ के लिये है या क्या जनता योजना को सफल बनाने के लिये है? किसी भी जनतंत्र में किसान, उद्योगपति और मज़दूर तथा उपभोक्ता की इच्छा के अनुसार काम करने की आज़ादी अक्षुण्ण रहनी चाहिए। यदि कोई योजना इस आज़ादी को कानून से और अर्थिक दबाव से दबाने की कोशिश करती है तो वह जनता की अंतःप्रेरणा को कुचलती है और इससे ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती है जिसमें मुनाफाखोरी, चोरबाज़ी और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो।

इसके विपरीत यदि जनता को उसकी अंतर्निहित शक्ति और उत्पादक क्षमता को उसकी मेहनत और उद्यम का पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाए तो प्रगति बहुत तेज होगी। दृष्टिकोण व्यावहारिक हो

एक बात और है। यदि हम यह देखते हैं कि योजना की कुछ बातें व्यवहार और परीक्षा की कसौटी पर नहीं उतरतीं तो हमें उनमें हेर-फेर करने या उन्हें छोड़ देने के लिये भी तैयार रहना चाहिए। योजना में किसी धर्माधिता से काम नहीं लेना चाहिए और न ही योजना कोई ऐसा तीर्थ स्थान है जिसकी हमें पूजा ही करनी चाहिए। योजना तो किसी लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है, और हमारा लक्ष्य है जनता की खुशहाली और आज़ादी। आर्थिक विकास के लिये किसी आसान रास्ते पर चलने से काम नहीं बनेगा। साम्यवादी देशों में जनता की इच्छाएं पूरी न करने से यह सिद्ध हो गया है। इसलिये व्यावहारिक दृष्टिकोण ही सबसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। □

(लेखक संसद सदस्य थे; 7 जुलाई, 1957 अंक से)

इस विभाग का नाम क्या रखा जाए

○ सत्यदेव नारायण सिन्हा

ता रीख 18 फरवरी को सबेरे-सबेरे टेबल पर रखे हुए अखबार पर नज़र पड़ी। बड़े-बड़े अक्षरों में अखबार के ऊपर लिखा था- 1958-59 के रेलवे-बजट में 27 करोड़ 34 लाख की बचत; लोकसभा में रेलमंत्री द्वारा घोषणा।

मेरी नज़र अखबार पर थी और दिल रेलवे विभाग में चक्कर लगा रहा था। सोच रहा था कुछ और ही। भारतीय रेलों में 974 करोड़ रुपये की धनराशि और लगभग 35 हजार मील लंबी रेल पटरी के कारण, रेल देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीय उद्योग है और वह सबसे बड़ा वह आधार है जिस पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था निर्भर है। आज भारतीय रेलों में दस लाख से भी ज्यादा लोग काम करते हैं। यह एक ऐसा विभाग है जिससे देश को सबसे ज्यादा आमदनी होती है। तो क्या वह 27 करोड़ की रकम, 37 या 47 करोड़ नहीं हो सकती थी? ज़रूर हो सकती थी। अगर रेलवे कर्मचारियों में 'ईमानदारी' आ जाए तब। मगर यह 'ईमानदारी' आए कहां से? बाज़ार में बिकती तो नहीं जो खरीद कर रेलवे कर्मचारियों को बांट दी जाए? इस लाभ की राशि को बढ़ाने में रेलवे कर्मचारी ही सहयोग दे सकते हैं। लेकिन इनका दूसरा ही हाल है।

बिना टिकट यात्रा

रेलवे कर्मचारियों में अधिकांश, रेलों को अपनी निजी संपत्ति समझते हैं। जहां जाना हुआ बिना टिकट गाड़ी में चढ़ गए और स्टाफ कह कर निकलते हुए अपनी मंजिल तक पहुंच गए। खुद तो ऐसा करते ही हैं, अपने चाचा-भतीजों के लिये भी बिना टिकट चलने का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। 'फलां गार्ड का भतीजा हूँ' कह कर ये अपना भी बैड़ा पार लगा लेते हैं।

पटने का एक आदमी, पटने से गया, महीने

में औसतन बीस बार जाता है और हर बार बिना टिकट। क्योंकि उसके चाचा पटना-गया लाईन पर गार्ड हैं। एक दिन वह अपने साथियों से बिना टिकट गया जाने का हाल बयान कर रहा था। उसने बताया- मेरे चाचा गार्ड हैं और वे सेकेंड क्लास में मुझे बैठा देते हैं। जब कोई टिकट चेकर आता है तो चाचा का नाम बता देता हूँ। अब जरा सोचिये, पटना से गया तक का दूसरी श्रेणी का रेल भाड़ा है चार रुपये। आने-जाने का भाड़ा हुआ आठ रुपये। महाशय बीस बार आए और बीस बार गए तो रेलवे को एक महीने में तीन सौ बीस रुपया देने से बच गए और एक साल में तीन हजार आठ सौ चालीस रुपया 'चाचा-भतीजों' के नाम पर गर्क हो गया।

अगर इस विभाग के 10 लाख कर्मचारियों में से 10 हजार के चाचा-भतीजे और वे स्वयं इसी तरह बिना टिकट सफर करते हैं, तो उपर्युक्त व्यक्ति के भाड़े के हिसाब से एक महीने में 32 लाख रुपये की आमदनी बढ़ने से रह जाती है और साल में तीन करोड़ चौबीस लाख रुपये की। लेकिन रेलवे कर्मचारियों में बिना टिकट चलने वालों की संख्या दस हजार व्यक्तियों तक ही होगी, यह माना नहीं जा सकता। आप ही स्वयं सोचें, वह संख्या कितनी होगी? आप मुझसे सहमत होंगे। सौ में 75 व्यक्ति। तो, क्या ऐसे व्यक्ति रेलवे की आमदनी को बढ़ने से रोक नहीं रहे हैं? हमारी सरकार को इस ओर ठोस कदम उठाना चाहिए। मगर हमारी सरकार भी क्या करेगी, जबकि टिकट-चेकर के भतीजों को ही यह छूट मिली हुई है?

एक टिकट-चेकर ने एक ऐसे आदमी से बिना टिकट चलने पर 'चार्ज' ले लिया जो रिश्ते में किसी रेलवे कर्मचारी का भतीजा था। चार्ज दे कर वह आदमी अपने चाचा से इसकी

शिकायत करने गया। चाचा महोदय दौड़े हुए आए और टिकट चेकर से कहा- क्या यार, अपने लड़कों से ही चार्ज लेने लगे? टिकट चेकर ने 'चार्ज' वापस करने पर अपनी असमर्थता प्रकट की। चाचा महोदय मुंह लटकाए लौट गए। मगर जानते हैं उस टिकट-चेकर का कर्मचारियों की मंडली से बहिष्कार कर दिया गया। बेचारे को 'जल में रह कर मगर से बैर' करना पड़ा। उसने एक हफ्ते के बाद ही 'चार्ज' की हुई रकम को अपनी पॉकेट से उस 'चाचा महोदय' को वापस कर दिया। अगर कोई नाम टिकट चेकर अपने नये खून के कारण 'ऊपरी रकम' लेने से इंकार करता है तो पुराने खून वाले उससे कहते हैं- अगर अपनी नौकरी बचानी है तो आई हुई लक्ष्मी को मत दुकराओ। बेचारा नया खून बदल कर पुराने खून के रास्ते पर आ जाता है। गाड़ियां लेट क्यों?

इस बार यह भी सुनने में आया कि हर 13 मिनट पर गाड़ियों में लगी ख़तरे की जंजीर खींची गई और उन्हें बेकार ही लेट किया गया। मगर सिर्फ इसमें आम लोगों का हाथ रहा हो और रेलवे कर्मचारी बेदाम रहे हों, ऐसी बात नहीं। मैंने देखा है, व्यापरियों ने दस-दस के दो-चार नोट गार्ड को दिए और जितनी देर चाही, गाड़ी रुकवा कर आलू के बोरे, आम और फूलगोभी की टोकरियां लदवा दी। ऐसे ही समय में, गार्ड को अपने आत्मीयों से यह भी कहते सुना है- क्या करूँ यार, बड़ा 'डल' जा रहा है। जहां दो सौ, ढाई सौ रोज़ होता था, वहां अब सौ भी पॉकिट में नहीं आता।

सोचिए, ये सज्जन सौ की ऊपरी रकम को कम समझते हैं, दो-ढाई सौ रोज़ाना आमदनी के लिये गाड़ियां लेट न हों तो क्या हों? तभी तो 1957 के अगस्त महीने से लेकर आज तक,

दिल्ली से हावड़ा और हावड़ा से दिल्ली के बीच चलने वाली गाड़ियां शायद ही पंद्रह दिन ठीक समय पर आई हों। आजकल आलू, फूलगोभी के व्यापार के दिन हैं। जहाँ इन चीज़ों का विशेष उत्पादन होता है, वहाँ से ये चीज़ें दूसरे स्थान को भेजी जाती हैं। हर टोकरी पर इन लोगों का 'रेट' बंधा होता है। व्यापारी गरजवश रकम देता है, और ये छक कर गाड़ियों को लेट करते हैं। गाड़ियों के लेट होने के कई कारणों में से यह एक प्रमुख कारण है। यों तो जंजीर खींच कर गाड़ियों को रोकने में छात्रों की ही संख्या अधिक है।

कर्मचारियों के घरों में रेल के पंखे

रेल के ऊंचे दर्जों में बड़े-बड़े आइने लगे होते हैं, जिनमें से कुछ पेचकस से खोल लिये जाते हैं और रेलवे कर्मचारियों के कमरों में शोभा बढ़ाते हैं। रेल के डिब्बों में लगे पंखे भी खोल लिये जाते हैं और उनके भीतर का 'क्लेब' बदलवा कर धरों में लगा दिया जाता है। एक बार एक छात्र रेल सर्विस कमीशन का फार्म भरवाने एक रेल कर्मचारी के घर गया। वह

छात्र अपने साथी से कह रहा था- 'यार हृद कर दी है उसने (रेलवे कर्मचारी ने, जिसके घर वह फार्म लेकर गया था) अपने पलंग के ऊपर चारों कोनों पर रेल के डिब्बे के पंखे लगाए हुए हैं और अपनी बीबी तथा बच्चों के बिस्तरे के ऊपर भी। इस तरह की बातें करते वह छात्र अपने साथी के साथ मुझसे आगे निकल गया। उसके बाद की बातें मैं सुन न पाया।

आज रेल के इस विस्तृत विभाग के कर्मचारियों में जितना भ्रष्टाचार फैला हुआ है, उतना शायद किसी और सरकारी विभाग में न होगा। एक रेल कर्मचारी कह रहा था- रिश्वत न लूं तो काम न चले। दो तीन दिनों की छुट्टी के लिये दस रुपये आफिसरों को देने पड़ते हैं, तब जाकर छुट्टी मिल पाती है। बार-बार छुट्टी लेनी पड़ती है और हर बार पॉकिट गर्म करने पर ही छुट्टी मिलती है, और इसी तरह से जब भी कभी कोई काम पड़ता है, तो बिना 'चांदी के जूते' के काम बनता ही नहीं। लाचारीवश ही रिश्वत लेने को बाध्य होता हूं। इधर लेता हूं, उधर देता हूं।

हर साल रेल को कितने करोड़ का नुकसान होता है- इसका जवाब तो यही लोग दे सकते हैं। 'ओपेन डिलिवरी' लेकर व्यापारी रेल से जो हर्जाना वसूल करता है, वह रेलवे कर्मचारियों की 'सांठ-गांठ' से ही। मेरा तो अनुमान है कि हर साल दस करोड़ रुपये से अधिक की राष्ट्रीय संपत्ति इन लोगों के पॉकिट में आती है। क्या हमारी सरकार इस ओर ठोस कदम उठा कर, फैले हुए इस भ्रष्टाचार को दूर करेगी? इसमें जनता का सहयोग भी अपेक्षित है, क्योंकि बिना उनके सहयोग के सरकार इस भ्रष्टाचार को दूर करने में सफलता नहीं पा सकेगी। क्योंकि ऐसे देशद्रोहियों को उचित पाठ पढ़ाना होगा, जिसे वे सदा याद रखें और राष्ट्रीय धन को अपनी पॉकिट में न रखें। फिर एक दिन ऐसा भी आएगा कि 27 करोड़ की राशि 45 करोड़ अवश्य हो जाएगी लेकिन उपर्युक्त कुर्कम करने वाले रेलवे कर्मचारी अपने स्वार्थ को त्याग, देश के साथ गद्दारी न करें। □

(30 मार्च, 1958 अंक से)

Now Delhi in Patna

Admission open...

IAS/PCS

सामान्य अध्ययन + इतिहास

By :

MEDIUM : हिन्दी + ENGLISH

शैलेन्द्र सिंह

With Proven Capacity

Features:-

- व्याख्यान पर बल
- Regular Debate

RENNED FOR ANALYTICAL APPROACH

- सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के नोट्स
- Answer Formating
- Regular Test
- साक्षात्कार (Interview)

New Batch : 1st week of every month

अन्य विषय : निबंध / साक्षात्कार

THE ZENITH

An Innovative Institute for I.A.S.

G-4, Chandrakanta Apartment, Opp. Bata, Pandui Kothi Lane, Boring Road, Patna-800001,
Mob. : 9431052949 / 9835490233 E-mail : thezenithias@rediff.com

YH/1/7/10

सहकारी खेती के आर्थिक पहलू

○ श्रीमन्नारायण

सहकारी खेती संबंधी लक्ष्य राज्य सरकारों से बातचीत करने के बाद ही निश्चित किए जाने थे, परंतु किसी न किसी कारण से राज्य सरकारों ने इस संबंध में प्रयोग सही ढंग से नहीं किए

Sहकारी खेती आर्थिक दृष्टि से फायदेमंद रहेगी या नुकसानदेह, यह आज चर्चा का विषय बना हुआ है। इसलिये इस विषय पर वस्तुवादी और वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना अच्छा रहेगा।

सहकारी खेती का विचार कोई नया नहीं है। किसानों को सहकारी खेती संबंधी संस्थाएं बनाने के लिये प्रोत्साहन देने और उनकी सहायता करने के संबंध में पहली पंचवर्षीय योजना में कई सुझाव दिए गए थे। उसके अंतर्गत राज्य सरकारों को सहकारी खेती के विस्तृत कार्यक्रम बनाने के लिये कहा गया था, लेकिन दुर्भाग्यवश इस दिशा में बहुत कम काम हुआ है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी यह कहा गया था कि इस संबंध में सभी का एकमत है कि सहकारी खेतों का जल्दी से जल्दी विकास किया जाए, दूसरी पंचवर्षीय योजना में कुछ ऐसे आवश्यक कार्य करने होंगे जिससे सहकारी खेती योग्य भूमि के काफी बड़े हिस्से पर सहकारी ढंग से खेती की जा सके। सहकारी खेती संबंधी लक्ष्य राज्य सरकारों से बातचीत करने के बाद ही निश्चित किए जाने थे, परंतु किसी न किसी कारण से राज्य सरकारों ने इस संबंध में प्रयोग सही ढंग से नहीं किए। सहकारी खेती की दिशा में प्रगति की रफ्तार धीमी होने का एक कारण यह है कि 'संयुक्त सहकारी खेती' के तरीकों की व्यावहारिकता के संबंध में संदेह प्रकट किए जा रहे हैं।

सहकारी खेती के विभिन्न तरीके

दरअसल, सहकारी खेती के फायदे और नुकसान के संबंध में ज्यादा गृलतफहमी इसलिये पैदा होती है क्योंकि सहकारी खेती की परिभाषा के संबंध में कुछ अनिश्चितता है। मोटे तौर पर, तीन प्रकार की खेती को हम सहकारी खेती कह सकते हैं। सबसे पहले, खेती का एक तरीका है जिसे हम 'सहकारी संयुक्त खेती' कहते हैं। इस प्रकार की खेती के अंतर्गत इकट्ठी की हुई ज़मीन की मल्कियत वैसी की वैसी बनी रहती है और ज़मीन की मल्कियत और कीमत का ख्याल रखा जाता है। इस प्रकार की सहकारिता में सदस्य अगर चाहें तो, कुछ शर्तें पूरी करने पर, संस्था से अलग हो सकते हैं।

दूसरे, सहकारी सामूहिक खेती संस्थाएं हैं। इसमें ज़मीन के अलावा सदस्यों के दूसरे सभी साधन भी इकट्ठे कर लिये जाते हैं। और यहां ज़मीन सहकारी संस्था की हो जाती है। और खेती से होने वाली आमदनी का बंटवारा सदस्यों द्वारा किए गए काम के आधार पर होता है। इस व्यवस्था को रूस या दूसरे साम्यवादी देशों की 'कलखोज' पद्धति जैसा नहीं समझ लेना चाहिए क्योंकि कलखोज में न तो सदस्यता स्वेच्छा से होती है, न ही अपना मार्ग आप निश्चित करने और अपना प्रशासन आप चलाने के प्रजातंत्री सिद्धांतों का पालन ही होता है।

तीसरे, खेती संबंधी विभिन्न प्रक्रियाओं

जैसे, खरपतवार हटाना, फसल काटना, अनाज काटना, अनाज फटकना, खाद डालना, सिंचाई और बिक्री व्यवस्था आदि में विभिन्न प्रकार के सहयोग की व्यवस्था होती हैं। खेती की प्रक्रियाओं में इस प्रकार की आपसी सहायता की व्यवस्था सहकारी संस्थाओं के माध्यम से की जाती है। सुप्रसिद्ध जर्मन सहकारी विशेषज्ञ डॉ. आटो शिलर ने इस प्रकार की सहकारी व्यवस्था को 'सहकारी ढंग से की जाने वाली व्यक्तिगत खेती, कहा है।

सब तरीकों के लिये गुंजाइश

इसप्रकार भारत में इन तीनों तरह की सहकारी खेती के संबंध में तजुर्बा करने की काफी गुंजाइश है। इस प्रकार के तजुर्बों में किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए और स्थानीय हालात के मुताबिक एक साथ कई तरह की सहकारी खेती को स्वेच्छित आधार पर पनपने का मौका दिया जाना चाहिए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि "विकास कार्यक्रम की वर्तमान स्थिति में सहकारी खेती के लिये ज़मीन इकट्ठा करने और सहकारी इकाइयों द्वारा उस पर खेती करने के तरीकों के संबंध में काफी लचीली नीति अपनाने की ज़रूरत है। एक ही स्थान पर कई तरीकों के संबंध में तजुर्बे किए जा सकते हैं, और विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के तरीकों के योग द्वारा ज्यादा-से-ज्यादा लाभ उठाया जा

सकता है। मिसाल के तौर पर, खेती संबंधी सभी कामों के लिये या केवल कुछ कामों के लिये ही सहकारी ढंग पर काम किया जाए। परिवारों के कुछ समूह सहकारी खेती के अंतर्गत कुछ छोटी इकाइयों के रूप में रहें या जैसा कि सहकारिता के विकास में पहले पहल होना संभव है, पारिवारिक जोत की व्यवस्था हो और कुछ विशेष कामों के लिये उनकी सहायता सहकारिता अपना कर की जाए। इस संबंध में दूसरी पंचवर्षीय योजना में निहित कुछ बातें बता देना फायदेमंद होगा। “विभिन्न परिस्थितियों में सहकारी खेती अपना कर और दूसरे इसीप्रकार के काम करके काफी तजुर्बे हासिल करने हैं। इस संबंध में विस्तृत व्यौरों में जाते हुए इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि हम यह सब तजुर्बे के लिये कर रहे हैं। कौशिश यह होनी चाहिए कि ढंग से अध्ययन करके और यह समझ कर कि समस्या का सबसे अच्छा हल कौन-सा है, उसका ज्यादा से ज्यादा प्रचार किया जाए ताकि किसान अपनी परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए उसको खुशी से अपना लें।”

प्रधानमंत्री ने अभी हाल ही में अपने एक भाषण में इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि सहकारी खेती और सामूहिक खेती दो अलग-अलग चीजें हैं, और सरकार का यह उद्देश्य बिल्कुल नहीं है कि भारतीय किसानों पर ‘संयुक्त सहकारी खेती’ जबरदस्ती लादी जाए। यह कार्य शुरू करने के लिये देशभर में काफी व्यापक रूप में सहकारी सेवाओं की व्यवस्था करने की ज़रूरत है। भारत की कृषि संबंधी परिस्थितियों में सुधार करने में सहकारी सेवाओं के उपयोग के संबंध में कोई दो मत नहीं हो सकते। जहां कहीं ये सहकारी सेवाएं खुद-ब-खुद संयुक्त सहकारी खेत का रूप धारण करने लगें, वहां किसानों को इस संबंध में तजुर्बा करने के लिये सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जाएं।

सहकारी खेत बहुत बड़े न हों

यह बात समझ लेनी चाहिए कि यह ज़रूरी नहीं है कि संयुक्त सहकारी खेत बहुत बड़े-बड़े हों। रूस के सामूहिक खेत तो 10, 20, 30

और कहीं-कहीं तो 40 हजार एकड़ तक के हैं। हमारे देश में तो, मेरे विचार में, यही काफी होगा कि 24,40 या 100 परिवार अपनी ज़मीन इकट्ठा कर लें और लगभग एक परिवार के रूप में संयुक्त रूप से खेती करें। संयुक्त खेती की कामयाबी के लिये यह ज़रूरी है कि जो परिवार उसमें शामिल हों, उनमें आपसी प्रेम और एकता की भावना हो। इसलिये यह स्पष्ट ही है कि इस प्रकार की संयुक्त सहकारी खेती ‘ग्रामदान गांवों’ में जहां कि सब किसान अपनी मर्जी से अपनी ज़मीन का अधिकार ग्राम समुदाय को दे देते हैं, ज्यादा कामयाब हो सकती है। संयुक्त खेती से उस ज़मीन से भी लाभ हो सकता है। जोकि हाल ही में फिर से खेती योग्य बनाई गई है।

गांधीजी के विचार

यहां यह बात समझ लेने की है कि गांधीजी भी भारत में सहकारी खेती के तरीकों को अपनाने के पूरे-पूरे हक् में थे।

24 फरवरी, 1942 के हरिजन में गांधीजी लिखते हैं—“मेरा पूर्ण विश्वास है कि हमें खेती से तब तक पूरा लाभ नहीं हो सकता जब तक कि हम सहकारी खेती को न अपना लें। क्या यह बात उचित प्रतीत नहीं होती कि यह ज्यादा अच्छा है कि गांवों के 100 परिवार खेती के लिये अपनी ज़मीन इकट्ठा कर लें और फिर अपनी आमदनी को आपस में बांटें, बजाय इसके कि ज़मीन अलग-अलग 100 टुकड़ों में बंटी हुई हो।” सहकारिता के संबंध में गांधीजी का यह विचार था कि ज़मीन की मलिकयत भी सहकारी हो और उस पर जुताई और खेती भी सहकारी ढंग से की जाए। “ज़मीन के मालिक सहकारी ढंग से काम करें और पूंजी, औजार, पशु, बीज आदि भी समुदाय की संपत्ति हों।” गांधीजी का यह कहना था कि उनके द्वारा सुझाई गई सहकारी खेती की व्यवस्था में “ज़मीन की सूरत ही बदल जाएगी और किसानों की ग़रीबी और बेकारी दूर हो जाएगी।” इस संबंध में उन्होंने आगे कहा—“यह तभी मुमकिन हो सकता है जब लोग एक-दूसरे के दोस्त बन जाएं और एक परिवार के समान रहें।” यहां यह बात समझ लेने की

है कि गांधीजी संयुक्त सहकारी खेती के हक् में थे, न कि केवल सहकारी सेवाओं की व्यवस्था करने के। इसलिये यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री इस संबंध में बहुत हेशियारी से कदम उठा रहे हैं और उसके प्रस्तावों में मूल परिवर्तन के तत्व नहीं हैं।

पैदावार में बृद्धि

यह पता चलता है कि आमतौर पर छोटे खेतों में जहां खेती भरपूर ढंग से की जाती है, बहुत बड़े-बड़े ‘दैत्याकार’ खेतों की बनिस्वत ज्यादा पैदावार होती है। मिसाल के तौर पर, अमरीका और ऑस्ट्रेलिया के बड़े-बड़े खेतों में दुगुनी और डेनमार्क और स्विटजरलैंड के खेतों में प्रतिव्यक्ति उत्पादकता बढ़ जाती है, लेकिन प्रति एकड़ नहीं। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण बात है जिसे भारत में खेती के विकास में दिलचस्पी रखने वाले सभी लोगों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

प्रशिक्षित कर्मचारी

भारत में सहकारी खेती को कामयाब बनाने के लिये काफी संख्या में ईमानदार और कुशल कर्मचारी तैयार करने की ज़रूरत है जो किसानों में कुरबानी और सेवा की भावना पैदा कर सकें। ऐसे ईमानदार और मेहनती कर्मचारियों के बिना यह डर है कि कहीं सहकारी खेती आर्थिक शोषण का ही कोई और रूप न धारण कर ले। लेकिन फिर भी कोई कारण नहीं है कि भारत में सहकारी खेती का जो सोपानवार कार्यक्रम चल रहा है, उसमें कामयाबी न हो। सहकारी सेवाओं के कामयाब होने से संयुक्त सहकारी खेती के लिये परिस्थितियां तैयार हो जाएंगी। यह बात यहां बता देनी होगी कि सहकारी खेती की यह प्रक्रिया स्वेच्छा पर आधारित होनी चाहिए और इस संबंध में किसी किस्म का दबाव या जबरदस्ती न की जाए। भारत के किसान अक्लमंद हैं, और अपनी बुद्धि का सही इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर उन्हें सहकारी खेती के आर्थिक पहलुओं के बारे में ठीक तरह से समझाया जाए तो वे खुद उसे मानने के लिये तैयार हो जाएंगे, यह बात निश्चित है। □

(लेखक योजना आयोग के सदस्य थे;
1 मार्च, 1961 अंक से)

पंचवर्षीय योजनाएं और कृषि उत्पादन

○ वी. टी. कृष्णमाचारी

सा

भाजिक और आर्थिक विकास की किसी भी बड़े पैमाने की योजना की सफलता के लिये यह ज़रूरी है कि खेती का उत्पादन बढ़े। जो देश इस समय औद्योगिक रूप से उन्नत है, उनका यही तजुर्बा रहा है। भारत जैसे कम विकसित देशों पर तो यह ज्यादा लागू होता है। जब दूसरी पंचवर्षीय योजना तैयार हो रही थी, उस समय योजना आयोग ने देश के सामने खेती के उत्पादन को दस साल के अंदर दुगुना कर देने का लक्ष्य रखा। यह हमारे उस लक्ष्य के ही अनुसार है जिसके द्वारा हम 1976 तक प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी कर देना चाहते हैं। यदि शहरी और देहाती लोगों के बीच आय की खाई को बढ़ाना नहीं है, तो 1976 तक देहात के लोगों की प्रतिव्यक्ति आय कम-से-कम दुगुनी हो जानी चाहिए तभी उस पैमाने की औद्योगिक उन्नति के लिये सही नींव तैयार होगी, जिसको हमने अपना लक्ष्य बना रखा है।

दुगुनी आय का लक्ष्य

इस लेख में मैं दो प्रश्नों का उत्तर देना चाहता हूँ :

- जो लक्ष्य सामने रखा गया है यानी 1976 तक देहात के प्रतिव्यक्ति की आय दुगुनी हो जाए, क्या उसे प्राप्त करना संभव है?
- यदि हाँ, तो उसके लिये क्या करना होगा?

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमने अपने सामने जो लक्ष्य रखा है, वह प्राप्त हो सकता है। विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है—“यदि जानी हुई तकनीक का सही उपयोग किया जाए तथा सिंचाई और खेती के रक्कें का ज्यादा-से-ज्यादा विस्तार हो, तो भारत अपनी खेती की उपज दुगुनी या पांचगुनी कर सकता है। जब तक हम अपना यह लक्ष्य प्राप्त करेंगे, तब तक और नयी तकनीक निकलेगी आगे

प्रगति के लिये और भी रास्ते खुलेंगे।

समझदार किसान

ऐसे समझने का कोई कारण नहीं है कि हमारे यहाँ के खेतिहर लकीर के फकीर हैं और नये तरीकों को अपनाना नहीं चाहते। 1892 में भारत सरकार ने उस ज़माने के बहुत बड़े कृषि विशेषज्ञ डा. वेलकर को भारत में खेती की उन्नति के संबंध में रिपोर्ट देने के लिये कहा। सारे देशों की छानबीन करने के बाद उन विशेषज्ञ ने यह रिपोर्ट दी—“भारतीय खेतिहरों में जो सबसे अच्छे हैं, वे सब मामलों में औसत ब्रिटिश खेतिहर के बराबर हैं या उनसे अच्छे हैं। यहाँ के सबसे घटिया खेतिहर में यही कमी है कि उसके पास खेती-बाड़ी सुधारने की सुविधाएं नहीं हैं। इस मामले में भारत की बाकई और देशों से तुलना नहीं हो सकती। फिर भी यहाँ के खेतिहर धीरज के साथ बिना माथे पर शिकन लाए काम करते रहते हैं जबकि दूसरे देशों में इस तरह शायद लोग काम न करें। इस संबंध में यह स्मरण रखा जाए कि इंग्लैंड में गेहूँ की खेती भारत से सदियों बाद शुरू हुई। इसलिये यह संभव नहीं है कि उनका तरीका ऐसा है कि उसमें उन्नति की गुंजाइश ज्यादा हो। हाँ, यहाँ जो कठिनाई है, वह यह है कि लोगों को सुविधाएं कम हैं, जैसे सिंचाई और खाद की कमी है। यद्यपि यहाँ के लोग किसी नयी बात को धीरे-धीरे ग्रहण करते हैं, फिर भी यदि खेतिहर को विश्वास हो जाए कि कोई तरीका बहुत अच्छा है और उससे उसे लाभ हो सकता है, तो वह उसे ग्रहण करने में हिचकिचाता नहीं।”

चतुर्सूत्री कार्यक्रम

यह मंतव्य उस युग में जितना सही था, आज उससे कहीं ज्यादा सही है। यदि खेतिहरों को वैज्ञानिक खेती करने की सुविधाएं दी

जाएं, तो वे ज़रूर उसे अपनाएंगे।

पहली और दूसरी योजनाओं में खेती के विकास का एक सर्वांग सुंदर कार्यक्रम आरंभ किया गया है। भविष्य की योजनाओं में उन्हें और बढ़ाना पड़ेगा ताकि 1976 तक देश के हर परिवार को अपनी जोत का वैज्ञानिक उपयोग करने का मौका मिले। उद्देश्य यह है कि ज़मीन तथा सिंचाई संबंधी साधनों का पूर्ण उपयोग करके एक स्वनिर्भर विभिन्न रूप वाली कृषि अर्थव्यवस्था का विकास किया जाए।

इन कार्यक्रमों को इस रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- पहले में ऐसे कार्यक्रम आएंगे जिनमें स्थायी उन्नति होती है। जैसे सिंचाई मेड बांधना, जिससे ज़मीन का क्षय न हो, भूमि-रक्षण, वनीकरण आदि।
- दूसरे में वैज्ञानिक खेती के ऐसे कार्यक्रम आते हैं जैसे- उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कार्बनिक खाद और हरी खाद, उन्नत तकनीक पहले से अच्छे औजार मुहैया करना आदि।
- तीसरे कार्यक्रम में ऐसे सामाजिक तत्वों का निर्माण है जिससे देहात में बेकार पड़ी जनशक्ति का उपयोग हो सके।
- चौथे कार्यक्रम में देहाती इलाके के ऐसे गैरखेती वाले धंधों को संगठित करना है, जैसे- विधायन, कुटीर तथा छोटे पैमाने के धंधे।

सिंचाई का महत्व

पहली श्रेणी के अंतर्गत बहुदेशीय बड़े, मझोले और छोटे सिंचाई कार्यों के द्वारा सिंचाई की सुविधाएं बढ़ाने की व्यवस्था को सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाती है। पहली तथा दूसरी योजना में ऐसे कार्यों के लिये 1,330 करोड़ रुपये की व्यवस्था है। जब ये सिंचाई कार्य पूर्ण हो जाएंगे तब उनसे 3 करोड़ 80

लाख एकड़ ज़मीन पर सिंचाई हो सकेगी। इसकी तुलना हम देश के विभाजन के समय के अंकड़ों से कर सकते हैं। उस समय 2 करोड़ 65 लाख एकड़ ज़मीन पर सिंचाई होती थी। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो बहुत थोड़े देशों ने इन थोड़े समय के अंदर इन बढ़ा कार्यक्रम हाथ में लिया है। यह हिसाब लगाकर देखा गया है कि 1976 तक सिंचाई वाली भूमि को 10.5 से 11 करोड़ एकड़ तक पहुंचा देना संभव होगा। ऐसे सिंचाई कार्यों की योजना इस प्रकार बनानी पड़ेगी तथा उन्हें इस प्रकार कार्यान्वित करना पड़ेगा कि प्रत्येक सोपान पर जितना भी पानी जलाशयों में जमा हो, उसे खेती के काम में लाया जाए।

यदि छोटे सिंचाई कार्यों के संबंध में हिसाब लगा कर यह देखा जाए तो यह पता लगेगा कि 1976 तक उनके द्वारा 1 से लेकर 10 करोड़ एकड़ ज़मीन तक की सिंचाई वाली पूरी ज़मीन का रक़बा क़रीब 20 करोड़ एकड़ हो जाएगा।

ज्यादा से ज्यादा सिंचाई की सुविधाएं प्रस्तुत हो जाएं, तो भी 14 करोड़ एकड़ ज़मीन पर सिंचाई की सुविधाएं प्राप्त नहीं होंगी। वहाँ मेंढ़ बांधकर भूमि संरक्षण तथा खेती संबंधी दूसरी तकनीकों से उपज बढ़ाई जा सकती है। इन उपयोगों को साथ-साथ कार्यान्वित किया जाए और पूरे इलाके में 1976 तक चालू कर दिया जाए। इसमें एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि नदियों के पास के इलाकों में जंगल लगा दिए जाएं और वहाँ उपयोगी इमारती लकड़ी के पेड़ लगाए जाएं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में वैज्ञानिक तकनीक को जल्दी से काम में लाने के संबंध में व्योरेवार कार्यक्रम हैं और वे उसके महत्वपूर्ण अंश हैं। इन्हें जारी रखना पड़ेगा और इनके दायरे को बढ़ाना पड़ेगा जिससे कि उसमें खेती वाला सारा क्षेत्र आ जाए। रासायनिक खाद के और कारखाने खोले जाएं और लोगों को गोबर जलाने के बदले कोयला मुहैया किया जाए ताकि जलाकर गोबर नष्ट करने की बजाय खाद के रूप में काम में लाया जा सके। खेती के औजारों और पौधों की बीमारियों पर भी ज्यादा ध्यान दिया जाए। तीसरी योजना

के अंत तक ये दोनों काम भी पूरे हो जाएंगे। खेती के अलावा धंधों की व्यवस्था की अभी तक देहातों में यथेष्ट प्रगति नहीं हुई। इस समय 26 खंडों में विधायन, कुटीर शिल्प तथा छोटे पैमाने के धंधों को आजमायशी तौर पर शुरू किया गया है। इन तजुर्बों से जो ज्ञान प्राप्त होगा उसे इस आंदोलन को वृहत्तर क्षेत्र में बढ़ाने में काम में लाया जाएगा।

देहातों का कायाकल्प

मैंने ऊपर जो कुछ बताया है, वह इस उद्देश्य से बताया है कि 1976 तक यदि देहातों में प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी करनी है तो कैसे कार्य करना पड़ेगा। पहली पंचवर्षीय योजना में प्रतिवर्ष 170 करोड़ रुपया देहाती कार्यक्रमों के लिये था। दूसरी योजना में यही रकम 220 करोड़ रुपया हो गई। दोनों में अप्लकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन कर्ज, देहातों का विद्युतीकरण, रासायनिक खाद के कारखाने, देहातों में धंधे आदि पर जो कोश आवंटित हैं, उसे गिना नहीं गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि तीसरी तथा बाद की योजनाओं में इन मदों की रकम को काफी बढ़ाना पड़ेगा। खेती की विभिन्न शाखाओं के उत्पादन संबंधी लक्ष्यों पर विचार किया गया है। यहाँ उनके ब्यारे देने की ज़रूरत नहीं है। फिर भी इस संबंध में एक बात पर प्रकाश डालने की ज़रूरत है। तीसरी योजना में चावल, दाल आदि अनाजों के उत्पादन पर जोर देना पड़ेगा। चौथी और पांचवीं योजनाओं में संरक्षणात्मक खाद, तिलहन, बागान की उपज जैसे- कहवा, चाय और रबड़ और उद्योग-धंधों के लिये कच्चा माल जैसे-बड़े रेशे की रुई और सन इत्यादि पर जोर देना पड़ेगा।

लक्ष्य और प्रयत्न

हमने अपने सामने जो लक्ष्य रखे हैं, वे महत्वाकांक्षापूर्ण ज्ञात हो सकते हैं, पर वे कुल मिलाकर हमारी अर्थव्यवस्था के लिये जितना ज़रूरी हैं, उससे किसी भी तरह ज्यादा नहीं हैं, क्योंकि और बातों के अलावा इन सालों में जो आबादी बढ़ेगी, उसे भी गिनती में लेना है। ये लक्ष्य तभी सफलता के साथ पूर्ण हो सकते हैं जब दो शर्तें पूरी हो जाएं। पहली यह कि प्रशासन सब दिशाओं में अपनी कार्यकुशलता

बढ़ाए। कार्यों के लिये जो योजनाएं बनाई जाएं, वे और भी संपूर्ण हों और उनका उद्देश्य हर सोपान में जो खर्च हो रहा है, उसे देखते हुए ठोस नतीजे प्राप्त करना हो। कार्यान्वयन तुरंत हो और कार्यान्वयन ऐसी न हो कि उसमें किसी प्रकार की देरी की गुंजाइश हो। जिला प्रशासन वितरण की एक ऐसी पद्धति संगठित करे जिससे कि आवश्यक चीजें, सेवाएं और कर्ज़ देहात के 7 करोड़ परिवारों को सही समय और सही जगह पर प्राप्त हों। दूसरी बात यह है कि सरकारी और गैरसरकारी नेतृत्व सब सतहों पर कंधे से कंधा मिलाकर काम करे और हर जगह जनता योजनाओं को बनाने में हाथ बंटाए और यह अनुभव करे कि योजनाएं उन्हीं की हैं। इस प्रकार और केवल इसीप्रकार उनमें यह भावना उत्पन्न होगी कि योजना उनकी है और इस प्रकार योजना सफल होगी। इन सब बातों से यह ज्यादा ज़रूरी है कि देहातों में स्वायत्त शासन की जो इकाइयाँ हैं, जैसे पंचायत और सहकारी समितियाँ, वे इसप्रकार से संगठित हों और जनता के हित के लिये लाभदायक पूँजीगत सामान को इस तरह से निर्मित करें कि जब भरपूर खेती संबंधी कार्य नहीं हो सकता, तो उन्हीं का पूरा लाभ उठाया जाए। इस प्रकार का पूँजी-निर्माण बहुत ही असरदार तरीका है जिसमें कम विकसित अर्थव्यवस्थाएं अपने ही प्रयास से बड़े पैमाने का सामाजिक और आर्थिक विकास प्राप्त कर सकती हैं। मैं यहाँ तीसरी पंचवर्षीय योजना में यह सुझाव रखता हूँ कि देश ऐसा पूँजी-निर्माण करे कि प्रतिवर्ष 500 करोड़ की आय हो। इसका अर्थ यह होगा कि देहाती क्षेत्र में काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति 50 रुपये का प्रतिवर्ष पूँजी-निर्माण करे। लोकतांत्रिक योजना निर्माण का सार यह है कि ग्रीष्मी को दूर करने के लिये जो लोग साथ काम कर रहे हैं, वे एक साथ और सामाजिक तरीके से मिल कर काम करें। इस समय जबकि देश के सामने बहुत कठिन परिस्थित आई है, उसका सामना इस प्रकार के प्रयासों से ही हो सकता है। □

(लेखक योजना आयोग के उपाध्यक्ष थे;
31 जनवरी, 1960 अंक से)

भारत के आर्थिक विकास का बाह्य स्वरूप

○ मनमोहन सिंह

दृष्टि सरी पंचवर्षीय योजना के आरंभ से ही हमें भुगतान-संतुलन संबंधी अनेक गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। हमारा देश इस समय विकास-योजनाओं के लिये आवश्यक मशीनें, साजों-सामान और अन्य उपकरण स्वयं तैयार करने में असमर्थ है, इसलिये मजबूर होकर हमें इनके लिये दूसरे देशों का मुंह ताकना पड़ता है। यही कारण है कि देश के सामरिक विकास के लिये हम बहुत बड़े पैमान पर कुछ अत्यंत आवश्यक और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण चीजों का आयात कर रहे हैं। परंतु इसका नतीजा यह हो रहा है कि हमें भुगतान-संतुलन के क्षेत्र में भारी घाटे का सामना करना पड़ रहा है; हाँ, विदेशी ऋण और अन्य मित्र देशों के देश-दाक्षिण्य के कारण हमारी इन कठिनाइयों में बहुत कुछ कमी हुई है।

निर्वाह-योग्य कृषिपरक अर्थ व्यवस्था में आर्थिक विकास के प्रारंभिक चरणों में आयात वृद्धि होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त, इस योजना में औद्योगिकण पर विशेष बल दिया जा रहा है, उसमें बड़े पैमाने पर आयात करना ही पड़ता है, क्योंकि दृढ़ औद्योगिक व्यापार के अभाव में, विशेषतया मशीनों और साज-सामान का आयात करना पड़ता है। मित्र देशों के देश-दाक्षिण्य के अलावा अधिक खर्च निभाने का एक तरीका यह भी है कि या तो हम अधिक निर्यात करके अपनी आय बढ़ाएं अथवा अपनी विदेशी परिसंपदाओं में से रकम निकालना कम कर दें या अन्य देशों से ऋण लें। जहां तक विदेशी परिसंपदाओं से निकासी पर अंकुश रखने का प्रश्न है, यह सच है कि इसकी भी एक सीमा होती है, और जहां तक हमारा संबंध है, हम इस स्रोत का बहुत अधिक उपयोग कर चुके हैं, परिणामस्वरूप, तीसरी पंचवर्षीय योजना बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में आरंभ होगी, क्योंकि इस स्थिति में जो अधिक

आयात किया जाएगा, उसके भुगतान के लिये हमारे पास निकालने के लिये शेष कुछ भी नहीं होगा। निर्यात-व्यापार से बंधी हुई आय होने के कारण, दिनों-दिन बढ़ते जाने वाले आयात का खर्च जुटाने के लिये हम उत्तरोत्तर विदेशी सहायता का अवलंब ले रहे हैं, और अनुमान है कि मार्च 1960 तक विदेशी मुद्रा में चुकता किए जाने वाले हमारे बकाया विदेशी ऋण लगभग 782 करोड़ रु. तक जा पहुंचे होंगे। यदि तीसरी पंचवर्षीय योजना में व्यापार से होने वाली आय के सरकारी अनुमानों को अपरिवर्तनीय मान लिया जाए, तो इससे अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये जो आयात करना आवश्यक होगा, उसके लिये बड़ी मुश्किल से धन जुटाया जा सकेगा। इसका मतलब यह है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान आवश्यक मशीनों, साज-सामान और अन्य चीजों के आयात का खर्च जुटाने के लिये विदेशों से न केवल 2,100 करोड़ रु. का ऋण लेना पड़ेगा, बल्कि जो वर्तमान ऋण तीसरी योजना में अदा किए जाने हैं, उसके लिये भी लगभग 500 करोड़ रु. का बकाया ऋण लेना होगा।

देश की आर्थिक शक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिये विदेशों से ऋण लेना आर्थिक दृष्टि से कोई अनुचित बात नहीं है, परंतु हमें यह याद रखना चाहिए कि अंततः ऋणों का भुगतान करना पड़ता है। पुरानी देनदारियां चुकाने के लिये हम एक सीमा तक ही नये ऋण ले सकते हैं, जिससे कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में देश की ऋण चुकाने की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुंचे। इसलिये, ज़रूरत इस बात की है कि आयात की अपनी सामान्य आवश्यकताओं के लिये भुगतान करने और पुराने विदेशी ऋण चुकता करने के लिये हम पर्याप्त विदेशी मुद्रा कमाने की ओर विशेष ध्यान दें।

भुगतान-संतुलन

पहली पंचवर्षीय योजना बनाते समय प्रारंभिक अनुमानों के अनुसार अंदाजा यह लगाया गया था कि हमें प्रतिवर्ष औसतन लगभग 180 करोड़ से 200 करोड़ रु. तक पूरे करने होंगे। पांच वर्षों में कुल घाटा निकला 126 करोड़ रु. का ही, तथा योजना की अवधि में पौँड-पाबने में से 290 करोड़ रु. निकालने का जो अनुमान लगाया गया था, उसकी तुलना में वस्तुतः कुल निकासी 138 करोड़ रु. की ही हुई। दूसरी पंचवर्षीय योजना के पांच वर्षों में लगभग 1,160 करोड़ रु. का घाटा होने का अनुमान था, परंतु योजना के पहले ही तीन वर्षों में चालू खाते में भुगतान-संतुलन का घाटा लगभग 1,165.7 करोड़ रु. का हो चुका है। विदेशी मुद्रा की गंभीर कठिनाइयों के कारण, तथा इस स्थिति का सामना करने के लिये सरकार ने जो कदम उठाए हैं, वे सर्वविदित हैं; पिछे भी हमें जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनसे हम कुछ सबक सीख सकते हैं।

सबसे पहले, विदेशी मुद्रा संबंधी बजट का अपेक्षित अधिक सही और विषद विश्लेषण करने की आवश्यकता है। इस बात से हमारी आंखें खुल जानी चाहिए कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के लिये विदेशी मुद्रा का तख्मीना 50 प्रतिशत से भी अधिक गलत निकला है। इसलिये, बजट बनाने की विधि में आवश्यक सुधार करने की सख्त ज़रूरत है। यह इसलिये भी आवश्यक है कि हमारे आयोजकों के तख्मीने जिनमें गलत आयात के बारे में साबित हुए हैं, उतने निर्यात के बारे में नहीं।

दूसरे, जहां तक संभव हो, सामान्य रूप से योजना के व्यय में, और विशेषकर योजना के उस भाग में जिस पर विदेशी मुद्रा व्यय करनी पड़ती है, अनावश्यक रूप से वृद्धि तो अनिवार्य है, फिर भी इस बात का खास ख्याल रखा जाना चाहिए कि आयात की जाने वाली वस्तुओं पर होने वाले खर्च का सोच-समझ कर

तखमीना लगाया जाए, जिससे कि किसी वर्ष में बाह्य भुगतान पर अनावश्यक दबाव न पड़े।

अगली दशाब्दी में विदेश व्यापार का संचालन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जिस आयाम के लिये चालू निर्यात की आय में से तुरंत भुगतान नहीं किया जा सकता, उसके लिये विदेशी सहायता लेना अविवेकपूर्ण नहीं है। फिर भी, यह भी संभव नहीं है कि अनिश्चित काल तक ऋण मिलते जाएं; इसके अलावा पुराने ऋणदाताओं का ऋण चुकाने के लिये हम एक सीमा तक ही ऋण ले सकते हैं। इसका मतलब यह है कि विदेशी मुद्रा की आय में अधिकतम वृद्धि करने की समस्या भविष्य की दीर्घकालीन योजना का एक अभिन्न अंग होनी चाहिए। मोटे शब्दों में, उदाहरणतया सन् 1970 तक, हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए, कि हम निर्यात से इतना अधिशेष अवश्य निकालें, जो न केवल आयात की सामान्य आवश्यकताओं पर व्यय करने के लिये पर्याप्त हो, बल्कि उसे हम अपनी ऋण-देनदारियों को भी चुकता कर सकें इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि हम एक तरफ, तो विदेशी सामान पर निर्भर रहने की अपनी प्रवृत्ति कम करें, तथा दूसरी ओर अपने निर्यात-व्यापार के स्थिर स्तर को ऊचा उठाने का भी उद्योग करें।

इस दृष्टि से, निर्यात बढ़ाने तथा आयात घटा कर देश में उत्पादन बढ़ाने का बाद-विवाद बिलकुल बेमानी हैं। अपने परंपरागत निर्यात-व्यापार, यथा चाय, पटसन और सूती वस्त्र के व्यापार का विस्तार करने के मार्ग में कुछ बाधाएं हैं, और इन्हीं के संदर्भ में बहुत से लोगों का विचार है कि अपनी भुगतान-संतुलन की समस्या को हल करने का एकमात्र उपाय यह है कि आयात अपेक्षतया घटाया जाए। बड़ा पुष्ट विचार है यह, यदि इसका अर्थ यह है कि इन दिनों हम जिन वस्तु का आयात कर रहे हैं, उनमें से बहुत-सी वस्तुएं हम अपने देश में ही बनाना शुरू कर दें। परंतु यदि इसका मतलब यह है कि हम निर्यात-व्यापार में वृद्धि करने की ओर कोई खास ध्यान न दें, तो यह धारणा बड़ी खतरनाक सिद्ध होगी। आज हम जिन चीजों का आयात कर रहे हैं, हो सकता है

सन् 1970 तक वे चीजें अपने देश में ही बनने लगें, परंतु यह विचार, कि हमारी आयात संबंधी आवश्यकताएं वर्तमान स्तर से कम हो जाएंगी, अनेक देशों के अनुभवों को देखते हुए युक्तियुक्त नहीं हैं।

इसलिये, निर्यात-वृद्धि की समस्या को अधिक गंभीरता से लेना होगा। इसके दो स्वरूप हैं : एक तो, अपने परंपरागत निर्यात-व्यापार से होने वाली आय में अधिकतम वृद्धि की जाए; दूसरे निर्यात-व्यापार के ढांचे में परिवर्तन किया जाए, ताकि परंपरागत निर्यात-व्यापार पर अधिक बोझ न रहे। जहां तक हमारे परंपरागत निर्यात-व्यापार का संबंध है, निस्संदेह हमारी परंपरागत मंडियों में उत्तरोत्तर होड़ बढ़ रही है, परंतु इसका उचित उत्तर हार कर बैठे रहना नहीं है, बल्कि यह है कि हम भी जोरदार होड़ करने का दृष्टिकोण अपनाएं। क्या कारण है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद दक्षिण-पूर्व एशिया में सूती वस्त्र के लिये हमने जो मंडियां बनाई थीं, उनमें जापान हमें सफलतापूर्वक खदेड़ रहा है? इससे तो यही प्रकट होता है कि हमारा व्यापारी समाज सुदृढ़ व्यापारिक संबंधों का विकास करने में असफल रहा है और इन देशों में उपभोक्ताओं का सद्भाव प्राप्त करने की दिशा में भी पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया गया है। **संभवतः** भारतीयों की तुलना में जापानी अधिक सफल व्यापारी हैं पर इसके लिये हम क्या दलील देंगे कि क्यों पाकिस्तान जैसा देश भी अनेक मंडियों में हमारे एक सफल प्रतिद्वंद्वी के रूप में उठ खड़ा हुआ है? क्या कारण है कि जहां पहले ग्रेट ब्रिटेन में चाय का व्यापार एकमात्र हमारे ही हाथों में था, अब श्रीलंका, और यहां तक कि पूर्वी अफ्रीका के नवजात उद्योगों के मुकाबले हमारे पैर वहां से उखड़ रहे हैं? चाय उद्योग के प्रवक्ता तक भी यह कहते सुने गए हैं कि ग्रेट ब्रिटेन की मंडी में भारतीय चाय की अपेक्षतया अधिक मांग हो सकती है, यदि चाय की खेती को सुधार कर और चाय तैयार करने के बेहतर तरीकों से काम लेकर इसको उच्च कोटि का बनाया जाए।

संभव है, कुछ लोग हमारी वर्तमान कठिनाइयों के लिये दोष देशज मुद्रस्फीति के सिर मढ़ें। परंतु, मुद्रस्फीति के चाहे जो भी परिणाम हुए हों, यह सिद्ध करना आसान नहीं है कि अपने परंपरागत निर्यात-व्यापार की मंडियों में हमारी

वर्तमान कठिनाइयां हमारी निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की लागत और उनके मूल्यों में भयंकर वृद्धि के कारण ही उत्पन्न हुई है। न ही यह दलील दी जा सकती है कि निर्यात के लिये हमारे पास काफी चीजें नहीं हैं, क्योंकि उनकी खपत देश में ही हो जाती है। निश्चय ही, सूती वस्त्र, पटसन और चाय के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती, हाँ, तिलहनों के बारे में इसमें कुछ-न-कुछ सच्चाई ज़रूर हो सकती है। हमारे निर्यात-व्यापार में ह्लास का मुख्य कारण हमारे निर्यातकों में उचित वणिक-वृत्ति और दृढ़ता से होड़ करने के दृष्टिकोण का अभाव है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अपनी परंपरागत वस्तुओं के निर्यात की उपेक्षा करना हमारे लिये हानिकर सिद्ध होगा, क्योंकि हमारा 50 प्रतिशत निर्यात-व्यापार (पटसन, चाय और सूती वस्त्र का) इन्हीं चीजों पर अवलंबित है। परंतु जहां एक ओर निर्यात-व्यापार से होने वाली आय में अधिकतम वृद्धि करने का अधिक से अधिक प्रयास किया जाए, दूसरी ओर हमारी दीर्घकालीन योजना यह होनी चाहिए कि हम अपने निर्यात-व्यापार के ढांचे में विविधता लाएं, और निर्यात के लिये हम नयी चीजें और नयी मंडियां खोजें। उदाहरण के लिये, सूती वस्त्र के निर्यात के विषय में अधिकतम प्रयास करते हुए हमें यह स्मरण रखना होगा कि निर्यात-उद्योग के रूप में सूती वस्त्र का भविष्य अधिक उज्ज्वल नहीं है। यह ऐसा उद्योग है जिसके आयात में आसानी से कमी की जा सकती है तथा इस उद्योग में पूँजी और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकताएं ऐसी हैं कि इसे एक ग्रीष्म देश भी आरंभ कर सकता है, यहां तक कि थोड़ी आबादी और कम प्रतिव्यक्ति आय वाला एक देश भी थोड़ी-सी लागत से यह उद्योग चला सकता है। जहां तक पटसन का संबंध है, इसके स्थान पर अन्य वस्तुओं से काम निकालने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इसलिये निर्यात-व्यापार से अपनी आय में वृद्धि करने के लिये हमें ऐसी चीजों की खोज करनी होगी, जिनसे अंततः हमें अपेक्षाकृत अधिक लाभ होने की संभावना हो, जैसा कि इस्पात और अन्य इंजीनियरी उत्पादनों से हो सकता है। □

(लेखक भारत के प्रधानमंत्री हैं। लेख प्रकाशन के समय वह पंजाब विश्वविद्यालय में प्रवक्ता थे;
1 जुलाई, 1960 अंक से)

वैज्ञानिक अनुसंधान और स्व-स्फूर्ति विकास

इंजीनियरिंग शिक्षा में प्रगति

○ ए.एन. खोसला

**प्राकृतिक साधनों और उद्योगों के विकास के लिये पहली आवश्यकता
तो यह है कि ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाए जिसमें आधारभूत
अनुसंधान कार्य संभव हो सकें**

इंजीनियरिंग अनुसंधान और उच्च शिक्षा का प्रारंभ पहली पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्षों में हुआ। देश के स्वतंत्र होने से पहले इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर शिक्षा और शोध की व्यवस्था न के बराबर थी क्योंकि देश में उद्योगों के विकास और डिजाइन और प्रविधि की उन्नति को बिल्कुल प्रोत्साहन नहीं मिलता था। इस वर्ग के सभी लोग विदेशों से बुलाए जाते थे। भारतीय इंजीनियरों को मुख्यतः मशीनों की देखरेख करने और मशीनें चलाने का काम सौंपा जाता था। बिजली संस्थापन, महत्वपूर्ण डिजाइन बनाने और भारी निर्माण कार्य विदेशी इंजीनियरों, उत्पादकों और सलाहकारों पर छोड़ा जाता था। इसलिये उस समय भारत में इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई।

स्वतंत्रता के बाद देश में पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत इंजीनियरिंग और उद्योगों के विकास के कारण अब इंजीनियरिंग में उच्चशिक्षा की बहुत आवश्यकता अनुभव की जा रही है ताकि हमारे इंजीनियर और ऊंची योग्यता प्राप्त कर सकें और रचनात्मक ढंग से सोचने और उत्पादक कार्य करने के योग्य बन सकें। धीरे-धीरे ये उच्च शिक्षा प्राप्त इंजीनियर

बड़े-बड़े डिजाइन बना सकेंगे और निर्माण के कार्य संभाल सकेंगे तथा देश को विदेशी ज्ञान, साज-सामान, मशीनों और प्रशिक्षित कर्मचारियों पर निर्भर रहने से मुक्त कर सकेंगे। इसलिये देश में इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में स्नातकोत्तर कोर्स शुरू किए गए और इंजीनियरिंग और वैज्ञानिक शोध पर विशेष बल दिया जाने लगा।

शोध और अनुसंधान की आवश्यकता

इंजीनियरिंग शिक्षा का अब ढांचा ही बदलता जा रहा है। अब तक प्रौद्योगिकी के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया जाता था क्योंकि हमें पहले से ही आयोजित विभिन्न योजना-कार्यों के निर्माण में लगने वाले इंजीनियरों की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिये उनका व्यावहारिक ज्ञान होना आवश्यक था। लेकिन भावी योजना-कार्यों में आयोजन, डिजाइन, मैन्युफैक्चरिंग, फैब्रीकेशन और स्थापना के बाद कारखानों को चालू रखने का सारा भार धीरे-धीरे भारतीय इंजीनियरों पर आएगा और उनको यह सारा उत्तरदायित्व उठाने योग्य बनाना होगा। इसलिये इंजीनियरिंग शिक्षा का ढांचा बदलना आवश्यक है ताकि उच्च इंजीनियरिंग और आधुनिक इंजीनियरिंग क्षेत्र में आने वाले नये शोध संबंधी कार्यों में अधिक से अधिक

इंजीनियरों को प्रशिक्षित किया जा सके। संसार के वर्तमान रूख को विशेषकर उद्योगों में शोध की प्रवृत्ति, आधुनिक युद्ध में अधिक से अधिक जटिल प्रविधियों के प्रयोग, न्यैटिक इंजीनियरिंग की प्रगति आदि से यह पता चलता है कि ये सब अधिक विकसित देशों में उच्च इंजीनियरिंग अध्ययन और इंजीनियरिंग और मूल विज्ञान में दृढ़तापूर्ण शोध के ही परिणाम हैं। स्वतंत्रता के बाद संसार के वर्तमान रूख को देखते हुए भारत को यह अनुभव होने लगा है कि विज्ञान और इंजीनियरिंग में बिना उच्च प्रशिक्षण और दृढ़ शोध के यह देश संसार के अन्य विकसित देशों से कदम मिलाकर नहीं चल सकता। इसी अनुभव के कारण अब इंजीनियरिंग में उच्च शिक्षा और शोध की जल्दी से जल्दी व्यवस्था की जाएगी।

स्नातकोत्तर शिक्षा

दूसरी पंचवर्षीय योजना में कई प्रविधिक विश्वविद्यालयों, उच्च संस्थानों और कॉलेजों (जैसे रुड़की विश्वविद्यालय, जाधवपुर विश्वविद्यालय, भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान; खड़गपुर, भारतीय विज्ञान संस्थान; बंगलौर, शिवपुर, गुंडी, पूर्णे और अन्य स्थानों के कॉलेजों) में इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था की गई है। आज 21 विभिन्न संस्थाओं में 500 से ऊपर

इंजीनियर 25 विभिन्न स्नातकोत्तर कोर्स पूरे कर रहे हैं और इस कार्य पर दूसरी योजना के अंतर्गत एक करोड़ रुपया खर्च करने की व्यवस्था है। भारत जैसे विशाल देश में यह छोटी-सी राशि कोई महत्व नहीं रखती। लेकिन इस बात को ध्यान में रखते हुए कि यह स्नातकोत्तर कोर्स पांच वर्ष पहले ही आरंभ किए गए थे, इसको हम संतोषजनक प्रारंभ मान सकते हैं। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की देखरेख में इन संस्थानों में बहुत से शोध कार्यक्रम भी चल रहे हैं। आणविक शक्ति आयोग भी कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों और उच्चशिक्षा संस्थानों में न्यैष्टिक विज्ञान और इंजीनियरिंग में शोध की व्यवस्था कर रहा है। देश के आर्थिक विकास में उच्च इंजीनियरिंग प्रशिक्षण का इतना अधिक महत्व होने के कारण अब यह निर्णय किया गया है कि वर्तमान स्नातकोत्तर कोर्सों की उत्पादन क्षेत्र, लघुकालीन और दीर्घकालीन उद्देश्य, आवश्यक समाज-सामग्री और कर्मचारियों की दृष्टि से जांच की जाए। भारत सरकार ने वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्यों संबंधी मंत्रालय के सचिव प्रो. एम.एस. ठाकुर की अध्यक्षता में एक स्नातकोत्तर समिति नियुक्त की है जो आगामी पंचवर्षीय योजनाओं की दृष्टि से इंजीनियरिंग प्रशिक्षण की समस्या का अध्ययन करेगी और अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगी।

उच्च प्रविधियां

आज जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं है जिस पर विज्ञान और प्रविधि की छाप न लगी हो। अब राष्ट्रीय कार्यों में विज्ञान और इंजीनियरिंग का महत्व और राष्ट्रीय सुरक्षा और कारण में इसका योग दिन-ब-दिन अधिक स्पष्ट होता जा रहा है। वर्तमान न्यैष्टिक और अंतरिक्ष भ्रमण के युग में प्रौद्योगिक प्रगति बहुत तेज़ी से हो रही है। इसलिये इस समय और अधिक ज्ञान, विशेषकर बुनियादी ज्ञान, प्राप्त करने की अधिक ज़रूरत है। साधारण और व्यावहारिक ज्ञान की अपेक्षा अब उच्च और विशेष ज्ञान पर ज़ोर दिया जा रहा है, जिसमें रचनात्मक सोच-विचार और अनुसंधान

सम्मिलित हों। इंजीनियरिंग शिक्षा की प्रगति की रफ़तार प्राकृतिक साधनों और उद्योग के विकास के कार्यक्रम पर निर्भर करेगी। विज्ञान और इंजीनियरिंग का तीव्र भेद सभी क्षेत्रों से बड़ी तेज़ी से मिट रहा है।

औद्योगिक विकास और रचनात्मक क्षमता का बहुत निकट का संबंध है। इस समय भारत नये औद्योगिक युग में प्रवेश कर रहा है। इसलिये विद्यार्थियों में रचनात्मक क्षमता उत्पन्न करने के काम को सबसे ऊंची प्राथमिकता दी जानी चाहिए। स्नातकोत्तर अथवा उच्च इंजीनियरिंग शिक्षा में कुछ उन्नति हुई है, परंतु इंजीनियरिंग अनुसंधान के क्षेत्र में अधिक काम ही हुआ है। रुड़की विश्वविद्यालय (जिसे पहले थामसन कॉलेज और इंजीनियरिंग कहते थे) ने पिछली शताब्दी के अंत की ओर हाइड्रोलिक रिसर्च में प्रशंसनीय काम किया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह काम फिर आरंभ किया गया तथा अनुसंधान के कुछ और विषय भी हाथ में लिये गए, जिनमें भूकंप इंजीनियरिंग और स्ट्रक्चरल डाइनैमिक्स शामिल हैं। भूकंप इंजीनियरिंग की यह अनुसंधानशाला संसार में तीसरी है। (दूसरी दो कैलीफोर्निया इंस्टीचूट और टेक्नोलॉजी और जापान में हैं)। इसके अतिरिक्त इंडियन इंस्टीचूट और साइंस, बंगलौर इंडियन इंस्टीचूट; और टेक्नोलॉजी, खडगपुर तथा केंद्र और राज्यों की प्रयोगशालाओं और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में भी अनुसंधान का महत्वपूर्ण काम हो रहा है। इंजीनियरिंग अनुसंधान से संबंधित राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं ये हैं : सेंट्रल बिल्डिंग रिसर्च इंस्टीचूट; रुड़की, सेंट्रल रोड रिसर्च इंस्टीचूट; दिल्ली, सेंट्रल ग्लास एंड सिरैमिक रिसर्च इंस्टीचूट; कलकत्ता, नेशनल मेटालॉजिकल लैबोरेटरी; जमशेदपुर, सेंट्रल फ्यूल इंस्टीचूट; जीलगोरा, माइनिंग रिसर्च स्टेशन; धनबाद, सेंट्रल मैकेनिकल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीचूट; दुर्गापुर, सेंट्रल पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीचूट; नागपुर और सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स इंस्टीचूट; पिलानी। इन प्रयोगशालाओं ने कई सफलताएं प्रिलानी।

प्राप्त की हैं जिनमें से मुख्य ये हैं- स्टेनलेस स्टील बनाना, विशेष मिश्रण धातु, बैटरी, ग्रेड मैग्नीज डाइआक्साइड आदि। टाटा इंस्टीचूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, बंबई में भी काफी लाभदायक अनुसंधान कार्य चल रहा है। इसके अतिरिक्त रेल मंत्रालय, नागरिक उद्डयन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, इंडियन मैटीरियोलॉजीकल विभाग के अपने अनुसंधान केंद्र हैं जो सामान के डिजाइन बनाने और काम की अवस्था में जांच-पढ़ताल आदि के संबंध में शोध करते हैं।

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं राष्ट्रीय कल्याण में तीव्र प्रगति केवल प्राकृतिक साधनों और उद्योगों के विकास से ही संभव है। इस प्रकार के विकास के लिये उच्च वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। इसलिये पहली आवश्यकता तो यह है कि ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाए जिसमें आधारभूत अनुसंधान कार्य संभव हो सके। और इन्हें विश्वविद्यालयों, उच्च शिक्षा संस्थाओं और केंद्रीय तथा राज्य प्रयोगशालाओं को सौंप देना चाहिए।

इंजीनियरिंग में उच्च स्तर का अनुसंधान कार्य करने के लिये बहुत ही योग्य विद्यार्थी चुने जाने चाहिए।

एक अमरीकी विशेषज्ञ का कहना है कि अमरीका में ही 1930 में जाकर आधारभूत अनुसंधान और वैज्ञानिक शोध कार्य अपनी वर्तमान स्थिति को पहुंच सके। उसके पहले सौ साल से भी अधिक के समय में यह यूरोप के बौद्धिक नेतृत्व में पलता रहा। पिछले 30 वर्षों में अमरीका ने वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अनुसंधान में बहुत प्रगति की है। सोवियत रूस की प्रगति की कहानी भी भिन्न नहीं है। वहां कुछ समय बाद प्रौद्धता आई परंतु बहुत से क्षेत्रों में अब उसका पहला स्थान है। संयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व में लाभप्रद सहयोग के इस युग में, भारत अपनी उज्ज्वल नीतियों के कारण निकट भविष्य में ही वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अनुसंधान कार्य में प्रौद्धता प्राप्त कर लेगा। □

(लेखक योजना आयोग के सदस्य थे;
31 जुलाई, 1960 अंक से)

भारत में आय का पुनर्विभाजन

○ ए.एम. खुसरो

जब तेज़ी के साथ अर्थिक विकास होता है, तब ऐतिहासिक रूप में देखा गया है कि उसके साथ-साथ राष्ट्रीय आय का जो हिस्सा मज़दूर वर्ग की जेब में जाता है, उसमें कुछ कमी आ जाती है। इसी तरह से कई बार ऐसे समय में मूल्य बढ़ता है, मुद्रास्फीति होती है। और मुद्रास्फीति होने से मुनाफा कमानेवालों की आय में ही बढ़ि होती है, न कि मज़दूरी या वेतन या सूद पाने वालों की आय में। इसप्रकार, सन् 1951 से, जब से योजनाबद्ध विकास का सूत्रपात हुआ है, यानी गत 10 वर्षों में, यदि पहले से खुशहाल लोगों की जेब में बढ़ी हुई आय का अधिकांश हिस्सा गया है, तो यह एक तरह से स्वाभाविक माना जा सकता है। पर वास्तविक क्षेत्र में यह कहां तक सत्य है, यह खोज करने की ज़रूरत है।

18वीं और 19वीं शताब्दियों में तो जब-जब औद्योगिकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ी; तब-तब इस प्रकार आय का विषम विभाजन ही अर्थिक विकास का कारण बन गया। इसका कारण यह माना जाता था कि मज़दूरी पाने वाले लोग अपनी आय का क्रीब-क्रीब कुल हिस्सा खर्च कर डालते थे, जबकि मुनाफा कमानेवाले लोग उसे बचाते थे या उसमें से एक हिस्से को रोज़गार में लगाते थे। इसी आधार पर एक ऐसा मतवाद बन गया है जो ऐसे सारे विकास कार्यक्रमों को संदेह की दृष्टि से देखता है जिनके साथ-साथ मज़दूरी पानेवाले वर्गों के हक में आय के पुनर्विभाजन का बंधन होता है।

इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि अविकसित या कम विकसित समाजों में पूँजीपति हर हालत में कम खर्च करता हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि कई बार मुनाफे की

रकम को कस कर खर्च किया जाता है, वहां यदि आय में मुनाफे के हक में बढ़ि हो, तो उससे आवश्यक रूप से मुनाफे के आधार यानी कारोबार या उत्पादन की बढ़ि नहीं होती। इसके अलावा, यह भी याद रखने की बात है कि बहुत से लोग जिनका वर्गीकरण मुनाफा कमानेवालों में किया जाता है, उनसे बेहतर तो मोटे किसान, अपनी दुकान के मालिक, मिस्त्री तथा देहाती कारीगर होते हैं। ऐसे लोगों के द्वारा किया हुआ मुनाफा और साथ ही साथ मुनाफे का आधार कम से कम है। यह भी देखने की बात है कि जिस हद तक मज़दूरी में बढ़ि वाली रकम, शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, स्वास्थ्य की उन्नति और पहले से अच्छे पोषण पर खर्च होती है, उस हद तक मज़दूरी बढ़ने का नतीज़ा यह होगा कि श्रम की उत्पादकता बढ़ेगी है और इसे समृद्धि के एक घटक के रूप में माना जा सकता है। उस हालत में पूँजी-निर्माण न केवल राष्ट्रीय आय में मुनाफे के हिस्से को बढ़ाने से ही बढ़ेगा, बल्कि मुनाफे के उस हिस्से को भी साथ-साथ घटाना पड़ेगा जो अलाभकारी उपभोग में खर्च हो जाता है। राष्ट्रीय आय में मज़दूरी के हिस्से को घटा कर ही अर्थिक विकास प्रोत्साहन प्राप्त करेगा ऐसी बात नहीं, बल्कि यह देखना पड़ेगा कि बढ़ी हुई मज़दूरी का अधिक से अधिक हिस्सा शिक्षा, तकनीकी, हुनर, स्वास्थ्य और पहले से अच्छे पोषण के जरिये खर्च हो और मानवीय पूँजी का निर्माण हो।

1950 के ईर्द-गिर्द की भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्र में बढ़ती हुई समानता के बहुत कुछ लक्षण दिखाई पड़े। गत 10 वर्षों के योजनाबद्ध विकास में शिक्षा का प्रतिशत 17 से 35 पर पहुंच गया है और

स्त्रियों में शिक्षा तो चौगुनी हो गई है। इसके अलावा, पिछड़े वर्गों के लिये तरह-तरह की छात्रवृत्तियां, निःशुल्क शिक्षा और सुविधाएँ हैं और अस्पतालों, आरोग्यशालाओं, मातृ और शिशु-कल्याण केंद्रों तथा समाजसेवी संस्थाओं की संख्या में बहुत अधिक बढ़ि हुई है। यह भी द्रष्टव्य है कि पूँजी का आधार अब और चौड़ा हो गया है, शिल्प का विकास तथा औद्योगिक और कृषि उत्पादन में बढ़ि हुई है। साथ ही राष्ट्रीय आय के विभाजन में कुछ गड़बड़ी भी हुई है। जैसाकि हमें प्राप्त आंकड़ों से पता लगता है, सन् 1848-49 के मुकाबले में सन् 1948-49 में राष्ट्रीय उत्पादन प्रतिवर्ष औसतन साढ़े तीन प्रतिशत बढ़ता रहा। इसके साथ यदि हम यह तथ्य देखें कि प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत आबादी बढ़ी है और नयी बनी हुई आय से कुछ बचत में बढ़ि भी हुई है, फिर भी हमारे सामने यह तथ्य तो आता ही है कि उपभोग में 1.25 से लेकर 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ि हुई है। यह बढ़ि इतनी थोड़ी है कि लोग इसे महसूस नहीं कर पाते। जब राष्ट्रीय आय ही इतनी कम बढ़ी है, तब यदि व्यक्ति अपनी आय को बढ़ा हुआ न पाए, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिये, बहुत से लोग विश्वास नहीं करते कि कुछ बढ़ि भी हुई है।

रहा यह कि जो यह विश्वास है कि आबादी के काफी अच्छे हिस्से की आय केवल तुलनात्मक दृष्टि से ही नहीं, दूसरी दृष्टि से भी घटी है, इसके कई ठोस आधार हैं; जैसे, इस बात को लीजिए कि मुद्रास्फीति से मुनाफा कमानेवालों यानी व्यापारियों, कारखानेदारों, मोटे किसानों की आय, मज़दूरी, वेतन और सूद कमानेवाले और शायद किराया कमानेवालों से अधिक बढ़ती है। सन्

1952-53 और 1959-60 के बीच जो मूल्यवृद्धि हुई है, वह प्रतिवर्ष लगभग 3 प्रतिशत की दर से हुई है। उसके साथ इस तथ्य की तुलना कीजिए कि 200 रुपये मासिक से कम कमानेवाले कारखाने के मज़दूरों की आय सन् 1952 और 1957 के बीच प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष 2.3 प्रतिशत ही बढ़ी है। असंगठित मज़दूरों और वेतन पानेवाले लोगों की आय तो और भी कम बढ़ी है। सूद कमानेवालों की आय सरकारी बांडों की आय को देखते हुए प्रतिवर्ष केवल डेढ़ प्रतिशत बढ़ती रही है। पूरे मुनाफे की दर बहुत अधिक बढ़ी है। हमारे नाम कोई ऐसे अंकड़े नहीं हैं, जिनसे हम मुनाफे का सही पता पा सकें। पर यदि औद्योगिक सिक्यूरिटियों के मूल्यों को हम इसका प्रतिफलक मानें, तो सन् 1952 और 1960 के बीच मुनाफे की दर 7 प्रतिशत रही, कम से कम संगठित भाग में मुनाफा कमानेवालों की आय तुलनात्मक दृष्टि से तथा दूसरी दृष्टि से भी मज़दूरी कमानेवालों, वेतन पाने या सूद कमानेवालों से अधिक बढ़ी है। फेर जैसा कि मुद्रास्फीति के ज़माने में होता है, मुनाफा वस्तुओं के दाम से ज्यादा तेज़ी से बढ़ता रहा है। नतीज़ा यह है कि यह पता तगाना मुश्किल है कि अंतोगत्वा, मज़दूरी, वेतन और सूद से आय पहले की तुलना में बेल्कुल बढ़ी या नहीं।

खेती-बाड़ी वाले हिस्से में आय, धन, अक्षित तथा सुविधाओं के पुनर्वितरण का मुख्य भूमि सुधार माना गया है। इन सुधारों ने जर्मीदारी से बाहर रहनेवाले जर्मीदारों की आय घटी है, जो काश्तकार धनगत तथा दूसरे कार से छृणी थे, उनके कर्ज़ दूर हो गए हैं और बहुत-से मामलों में काश्त की सुरक्षा बढ़ी है और काश्तकारों को अपनी ज़मीन पर मिल्कियत हासिल हुई है, इसमें संदेह नहीं। नाश्त में पूँजी-विनियोग भी कुछ बढ़ा है, समें भी संदेह नहीं। पर साथ ही बहुत-से नसमान विकास हुए हैं, उदाहरणस्वरूप उत्तर देश जैसे राज्य में वैयक्तिक खेती की कोई डी परिभाषा नहीं है, इसलिये जर्मीदारी से बाहर रह कर मौज उड़ाने वाले जर्मीदारों के

लिये यह संभव हुआ कि वे विशाल इलाकों पर भूमिदारी के हक़ हासिल करें। इसप्रकार से एक नयी किस्म के मैनेजर काश्तकार का उद्भव हुआ है जिसके पास बहुत बड़ा इलाका है और जो ट्रैक्टर तथा दूसरे उन्नत तरीके इस्तेमाल करता है और शायद बहुत बड़ी रकम मुनाफे में कमाता है। ऐसा करते हुए उसने शायद बहुत से काश्तकारों को निकाल बाहर किया है और कुछ थोड़े-से लोगों के हाथ में ज़मीन की मिल्कियत चली गई है।

दूसरी बात यह है कि देश के बहुत बड़े भाग में काश्तकारों से लगान के रूप में 30 से 40 प्रतिशत तक उत्पादन ले लिया जाता है, पर उन्हें सरकारी तौर पर सरकारी कार्यों के लिये वेतनवाला कर्मचारी बताया जाता है। इसप्रकार की चालाकी से न केवल उच्च लगान छिप गया है, बल्कि बहुत से जर्मीदार किसान का रूप धर कर बैठे हुए हैं।

तीसरी बात यह है कि बहुत-से राज्यों में सैकड़ों किसानों के बेदखल किए जाने का प्रमाण है और इसप्रकार वे खेतिहर मज़दूर बन गए हैं। इसका भी प्रमाण है कि मझले किसानों की तुलना में छोटे किसानों पर ही बेदखली का कुल्हाड़ा गिरा है। चौथी बात यह है कि कानून में लगान या किराया उपज की एक चौथाई से छठा भाग होनेवाली बात बिल्कुल सामने आई नहीं, क्योंकि ज़मीन की मांग पूर्ति से बढ़ कर रही। पांचवीं बात यह है कि जोत की सर्वोच्च सीमावाली बात शायद ही कहीं की गई हो और कानून से बचने के लिये ज़मीन का दिखावटी विभाजन एक आम विशेषता हो गई है।

अब आइए, खेतिहर मज़दूरों पर। दूसरी खेतिहर मज़दूर जांच समिति (सन् 1945-47) के जो अंकड़े गैरसरकारी तौर पर प्राप्त हुए हैं, यदि वे सही हैं तो माना पड़ेगा कि इस वर्ग की आय में (सन् 1945 की तुलना में, जब कि अंतिम जांच हुई थी) बहुत अधिक कमी हुई है। आबादी बढ़ी है, काश्तकार बेदखल हुए हैं और स्त्रियां अधिक संख्या में काम के लिये निकल पड़ी हैं। उधर, खेती में मज़दूरों की ज़रूरत उतनी नहीं बढ़ी और इसलिये पुरुष

और स्त्रियां, दोनों की मज़दूरी में कमी हुई है। स्त्रियों को अधिक काम देने की भी प्रवृत्ति है और उन्हें 26 प्रतिशत अधिक काम मिलने लगा है। फिर भी श्रम करने वाले परिवारों की आय 10 प्रतिशत घट गई है और साल पहले की तुलना में उनकी कर्ज़दारी भी बढ़ गई है।

इन हालातों में एक घटक से यह आशा की जा सकती थी कि वह बढ़ी हुई आय का सही ढंग से पुनर्विभाजन करेगा वह है, कर या टैक्स। जो प्रमुख कृषि-कर यानी लगान है वह एक तरह से बंधा होने के कारण न तो उससे तेज़ी से बढ़िया होने में ही सहायता मिलती है और न पुनर्विभाजन में ही। यह आनुपातिक है न कि एक प्रगतिशील टैक्स, बल्कि कई हालातों में तो इसका रूप कुछ और ही है। भारत में आयकर की चाल बड़ी धीमी है। कर की अनुसूची इसप्रकार से बनाई जाती है कि हर बार हुई आय 1 प्रतिशत बढ़े, तो टैक्स, से सरकारी आय 1.8 प्रतिशत बढ़नी चाहिए (अमरीका में 2 प्रतिशत बढ़ती है), जबकि भारत में यह आय बाकी प्रत्यक्ष कर 0.6 प्रतिशत और शहरी इलाकों के लिये बाकी प्रत्यक्ष कर 0.7 प्रतिशत था। अजीब बात यह है कि परोक्ष करों की तुलना में प्रत्यक्ष कर की प्रक्रिया और भी धीमी रहती है। परोक्ष कर तो 1.6 प्रतिशत केंद्रीय उत्पादकों के क्षेत्र में बढ़ता है, जबकि शहरी क्षेत्र के सभी परोक्ष करों में 1.1 प्रतिशत की बढ़िया होती है। भारतीय कर-पद्धति में निम्न मध्यम वर्ग के बहुत-से संभावित करदाताओं को कर से मुक्त रखा जाता है। मध्यम तथा उच्च मध्यम वर्ग के करदाताओं से कम से कम कर लिया जाता है और उच्च आयवालों में कर न देने की प्रवृत्ति के प्रति सहानुभूति रहती है। बढ़ते हुए मुनाफे तथा मूल्यों को दृष्टि में रखते हुए यह बहुत ही अजीब है कि सन् 1945-52 और 1957-58 के बीच उच्चतम करदाता-वर्ग के लोगों में काफी कमी दिखाई गई है। नतीज़ा यह है कि जो अंतिम परिणाम, विकास और वितरण है, उसको हानि पहुंचती है। □

(लेखक अग्रणी अर्थशास्त्री थे;
29 जनवरी, 1961 अंक से)

इतिहास → शशांक शेखर

(नये पाठ्यक्रम के विशेषज्ञ)

आधुनिक भारत

A. स्वतंत्रता संघर्ष B. आर्थिक इतिहास C. सामाजिक इतिहास D. संवैधानिक इतिहास E. प्रशासनिक इतिहास
(1857-1947) (1757-1947) (1757-1947) (1858-1935) इतिहास

A स्वतंत्रता संघर्ष

```

graph TD
    A[अपर से इतिहास लेखन का दृष्टिकोण  
(History from above prospective)] --> B[आर्थिक राष्ट्रवाद]
    C[नीचे से इतिहास लेखन का दृष्टिकोण  
(History from below prospective)] --> D[राष्ट्रवाद]
    D --> E[जन राष्ट्रवाद (1757-1942)]
    D --> F[सांस्कृतिक राष्ट्रवाद]
  
```

B आर्थिक इतिहास

C सामाजिक इतिहास

```

graph TD
    A[From above Prospective] --> B[सामाजिक धर्मिक सुधार आन्दोलन]
    C[From below Prospective] --> B
    B --> D[जनजातीय आन्दोलन  
(before 1857 & after 1857)]
    B --> E[कृषक आन्दोलन  
(प्राचीन/मध्यकालीन  
आन्दोलन से कैसे अलग था)]
    B --> F[श्रमिक आन्दोलन]
    B --> G[जातिवादी आन्दोलन  
(कारण, स्वरूप)]
  
```



चन्द्रशेखर प्लाइंट

इलाहाबाद मोबाइल : 9450771588

जीना है तो मिटा दो यह जात-पात

○ संत राम

सच्चा धर्म और शुद्ध राजनीति वही कहला सकती है जो इस विनाशकारी विघटन को रोकती और जनता में बंधुभाव को बढ़ाती है। परंतु खेद है कि भारत में आज ये दोनों चीजें संगठन के स्थान पर विघटन को ही बढ़ा रही हैं।

धर्म हो या राजनीति दोनों का मुख्य उद्देश्य मानव समाज को संतुष्ट बनाना ही रहता है। समाज में सुख और शांति लाने और बनाए रखने के लिये मनुष्यों में समता, बंधुता और स्वतंत्रता का भाव जागृत करके उसे संगठित करना पड़ता है। विघटन से समाज समाज न रह कर छिन-भिन और नष्ट तक हो जाता है। इसलिये सच्चा धर्म और शुद्ध राजनीति वही कहला सकती है जो इस विनाशकारी विघटन को रोकती और जनता में बंधुभाव को बढ़ाती है। परंतु खेद है कि भारत में आज ये दोनों चीजें संगठन के स्थान पर विघटन को ही बढ़ा रही हैं। राजनीति को किसी दूसरे समय के लिये छोड़ कर आज मैं धर्म को ही लेना चाहता हूँ। अपने को धर्म-प्राण कह कर गर्व करने वाले हिंदुओं की आज क्या अवस्था है?

इस समय लगभग 2,000 बिरादरियां तो केवल ब्राह्मणों की हैं। पंजाब के केवल सारस्वत ब्राह्मण ही 461 कबीलों (या वंशों) में बंटे हुए हैं। क्षत्रिय 140 जातियों में विभक्त हैं। वैश्यों का विभाजन इनसे भी अधिक है। एक हिंदुस्तानी कहावत है, 'आठ ब्राह्मण और नौ चूल्हे।' रोटी-बेटी संबंध की दृष्टि से ये सब जातियां एक-दूसरे से पूर्णतः अलग-अलग कटी पड़ी हैं।

बंगाल के अतीव दक्षिणी भाग, कटक में जो कुम्हार बैठ कर चाक़ चलाते हैं और छोटे बर्तन बनाते हैं, उनका खड़े हो कर बड़े बर्तन बनाने वालों के साथ कोई मेल-जोल नहीं। जो ग्वाले कच्चे दूध से मक्खन निकालते हैं, उनको जाति से बाहर निकाल दिया गया है। वे उन ग्वालों की बेटी नहीं व्याह सकते जो दूध को गरम करके उससे मक्खन बनाते हैं। भारत के कई भागों में जो मछेरे अपने जाल दाएं से बाएं को बुनते हैं, उनके साथ बेटी व्यवहार नहीं कर सकते जो बाएं से दाएं को बुनते हैं।

इस प्रकार हम अगणित छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटे पड़े हैं। प्रत्येक जात और प्रत्येक बिरादरी सदा अपने को दूसरी सब बिरादरियों से पृथक रखने में ही अपनी श्रेष्ठता समझती है। इसलिये इस पार्थक्य को बनाए रखने के लिये बिरादरियों के मुखिया सदा यत्नशील रहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन बनावटी बिरादरियों के इसी प्रकार के बेहदा नियमों ने ही 'धर्म' का रूप धारण कर रखा है। प्रायः हिंदू लोग धर्म का लक्षण यही समझते हैं कि एक विशेष ढंग से खाना, एक विशेष ढंग से पीना और एक विशेष ढंग से विवाह करना। इस पर काले मेघ की भाँति एक दूसरी संस्था- वर्णों की व्यवस्था (या अवस्था !)

चा रही है। इसी एक वर्ण व्यवस्था के भीतर ही भीतर दीमक की भाँति चाट जाने वाले दुर्गुण भारत को एक राष्ट्र, नहीं बनने देते।

एक विद्वान कहता है विभिन्न वर्णों और उपवर्णों को सदा के लिये एक-दूसरे से पृथक-पृथक रखने का परिणाम यह हुआ है कि रंग-रूप, आकार-प्रकार और रहन-सहन की दृष्टि से हिंदुओं का आपस में कुछ भी सादृश्य नहीं रहा। दूसरे देशों की भाँति यह धनी और निर्धन का, नगर और ग्राम का, स्वामी और सेवक का प्रश्न नहीं। इनका अंतर तो उनसे भी कहीं अधिक गहरा है। किसी एक जिले अथवा नगर को ले लीजिए। वहां के लोगों को देख कर आपको ऐसा नहीं लगता कि वे सब एक ही राष्ट्र के हैं। वे आपको विभिन्न राष्ट्रों का- वरन् मनुष्य जाति के विभिन्न वंशों का समुदाय प्रतीत होंगे, जो एक-दूसरे के साथ न खाते-पीते और न व्याह-शादी करते हैं, और जिनका संसार केवल उनकी अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। इसमें कोई भी अतिश्योक्ति न होगी यदि हम कहें कि जाति-भेद ने भारत के अधिवासियों को 2,000 से भी अधिक जातियों में बांट रखा है। इन जातियों का आपस में उससे अधिक संबंध नहीं जितना कि चिड़ियाघर के पशु-पक्षियों का आपस में होता है।

जो देश सामाजिक रूप से इस प्रकार छोटी-छोटी जातियों और उपजातियों में और राजनैतिक रूप से अनेक छोटे-छोटे रजवाड़ों में बंटा हुआ था, उसके भाग्य में पहले ही प्रबल आक्रमणकारी के सामने हार खा जाना स्पष्ट रूप से बद गया था।

इस्लाम हिंदू धर्म का बिल्कुल उल्टा है, उसका मिद्दांत है कि सब मोमिन (मुस्लिम) भाई हैं। इसने अचूत और नीच वर्ण की बहुत बड़ी संख्या को आकर्षित किया। इस्लाम ग्रहण कर लेने पर इन लोगों की स्थिति शासकों के बराबर हो जाती थी।

जातिभेद एक ऐसी महाव्याधि है, जिसने अनेक दूसरी व्याधियों को जन्म दिया है। महात्मा गांधी जिस अस्पृश्यता को मानवता और हिंदू समाज का कलंक कहते हैं वह उसी जातिभेद का ही एक अनिवार्य परिणाम है। जातिभेद एक क्रमबद्ध अस्पृश्यता है। इसमें प्रत्येक हिंदू दूसरे हिंदू के लिये अस्पृश्य है। अंतर केवल अस्पृश्यता के अंश में है। कोई कम अस्पृश्य है और कोई अधिक। एक हिंदू के यहां आप भोजन तो कर सकते हैं, पर बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते। दूसरे के यहां आप पानी का गिलास पी सकते हैं, भोजन नहीं कर सकते। इसप्रकार अस्पृश्यता रूपी विष सारे हिंदू समाज में व्याप्त है।

अस्पृश्यता को मिटाने के लिये आज इन्हें यत्न हो रहे हैं, फिर भी वह मिट नहीं रही है। उसे द्वार के रास्ते बाहर ढकेला जाता है, तो वह खिड़की के मार्ग से भीतर घुस आती है। यह नाना रूप धारण कर छिप जाती है और सुअवसर पाते ही पुनः विराजमान होती है। जब तक अस्पृश्यता की जड़ जात-पात है, तब तक अच्छूतपन कभी दूर न होगा।

व्यास स्मृति कहती है : बढ़ी, नाई, ग्वाले, कुम्हार, बनिये, किरात, माली, भंगी, कोल, चाणडाल- ये सब अंत्यज कहलाते हैं। इन पर दृष्टि पड़ जाए तो सूर्य दर्शन करना चाहिए और इनसे बातचीत करने के उपरांत स्नान करना चाहिए। तब द्विजाति मनुष्य शुद्ध होता है।

इलाहाबाद का 25 सितंबर, 1960 का समाचार है कि वहां रेलवे बस्ती में पानी के नल के नीचे एक ब्राह्मण ने अपनी बाल्टी रख दी और खुद कहीं चला गया। बाल्टी पानी से भर गई पर उसे उठाने ब्राह्मण न आया। एक दलित को भी पानी लेना था। उसने ब्राह्मण की बाल्टी उठा कर एक ओर रख दी और पानी भरने लगा। ब्राह्मण ने लौट कर अस्पृश्य को इतना पीटा कि वह मर गया। अस्पृश्य का लड़का पिता को छुड़ाने आया तो वह भी बुरी तरह घायल हो गया।

यह घटना भारत को स्वराज मिलने के तेरह वर्ष बाद की है। इससे आप समझ सकते हैं कि केवल अस्पृश्यता की निंदा करके उसे दूर करने का यत्न कभी सफल न होगा। इसके लिये उसकी जड़, जात-पात को मिटाना होगा। याद रखिए, जहां जात-पात है, अस्पृश्यता भी वहीं हो सकती है। दहेज की बुराई को बंद करने के लिये भी जातिभेद की समाप्ति आवश्यक है। हिंदू को अपनी जाति के भीतर ही बेटी व्याहनी पड़ती है। एक योग्य लड़का बिरादरी में होता है। भाई, बहन, मामा, चाचा सब उसे अपनी बेटी के लिये रक्षित कर लेना चाहते हैं। उनमें प्रतियोगिता हो जाती है। प्रत्येक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लड़के को लालच दिखलाता है। लड़का भी जानता है कि लड़की जाति से बाहर तो दी नहीं जाएगी और जाति के भीतर वर मिलते नहीं। इसलिये वह भारी दहेज मांगता है।

यदि जाति का बंधन न हो तो लड़की के लिये वर का चुनाव क्षेत्र विस्तृत हो जाए। इससे योग्य वर प्राप्त करने के लिये दहेज देने की विवशता भी न रहे।

इससे एक बड़ा लाभ यह भी होगा कि इस समय एक लड़के के लिये जो प्रतिद्वंद्विता होती है और जिसके फलस्वरूप निकट संबंधियों में भी आपस में मनमुटाव हो जाता है, वह दूर हो जाएगा। जिन जातियों में लड़कियां कम हैं, वहां जात-पात के कारण कई लोग कुंआरे रह जाते हैं, लड़कियां बेची जाती हैं, अनमेल विवाह होते हैं और व्यभिचार

फैलता है। इसके विपरीत जहां लड़कों से लड़कियां अधिक हैं, जैसे कि बंगाल, कुमाऊं और हिमाचल में, वहां एक पुरुष चार-चार, पांच-पांच स्त्रियां कर लेता है।

सुप्रजनन की दृष्टि से भी जात-पात हानिकारक है। एक ही जाति या एक ही रक्त के भीतर विवाह होने, दूसरे शब्दों में बाहर से नया रक्त न मिलने से सबाँग पूर्ण और सर्वगुण संपन्न संतान उत्पन्न नहीं होती। इसीलिये हमारे ब्राह्मण जहां विद्या में बढ़े हैं, वहां साथ ही व्यर्थाभिमानी भी बन गए हैं। क्षत्रियों में मरने-मारने का गुण तो पराकाष्ठा को पहुंचा है, पर लड़ाई जीतने के लिये जिस दूरदर्शिता का प्रयोजन अपेक्षित है उसका अभाव हो गया है। वैश्य धन तो खूब कमा सकता है, परंतु साथ ही कायरता का प्रतीक भी बन गया है। शूद्र शारीरिक परिश्रम तो खूब कर सकता है, परंतु संस्कृति का उसमें इतना अभाव है कि भंगी एक हाथ से रोटी खाता हुआ दूसरे हाथ से टट्टी भी साफ करता रहता है। उधर ब्राह्मण में स्वच्छता का भाव इतना बढ़ गया है कि वह लकड़ी भी धो कर जलाता है। नया रक्त न मिलने का ही यह फल है कि हमारा शिल्प उन्नत नहीं हो पाया। जहां व्याह-शादी में जात-पात का कोई बंधन नहीं, वहां सब प्रकार के लोगों का रक्त-मिश्रण होता रहता है। फलतः हमारा मोर्ची जहां कठिनता से पांच-छह रुपये का जूता बना पाता है, वहां यूरोप का मोर्ची तीस-तीस रुपये का बूट बनाता है। जैसे बढ़िया विचारक, विद्वान, योद्धा और व्यापारी जात-पात के रोग से मुक्त पश्चिमी देशों में उत्पन्न होते हैं वैसे हमारे यहां नहीं। पूर्ण मनुष्य बनने के लिये व्यक्ति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के गुण होने चाहिए। कुम्हड़े जैसे बड़े सिर और सरकांडे जैसी दुबली-पतली बांहों या कुपे जैसे उभरे हुए पेट और पतली-पतली टांगों वाला व्यक्ति कभी पूर्ण मनुष्य नहीं कहला सकता और न ही वह जीवन संग्राम में यथोच्च रूप से सफल ही हो सकता है। □

(29 जनवरी, 1961 अंक से)

पिरथुली आमा

○ शैलेश मटियानी

और रातभर उस छोरी को पोछते-सो गई थी पिरथुली आमा। जब गोठ-बंधी गाजरी और ज़ोर-ज़ोर से रंभाई थी तब जाकर अंखें उघड़ी थीं कि - द रे, इस छोरी ने तो आते ही आलस लगा दिया मेरे हाथ-पांवों को। जैसे मेरे सारे काम-काज अब यही कर देगी।

और, दाढ़ियम के अनफुटे-फूल जैसी छोटी, काँली उस छोरी की नाक और अंगूठे और तर्जनी की चिमटी से ऊपर की ओर को मलाशते हुए पिरथुली आमा के सूखे हुए अधरों पर एक उपालंभ-भरी मुस्कुराहट ऐसे उभर आई थी जैसे लकड़ी की दो छोटी-छोटी खपच्चियों के बीच में किसी ने एक सुलगती हुई चिनगारी रख दी हो-दुत अपने-आप तो एकदम निरगण्ड जैसी सोई ही छोरी, मुझ बुढ़िया को भी परलोक जैसा उठा ले गई!

गोठ की सुधि लेकर, गाजरी-चनली को बाहर बांधने के बाद, बिना हाथ-मुँह धोए ही, बिचली-बाखली की ओर चल पड़ी पिरथुली आमा। जाने से पहले, एक बार फिर गौर से छोरी की सूरत-मूरत देखती गई थी। गोद में छोरी को भी उठा कर ले जाने का विचार था, एक-एक के घर में खोज-खबर करने का विचार था मगर फिर अकेली ही चल पड़ी।

बात तो तब तक पूरे गांव में फैल ही चुकी थी कि उत्तमसिंह ने अपनी घरवाली रेबती को कल रात निकाल दिया था। तभी से वह लापता है। आधी रात को आंचल-भरी धरिणी को सोटे मार-मार कर निकालने के कारणों के अनुमान भी लगाए जा चुके थे, मगर एकदम ठोस निष्कर्ष पर कोई भी नहीं पहुंच पाया था।

कोई कहता था कि कल उत्तमसिंह ने चरस की दम बहुत गहरी लगा रखी थी। चरस की चमर-तरंग में ही पीटा-पाटा होगा। तू-तू तो

दोनों में चलती ही आ रही थी महीनों से.... रेबती और कहीं नहीं गई होगी, अपने मायके चलती गई होगी। सौरास में तो सुख ठहरा नहीं उसे मगर मायके का आसरा टूटा नहीं है।

किसी की एकदम ठोस धारणा यह थी कि कल डालाकोट के शिव मंदिर की घाटी में जुआरियों का फड़ जुड़ा हुआ था। हो-न-हो, उत्तमसिंह वहां रकम गंवा आया। और हारे हुए जुआरी की रास ठहरी। घर आकर रेबती के हाथ-कानों के जेवर उतार रहा होगा, इसी धंध में कलह मच गया होगा। रेबती बिचारी तो पहले से ही दुखियारी ठहरी। नहीं झेल पाई होगी संताप। गई तो, खैर मायके को ही गई होगी और कहीं का आसरा थोड़े ही ठहरा अभागिन को।....

मगर, रेबती की देवरानी रुपुली और खड़कसिंह की घरवाली जैंतुली की खुसर-पुसर भी, धीरे-धीरे तेज़ बुखार के बाद बाहर फूटने वाले चेचक के दानों की तरह, सभी के होठों पर फटने लग गई थी- हे परमेश्वर! कैसे अंधेर की बात कह रही थी जैंतुली!.... अब झूट-सच की बात तो परमेश्वर ही जानता होगा, मगर जैंतुली ने जैसे एकदम मुख उधाड़ कर, खास रेबती की देवरानी रुपुली से ही खड़कसिंह और रेबती की आपसी मेल-जोल की बात का जिकर कर दिया, वह एकदम बिना आधार के ही तो किया नहीं होगा!.... और खुद रुपुली ही रेबती की चेली की सूरत-मूरत खड़कसिंह की जैसी बता रही थी....

-अब बात-बात पर बात तो फटती ही है। वैसे पाप-पुण्य की बात तो परमेश्वर ही जानता होगा..... मगर, जहां तक आपसी मेल-जोल की बात है, खड़कसिंह और रेबती के अनेक प्रकार का हंसी-मजाक करते हुए तो मैंने भी कई बार देखा है.... लेकिन, फिर भी, एकाएक यहां तक नौबत पहुंचेगी करके तो मैंने कभी

सोचा ही नहीं था। रेबती-जैसी लाज-शरम वाली और ऐसे अपनी नीयत बिगड़ेगी, किसको खबर थी ऐसी?.... मगर, कलजुग का बखत है, भाई!..... पाप-कलंकों की जड़ें फैलती ही जा रही हैं। मैं तो एकदम हैरत में आ गई हूं कि होते हुए अपने खसम के पराए मर्द से गर्भधारण कैसे कर लेती होंगी आजकल की औरतें? मेरी भी तीन-तीन ठौर की घर-गिरस्थी रही है.... मगर पहली घर-गिरस्थी के बालकों की सूरत-मूरत ठीक पहले ही घरवाले पर उतरी, दूसरे घर की चेली भी ठीक अपने ही बाबू पर उतरी थी और आज लगातार आठ-दस बरसों से चनिया के बाब के घर पड़ी हुई है, तो पिरथली सासू ही कहा करती है कि किसनी तो अपने बालकों में फुत्वा बेटे की तस्वीर जैसी उतार के रख देती है।

पहले दो खसम छोड़कर फतेसिंह के घर-बार बसी हुई किसनी की बातों का सिलसिला बिचली बाखली के प्रेमसिंह की घरवाली कलावती ने अपने इन आंखों के साथ समाप्त किया था- यारो, कहने की तो हमारी जबान सुसरी का क्या जाता है, मगर इतना तो मैं ज़रूर ही कहूंगी कि जैसे घोर कलजुग का बखत आया हुआ है, उसमें रेबती छोरी का कसूर बहुत बड़ा तो है नहीं। जरा-जरा सी बात पर आजकल की अनेक औरतें एक-पर-एक अनेक मर्दों के घर-बार जाती रहती हैं। हां जहां तक बाल-गोपालों के खसम की सूरत-मूरत के उतरने का सवाल है, तो औरत तो मिट्टी का खेत है। जिस खसम के साथ संजोग होगा, संतान में मुहर उसी की रहेगी। गेहूं का बीज पड़ेगा, गेहूं का और मदुवे का दाना पड़ेगा, तो मदुवे का ही पेड़ पैदा होगा।

किसनी एकाएक घर का कोई बहुत ज़रूरी काम याद आ जाने से पानी के फौले को

छलकाती हुई आगे बढ़ गई थी, मगर कलावती कहती ही रही थी- यार, स्वरसती! रेबती के दुख-सुख तूने भी देखे ही ठहरे, मैं भी देखती ही चली आ रही हूं। सौरास के सुखों के नाम पर आए के दिन से उत्तमसिंह के लात धूसे और सौंटे ही मिले अभागिन को। जुआरी चरसिया खसम ठहरा और ऊपर से ढबे का जैसा चटौर स्वभाव ठहरा उसका। कौन नहीं जानता उसके कुकर्मों को.... आज तो अब सभी लोग रेबती छोरी को ही नाम रखेंगे। औरत की बेबस जात ठहरी.... मगर, जैसी भरपूर जवानी में उस दुखियारी को पिशाच जैसे खसम के लात-सौंटों के अलावा कोई और किसम का घर-गिरस्थी का सुख नहीं मिला, वैसे में तो कोई और औरत न जाने कितनी ठौर में मुख मारती..... चनिया की महतारी को देखा तूने, कैसे अलबलाती भागी? खुद तीन-तीन खसम करके पतिवरता बनती है, रांड! और दूसरों को नाम धरती है।

..... और पहले, तल्ली-मल्ली बाखलियों में फैली हवा को सूंधने के बाद जब पिरथली आमा उत्तमसिंह और खड़कसिंह के घरों के सामने खड़ी हो गई थी, तो पूरे गांव में ही एक हाहाकार-सा मच गया था।

घिंघारू की गंठीली, धुमचिया लाठी के सहरे चलती हुई, गांव-घरों के लोगों के यहां कांपते हुए घुटनों के जोड़ बजाते हुए जाने वाली पिरथुली बुढ़िया की जगह जैसे कोई दूसरी ही पिरथुली वहां पहुंच गई थी। हरेक जन से मीठी-मीठी बातें करके, अति विनम्रता के साथ सप्रयास खिलखिला कर अपना स्नेह-विहीन मन बिलमाने वाली पिरथुली आमा का रुखा-लुतलुता ललाट आज उस दरार पड़े कांच के टुकड़े की तरह चमचमा रहा था जिसे किसी अंधियारे कोने में से निकाल कर चटक धूप में रख दिया गया हो। पिरथुली आमा की फीकी, उदास झूर्झियों में जैसे आज गली हुई चांदी भर गई थी। सखी बाबिल घास जैसे छिटराए केसों का जूँड़ा बंधा हुआ था, जैसे चंवर गोँदा गया हो। झोल पड़ी कुरती के सदैव उधड़े ही रहने वाले टीन के बटन आज करीने से लगे हुए थे और कमर में काली किनारी वाली धोती का फेंटा कसा हुआ था।

ठीक ऐसी जगह पर जाकर पिरथुली आमा खड़ी हो गई थी जहां से उत्तमसिंह और खड़कसिंह दोनों के घर समीप पड़ते थे। फिर

घिंघारू की लाठी को ऊपर की ओर मोमबत्ती की तरह उठाते हुए पिरथुली आमा एकदम बौखलाए कंठ से बोली थी- अरे, इस गांव के तो सभी लोगों की मति भरिष्ट हो गई है! कोई कहीं की अटकलबाजी लगाता है, तो कोई कहीं दूसरी ही किस्म के जोड़-तोड़ लगा रहा है। अरे अन्यायी-अत्याचारी लोगों! पाप-पुण्य, कसूर-बेकसूर का फैसला बाद में करते रहना, मगर पहले जरा इस बात की भी तो खोज-खबर लगाओ कि आखिर वह अभागिनी छोरी गई कहां को? सभी ने एक ही रट लगा रखी है कि सिराड़ चली गई होगी, सिराड़ चली गई होगी.... अरे जैसी बेइज्जती के साथ उसको लात-धूंसे और सौंटे से थेच-थेच कर घर से निकाला गया होगा, वैसे में तो वह छोरी कहीं पर्बत-खंडकों में आत्मघात करने चली गई होगी.... हे राम, कलेजे का टुकड़ा निकाल कर मेरे पटांगण के पाथर पर रख गई है अभागिनी.... अरे मैं क्या जानती थी कि उत्तमिया की घरवाली रेबती छोरी की ऐसे घर-निकाल हो गया है.... बिना नामकरण की ही अशुद्ध छोरी मेरे घर में पड़ी हुई है...

'मेरे घर में पड़ी हुई है' और 'मेरे पटांगण के पाथर पर रख गई?' पिरथुली आमा ने ऐसे जोर देकर कहा जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि और किसी को इतनी दया-ममता बाला समझा ही नहीं रेबती ने कि अपनी चेली कहीं दूसरे ठौर छोड़ जाती।

पिरथुली आमा की धोषणा के बाद गांव के अनेक लोग आपस में विचार-विमर्श करने के बाद, इधर-उधर रेबती की खोज में निकल गए थे। खेती और बन के कामों को जाती औरें ने भी रेबती को उन ठौरों में ढूँढ़ना आरंभ कर दिया था जहां-जहां किसी के आत्मघात कर सकने की आशंका हो सकती थी किसनी, कपड़े की गठरी निकालकर, सीधे रमतोला ताल की तरफ चली गई थी कि- हे भगवान! एक दिन रेबती छोरी उसी तालाब में अपनी छाया देख रही थी।

खड़कसिंह को भी बहुत क्लेश हुआ था। एकाएक ही उसकी स्मृति में रेबती के साथ बीते अपने मेल-जोल के क्षण उभर आए थे जो रेबती ने उत्तमसिंह से लुका-छिपा कर उसके साथ बिताए थे।..... और खड़कसिंह की आंखों में आत्मबेधी कचोट से कसमस कर, एकदम खौलते पानी में से ऊपर की

ओर उठती हुई भाप जैसा पानी का एक झिरझिरा लच्छा तैरने लगा था- अरे, न रेबती की चेली में उसकी सूरत उतरती और न उस बेचारी को यह दुर्दिन देखना पड़ता।.....

अपनी घरवाली से बांधीना पड़ाव की तरफ जाकर सौदा-पता लाने का बहाना बना कर, खड़कसिंह भी रेबती को खोजने निकल पड़ा था।

मगर, पिरथुली आमा औरें को रेबती को खोजने के लिये उकसा कर स्वयं सीधे अपने घर की तरफ दौड़ पड़ी थी। उसने देख लिया था कि चरसिया उत्तमसिंह एक दराती हाथ में लिये घर से बाहर को निकलने लगा था....

धुमचिया लाठी को अपनी कांपती हुई टांगों की सामर्थ्य से कहीं बहुत आगे टेकती-टेकती पिरथुली आमा अपने घर के पटगण तक पहुंचा तो गई, मगर हांफती-हांफती वर्ही पर गिर भी पड़ी। मूर्छ्छना की एक मोटी-सी परत से उसकी आंखें पथरा उठीं, मगर होंठ जैसे एकबारगी, तेज धाम में रखे हुए कच्ची भुरभुरी मिट्टी के लोंदे की तरह फट पड़े-उत्तमिया रे, कसाई! मेरी छैनी का गला मत काट, रे!

गाजरी ने पिरथुली आमा को गिरते देखा, तो एकदम चिह्न उठी थी। लापरवाही से बंधी तो रहती ही थी, जोर-जोर से रंभाती रस्सी तुड़ा कर पिरथुली आमा के पास पहुंच गई... बां... बां... बां.....

गाजरी की जर्जर जीभ के पनैले स्पर्श से पिरथुली आमा को मूर्छ्छन टूट गई। एकदम फुर्ती के साथ उठते हुए पिरथुली आमा अपने दो मंजले घर की देहली पर पहुंच गई। देहली के ऊपर कानस में रखा दत्या निकाल लिया और उत्तमसिंह के पटांगण में पहुंचने तक फिर तनतना के खड़ी हो गई- क्यों रे, उत्तमिया! यहां यह हाथ में दातुली लेकर किस मतलब से आया है रे, कसाई?

रेबती के खड़कसिंह के साथ अनुचित संबंध की जानकारी से अंदर-ही-अंदर सुलगता चला आया था उत्तमसिंह और उसके मन में रेबती के लिये ऐसे एक अव्यक्त धृणा भरती चली गई थी जैसे बेड़ की छिद्रीली लकड़ी के एक सिरे के सुलगते ही उसकी सारी खोखली नली में तीखा धुआं भर जाता है।

कल उत्तमसिंह ने उस समय छोरी को देखा था, जिस समय रेबती पंचाला नहाने नदी-घाट गई हुई थी। उत्तमसिंह ने देखा था कि जुए में

लगाए उसके दांव पर छक्के-पंजे मारने वाले खड़कसिंह ने एक पंजा उसकी घर-गिरहस्थी की पूंजी पर भी मार दिया था। महीनों से जिस संदेह की बुनियाद खुद रही थी, उसकी प्रत्यक्ष साक्षी वह छोरी दे रही थी.... उत्तमसिंह का तो उसी समय खुन खौल गया था कि इस पाप की उपज का गला घोंट कर कहीं दूर गढ़े में फेंक आए, मगर इतनी क्रूरता उस समय जुट नहीं पाई थी.....

कल उत्तमसिंह हार कर नहीं, जीत कर लौटा था। रोज जो खड़कसिंह उसके सिर पर छक्के-पंजों के हथैंडे जैसे ठोकता रहता था, कल उसी से उत्तमसिंह साठ-पैसठ रुपये झाड़ लाया था। रुपये ही नहीं, जँतुली के हाथों से चांदी के धागुले भी.... और इतनी बड़ी जीत के बाद, घर पहुंचते ही, एक बहुत बड़ी हार ने उसके कलेजे को जैसे पीस दिया था। महनरसिंह के मुख से फूटी बात उसके कानों तक पहुंच ही गई थी कि अपनी घरवाली जँतुली के धागुले उतारे समय खड़कसिंह ने उससे कहा था- अरे, तेरे हाथों से उतारे हुए ये चांदी के धागुले उत्तमिया जीत भी ले गया, तो क्या हुआ वहां भी तो इन्हें मेरी ही घरवाली पहनेगी.....

तो, बात यहां तक बढ़ गई थी कि खड़कसिंह रेबती को अपनी घरवाली धोषित करने लग गया था.... और उत्तम सिंह ने अपनी आंखों से खड़कसिंह की प्रतिमूर्ति देखी थी.. ... और प्रतिहिंसा की भूसी उसके अंतर्मन में सुलगती ही चल गई थी। उसका इरादा तो तीनों की हत्या कर देने का था, मगर फिर कहीं एक पश्चाताप की भावना उपजी थी कि अरे, उत्तमिया! तू ही जो रेबती को ऐसे नहीं सताता, तो वह बेचारी सोने की अंगूठी जैसे किसी और ठैर थोड़े ही जाती।

और तब उत्तमसिंह ने यह निश्चय किया था कि रेबती को तो यहां से चिलमनंगी करके निकाल दे और फिर कभी मौका लगते ही खड़कसिंह को भी ठिकाने लगा दे।

मगर, अब उसका दुख और बढ़ गया था। रेबती अपनी छोरी को छोड़ गई है, तो खुद ज़रूर कहीं आत्मघात करने जा चुकी होगी, इस बात का उसे विश्वास हो गया था.... और अब उसका इरादा यह था कि आज खड़कसिंह के साथ एक दांव और हार आए। रेबती उसे छोड़ कर आत्मघात करने चली गई थी.....

इस दुख ने उसके सारे अहंकार, उसकी सारी क्रूरता का गला घोंट दिया था। इतना अवसाद संभवतः उसे अपने हाथों रेबती की हत्या कर देने पर भी न होता....

तो अब उत्तमसिंह पिरथुली आमा के घर की ओर दौड़ आया था कि छोरी को उठा कर खड़कसिंह के पास ले जाएगा कि ले यार! मैं तो जिंदगी-भर तुझसे हारा चला आया हूं। कल जीता था, तो वह सबसे बड़ी हार साबित हुई। खैर, मेरी घर-गिरहस्थी ने तो मेरे ही खोटे कर्मों से भी उजड़ना ही था एक दिन; सो तेरे बहाने से जरा जल्दी उजड़ गई। अब ले, यार! वह तेरी अमानत है, इसे तू ही संभाल ले।

और उत्तमसिंह का इरादा यह था कि अगर खड़कसिंह ने जरा-सी भी असहमति दिखाई, छोरी को पालने से इंकार किया, तो फिर उसका गला दराती से वर्ही पर रेत देगा.....

मगर बीच देहली में रणचंडिका का जैसा विकराल रूप धारण करके खड़ी पिरथुली आमा को देखा, तो पटांगण से ऊपर चढ़ने का साहस नहीं बटोर सका। दत्यया की चोट लगने के भय से नहीं, पिरथुली आमा की अंगार जैसी भभकती आंखों में उभरी हुई भावना की तीक्ष्णता से उसका हिया कांप उठा था। वह समझ गया था कि पिरथुली काकी तो यही सोच कर बिफरी हुई कि कि उत्तमिया छोरी की हत्या करने को यहां आया है।

यह सोचते-सोचते उत्तमिया के अधरों पर एक बहुत ही करुण मुस्कराहट उभर आई थी- पिरथुली काकी, मैं छोरी की हत्या करने नहीं आया हूं। तू घबरा मत, पिरथुली काकी! मैं इस छोरी को खड़कुवा साले को सौंपने के लिये ले जाने आया हूं। वह साला नहीं संभालेगा, तो उसका गला ज़रूर रेतूंगा और फिर छोरी को तुम्हारे ही पास ले आऊंगा..... मुझसे तो रेबती ही नहीं संभाली गई, काकी! पराई संतान को क्या संभालूंगा मैं! मैं तो जुआरी-चरसिया और लफंगा ठहरा। मुझ-जैसा कमीना और कौन होगा, काकी?

और उत्तमसिंह रो पड़ा था।

और पिरथुली काकी ने अपनी तनी हुई कांठी को जरा ढीला कर दिया था, मगर यह विचार आते ही फिर तरतरी हो गई थी कि कहीं यह उत्तमिया उस छोरी को ले जाकर सचमुच ही न सौंप आए खड़कुवा को.... ओहोरे, कल रात छोरी छाती से लगी-लगी कैसी घरघरा रही थी,

एकदम लछिमा बिराली की तरह.... और नीद का सुख तो या लछिमा बिराली को छाती से लगा कर सोने में मिला करता था या फिर कल इस छोरी को छाती से चिपका कर सोने में ही मिला था। पंचोले की कच्ची लोथ ठहरी, मगर एकदम सयानी-जैसी चुपचाप सोई रही थी। इस बेचारी को क्या खबर कि उसकी मयेड़ी उसे सदा के लिये छोड़ गई है!.....

लछिमा बिराली को तो एक रात कोई बनढाडू उठा ले गया था। इस छोरी को ले जाने के लिये यह उत्तमिया आ पहुंचा है।

उत्तमसिंह को रोते देख कर उमड़ती हुई सहानुभूति को पिरथुली आमा ने मन में ही दबा दिया और एकदम रूखे कंठ से बोली-बस, बस, हो गया, रे उत्तमिया! अब ये रांड औरत के जैसे नखरे मेरे पटांगण में आकर मत कर। उस समय कहां गई थी तेरी अक्ल जिस समय मार लतिया-लतिया, सॉटिया-सॉटिया के तूने रेबती छोरी का बनबास कर दिया? उस समय कहां गए थे तेरे ये मगरमच्छ के जैसे आंसू, जिस समय पंचोले की कॉली लोथ पर भी तुझे दया नहीं आई?. . .

.... अब आया है लट्ट-मसल जैसा, दातुली हाथ में लेकर बड़ा पालनहार जैसा बन कर?.... शिबो, रेबती छोरी तो नहीं मालूम कहां चली गई होगी। अरे, जिंदा तो अब क्या होगी वह अभागिनी..... जा, रे उत्तमिया! जितना तू मेरे पटांगण में आके बेकार में ही राजा दशरथ का जैसा विलाप कर रहा है, इससे तौ कहीं जाके रेबती छोरी को ढूँढ़ता क्यों नहीं? दूब-जैसी जमी हुई घर-गिरहस्थी को खुद ही खोद-खोद के क्यों उजाइता है? जा, जा, उत्तमिया! रेबती छोरी को ढूँढ़ लाएगा, तो इस छोरी को भी उठा ले जाना... और किसी को तो मैं ढूँगी भी नहीं। रेबती छोरी तो मुझे ही सौंप गई है इसे।

उत्तमसिंह, आंसू पौँछते हुए चुपचाप चला गया था रेबती को खोजने।

..... और पिरथुली आमा के हॉटों से तब कहीं जाके उसके प्रति उपजी सहानुभूति बाहर फूटी थी- द, आज अब उत्तमिया छोकरे को अक्ल आई है, तो एकदम ज्यादा आ गई है। बावला-सा हो गया है छोरा दुख से। हे राम, पाथर गीला कर गया है छोरा।..... □

(लेखक प्रभात कथाकार थे;
3 दिसंबर, 1961 अंक से)

समय पर पूरी हो परियोजनाएं

○ मनमोहन सिंह

Rप्त्रीय विकास परिषद को दिए गए योजना आयोग के हाल के ज्ञापन में चौथी योजना के समय उद्देश्यों और व्यापक नीति का जो विवरण दिया गया है, उससे किसी को कोई विशेष गंभीर मतभेद नहीं हो सकता। निस्संदेह, पूँजी निर्माण की दर में निरंतर महत्वपूर्ण वृद्धि होनी चाहिए ताकि तेज़ी से बढ़ने वाली हमारी जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुकूल निरंतर चीजों की पैदावार में वृद्धि हो और रोज़गार के अवसरों में भी बढ़ोतरी हो सके। मेरे विचार में, समस्त आयोजित व्यय में कुछ करोड़ रुपये की कमी या बेशी कर देने की अपेक्षा, यदि समय पर कुछ महत्वपूर्ण परियोजनाओं को आरंभ किया जाए और उन्हें पूरा किया जाए तो उससे हमारी अर्थव्यवस्था की प्रगति की दर पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।

इस ज्ञापन में कई महत्वपूर्ण उदाहरणों का उल्लेख किया गया है जिनमें मूल लक्ष्यों की प्राप्ति के संबंध में तीसरी योजना की अवधि में कार्य पूरा न होने की संभावना है। खेती के बारे में हमें जो अनुभव हुआ है, उससे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र में आयोजित लक्ष्यों को प्राप्त न कर सकने से राष्ट्र के आर्थिक स्वास्थ्य पर कितना बुरा असर पड़ता है। जैसा कि भलीभांति ज्ञात है, पिछले तीन वर्षों में खेती की पैदावार में कमी होने का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि रासायनिक खाद आदि महत्वपूर्ण चीजों की पर्याप्त रूप में सप्लाई न हो सकी। इसलिये यह आशा की जाती है कि जहां तक हो सके वहां तक परियोजनाओं को ठीक समय पर आरंभ करके निश्चित समय में पूरा करने की ओर अपेक्षाकृत और अधिक

ध्यान दिया जाना चाहिए।

पूँजी विनियोग के स्वरूप के संबंध में विनियोग-वस्तु-उद्योगों के विकास पर निरंतर ज़ोर देने की बात बिल्कुल सही है। अपनी अर्थव्यवस्था को शीघ्र ही स्वतः चालित बनाने के लिये इस प्रकार की नीति बड़ी आवश्यक है। इसके साथ ही, कृषि में निरंतर प्रगति और सामाजिक सेवाओं में और अधिक विस्तार करना भी बड़ा ज़रूरी है। योजना आयोग ने चौथी योजना में 5,100 करोड़ रुपये के मूल्य का निर्यात लक्ष्य रखा है। यह आशा की जाती है कि विभिन्न उद्योगों के उत्पादन लक्ष्यों को निर्धारित करते हुए निर्यात संबंधी आवश्यकताओं को भी पूरी तरह से ध्यान में रखा जाएगा और जो निर्यात लक्ष्य निर्धारित किए जाएंगे, वे उत्पादन योजनाओं और इस प्रकार के उद्योगों की पैदावार की घरेलू मांग के अनुकूल होंगे।

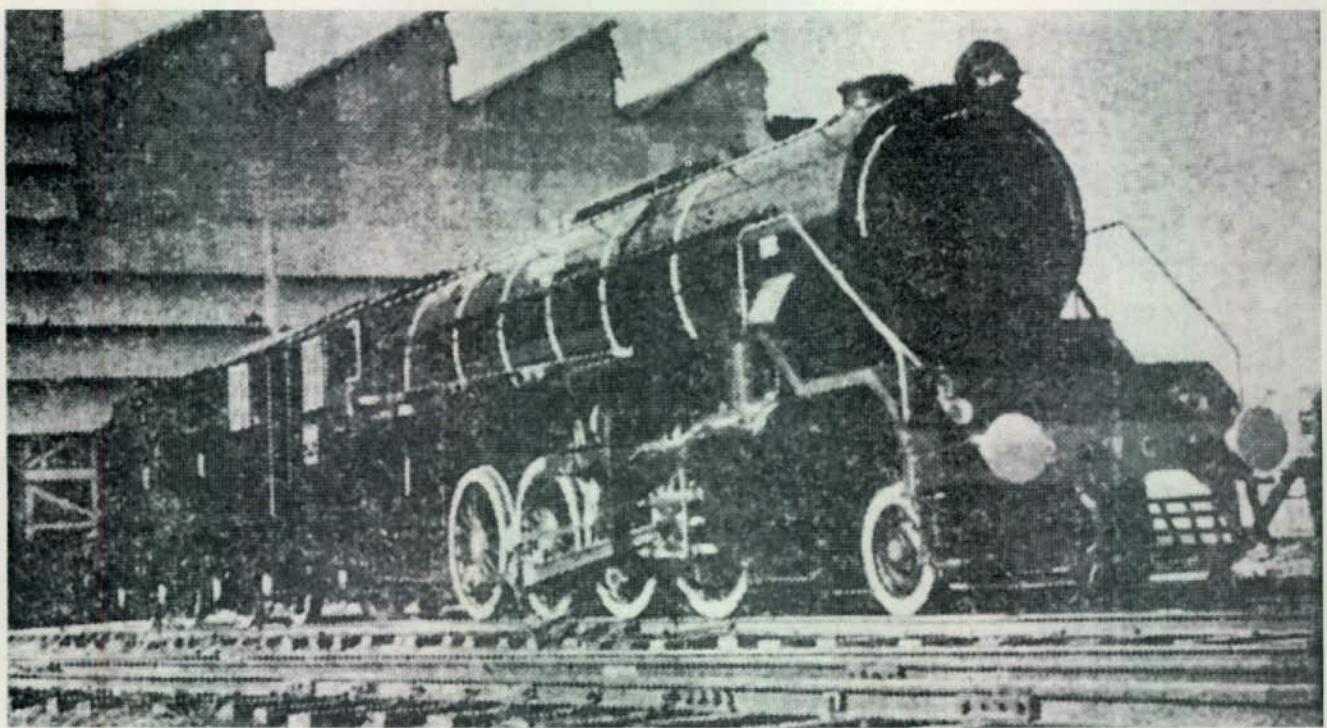
यद्यपि योजना में रोज़गार के अतिरिक्त अवसर पैदा करने की आवश्यकता पर काफी बल दिया गया है, फिर भी चौथी योजना में रोज़गार के जो अतिरिक्त अवसरों के लक्ष्य रखे गए हैं, वे बहुत निराशाजनक हैं क्योंकि रोज़गार के जो नये अवसर पैदा होंगे, उनसे चौथी योजना की अवधि में बढ़ने वाली श्रमिक शक्ति को पूरी तरह से रोज़गार नहीं दिलाया जा सकेगा। इसका यह अर्थ हुआ कि पहली तीन योजनाओं में लगभग 1.20 करोड़ लोगों को रोज़गार नहीं मिल सका, उनको भी रोज़गार नहीं दिलाया जा सकेगा और इसके साथ ही कृषि के क्षेत्र में जो परंपरागत अद्व-रोज़गार की स्थिति है, उसमें भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

चौथी योजना के लिये रोज़गार के प्रस्तावित

लक्ष्यों का, आर्थिक नीति के एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य - 1975 तक प्रत्येक परिवार के लिये एक न्यूनतम जीवनस्तर की व्यवस्था करना - के साथ भी तालमेल नहीं बैठता। इस दूसरे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि समाज के कमज़ोर वर्गों में आयों का फिर से वितरण एक ऐसे पैमाने पर किया जाए जिससे उन्हें राहत मिल सके। परंतु यह कार्य कर और आर्थिक सहायता के परंपरागत राजकोषीय साधनों के द्वारा हो सकना संभव नहीं है। भारत की वर्तमान स्थिति में प्रत्येक परिवार के लिये जीवन के एक न्यूनतम स्तर की व्यवस्था करने का सबसे अधिक व्यावहारिक तरीका यह है कि उन सब लोगों को रोज़गार दिलाया जाए जिन्हें रोज़गार की तलाश है।

इस समय हमारी कृषि की स्थिति ऐसी है कि उससे भलीभांति गुजारा भी नहीं हो पाता। ज्ञापन में इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया गया है कि खेती की इस स्थिति को बदल कर उसे वैज्ञानिक रूप दिया जाए। परंतु इसके क्या नतीजे होंगे, इनको पूरी तरह से नहीं आंका गया। किसानों द्वारा वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाना इस बात पर निर्भर करता है कि वे आधुनिक औजारों और सामान का इस्तेमाल करने की योग्यता रखते हों और उन्हें चला सकते हों।

इसका यह अर्थ हुआ कि किसानों को पढ़ाना और लिखना आना चाहिए। परंतु ज्ञापन में किसी ऐसे व्यापक कार्यक्रम का कोई जिक्र नहीं है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में फैली हुई व्यापक निरक्षरता को दूर किया जा सके। इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि समस्त बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के



चितरंजन रेल इंजन कारखाने में बना 100वां रेल इंजन (16 फरवरी, 1957 अंक से)

संवैधानिक दायित्व को भी चौथी योजना के बाद तक के लिये टाल दिया गया है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस बात की आशा करना व्यर्थ होगा कि हम अपनी परंपरागत खेती को वैज्ञानिक रूप दे सकेंगे और हमारे किसान अपने साधनों के ब्रेष्टतम उपयोग के लिये गांवों की योजनाएं बना सकेंगे।

नवंबर 1963 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने सभी राज्यीय सरकारों से कहा था कि वे तीसरी योजना के अंत से पहले-पहल भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करने का काम पूरा कर लें। जैसा कि ज्ञापन में बताया गया है, कई राज्यों को यह कार्यक्रम पूरा करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इसलिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि योजना आयोग और केंद्रीय सरकार उन राज्यों पर भूमि सुधार कार्यक्रम लागू करने के लिये फिर से ज़ोर दें जिन्होंने इस दिशा में अपनी मज़बूरी दिखाई है।

विकास के स्तर में प्रादेशिक विषमताओं की भी एक बड़ी भारी समस्या है और यदि इस समस्या का समाधान न किया गया तो इसके भयंकर सामाजिक और राजनीतिक परिणाम हो सकते हैं। निस्संदेह, आयोजक इस समस्या की गंभीरता से परिचित हैं और ज्ञान में भी

पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करने की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है। लेकिन मुझे कोई आश्चर्य न होगा यदि चौथी योजना के अंत में भी इस समय की अपेक्षा और अधिक प्रादेशिक विषमताएं विद्यमान हों। उदाहरण के तौर पर, ज्ञापन में कहा गया है, “कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि करने के लिये उन क्षेत्रों में कृषि संबंधी कार्यक्रमों को भरपूर तौर पर लागू करने के लिये विशेष ज़ोर देना होगा जहां सिंचाई की सुविधाएं हैं और निश्चित रूप से बारिश होती है, और इस प्रकार जहां उत्पादन में तेजी से वृद्धि करने की काफी संभावनाएं हैं।” चूंकि विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाएं एक जैसी नहीं हैं, इसलिये इस प्रकार की नीति अपनाने के परिणामस्वरूप प्रादेशिक विषमताएं और भी अधिक बढ़ सकती हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि इस प्रकार की नीति गलत या अवांछनीय है।

जहां तक उद्योगों का संबंध है, छोटे कृषि-उद्योग भी (जिन पर हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बदलने के लिये इतना अधिक बल दिया जा रहा है) उन्हीं क्षेत्रों में अधिक अच्छी तरह से पनप सकते हैं जहां अपेक्षाकृत कृषि विकास का अधिक ऊँचा स्तर हो। इन

क्षेत्रों में कृषि-उद्योगों का विकास करने का कारण यह है कि कृषि के बुनियादी कच्चे माल की भरपूर सप्लाई हो सकती है और इस प्रकार के उद्योगों के उत्पादित माल की स्थानीय मांग बढ़ने की गुंजाइश रहती है। इसलिये आर्थिक प्रक्रियाओं पर यदि कोई नियंत्रण न रखा गया तो उनसे प्रादेशिक विषमताएं और भी अधिक बढ़ने की संभावना हो सकती है। इसके साथ-साथ, शिक्षा, जिसमें तकनीकी शिक्षा भी सम्मिलित है, के विकास और यातायात तथा संचार साधनों की व्यवस्था पर भी पूरा बल दिया जाना चाहिए क्योंकि इनसे किसी क्षेत्र के विकास में अपेक्षाकृत अधिक मदद मिलती है बजाय इसके कि उस क्षेत्र में कुछ औद्योगिक परियोजनाएं चालू की जाएं।

विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिये कोई एक ही प्रकार का समाधान नहीं सुझाया जा सकता। इसलिये इस बात की आवश्यकता है कि जो क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़ गए हैं, उनके विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाए। □

(लेखक भारत के प्रधानमंत्री हैं। लेख प्रकाशन के समय वह पंजाब विश्वविद्यालय से संबद्ध थे; 29 नवंबर, 1964 अंक से)

बैंक राष्ट्रीयकरण

समाजवादी समाज की दिशा में एक कदम

○ रुद्र दत्त

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के निर्णय से वर्षों से वर्तमान गतिहीनता के बातावरण को एक जबरदस्त झटका लगा है। वास्तव में देश की जनता का अनेक कारणों से आयोजना और देश के उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास खत्म होता जा रहा था। इसका प्रमुख कारण यह था कि कांग्रेस की घोषणाओं और वास्तविक नीतियों में काफी बड़ी खाई विद्यमान थी। दूसरी ओर बैंकों का प्रयोग बड़े-बड़े व्यापारिक खानदानों द्वारा अपनी आर्थिक सत्ता का विस्तार करने और अपने-आपको सशक्त बनाने के लिये किया जा रहा था। दूसरे शब्दों में, बैंकों को देश में आर्थिक विषमताएं बढ़ाने में प्रयुक्त किया जा रहा था। यहीं नहीं, बैंकों में प्राप्त जमाकर्ताओं के रूपये का प्रयोग ऐसे उद्योगों के विस्तार के लिये भी किया जाता था, जिन्हें देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था में गौण प्राथमिकता मिलनी चाहिए। पिछले वर्षों में जिस तेजी से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हुई है, वह इस बात को स्पष्ट करती है कि बैंकों से प्राप्त साधनों का प्रयोग निजी क्षेत्र द्वारा कम महत्वपूर्ण उद्योगों में किया गया। तीसरे, बैंकों को सट्टेबाजी के लिये इस्तेमाल किया जाता था। सट्टा एक ऐसी आर्थिक क्रिया है, जिसका सामाजिक महत्व शून्य है, किंतु इसके द्वारा पूँजीपति लाखों रुपये अर्जित करते हैं। यहीं नहीं, पूँजीपति इसके कारण बाजार की आर्थिक परिस्थितियों पर भी दुष्प्रभाव डालते हैं। सामाजिक दृष्टि से बैंकों द्वारा सट्टेबाजी के प्रोत्साहन को उचित नहीं समझा जा सकता। चौथे, बैंकों से उधार पूँजी आसानी से प्राप्त

कर सकने के कारण बड़े-बड़े पूँजीपतियों द्वारा बाजार में कृत्रिम अभाव की स्थिति कायम कर दी जाती थी। इस बात का उल्लेख एकाधिकार जांच आयोग ने अपनी रिपोर्ट में किया भी है। इस कृत्रिम अभाव की स्थिति के कारण कीमतों को ऊंचा उठाने में बैंक परोक्ष रूप से उत्तरदायी थे। विशेषतः यह स्थिति जीवन की अनिवार्य वस्तुओं (अर्थात् खाद्य पदार्थों) की कीमतों में विद्यमान थी, जिससे जनता की वास्तविक आय का ह्रास हुआ, किंतु व्यापारियों के लाभों में असाधारण वृद्धि हुई।

इसके अलावा वाणिज्यिक बैंक ऐसे कार्यों में पूरे नहीं उतरे, जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती थी। उदाहरण के लिये, छोटे एवं मध्यम श्रेणी के उद्यमकर्ताओं का विकास। किसी भी देश में आर्थिक विकास तभी गतिमान हो सकता है, जब देश में उद्यमकर्ता वर्ग का विकास हो। सफल आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त यह है कि उसके लाभ सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों को लाभग समान रूप में उपलब्ध हों। कुछ नगरों एवं महानगरों में आर्थिक विकास के संकेंद्रण और कुछ व्यापारी खानदानों तक विकास के लाभ वितरण के सीमित हो जाने से आर्थिक विकास व्यापक नहीं हो पाया। परिणामतः पिछले कई वर्षों में विकास अवरुद्ध हो गया।

भारत सरकार ने चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उक्त परिस्थितियों को सुधारने का जो संकल्प किया है, वह न्यायोचित है। लेकिन क्या अतीत के अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि राष्ट्रीयकरण से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकेंगे - यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

जीवन बीमा निगम का राष्ट्रीयकरण और इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण भी इस पथ पर दो कदम थे जो चौदह-पंद्रह वर्ष पूर्व उठाए गए थे। इन दो राष्ट्रीयकृत संस्थानों द्वारा किए गए विनियोग भी लगभग ठीक उसी प्रकार के हैं, जिनके कारण वाणिज्यिक बैंकों को दोषी ठहराया जा रहा है। जीवन बीमा निगम और स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की विनियोग आवंटन नीति से बड़े व्यापारी खानदानों को ही लाभ हुआ है। इनके द्वारा भी छोटे एवं मध्यम उद्यमकर्ताओं के हितों की रक्षा नहीं की गई। यह आरोप भी लगाया जाता है कि इन संस्थानों द्वारा दिए गए ऋणों से क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ी हैं। बैंक राष्ट्रीयकरण नीति का विरोध करने वालों का कहना है कि जब राष्ट्रीयकृत क्षेत्र पहले ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रहा है, तो इनसे भविष्य में सफलता की आशा करना निर्थक ही है। केवल बैंक क्षेत्र में ही नहीं, अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी क्षेत्र की कुशलता का स्तर नीचा बताया जाता है। अतः यह तर्क दिया जाता है कि ऐसी परिस्थिति में क्या सरकारी क्षेत्र का अब बैंक क्षेत्र में (और बाद में अन्य क्षेत्रों में) विस्तार समर्थन योग्य है।

इन प्रश्नों के उत्तर समझने के लिये भारत में सरकारी क्षेत्र की विफलता के मुख्य कारणों का विश्लेषण आवश्यक है। सबसे बड़ा कारण भारत द्वारा मिश्रित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अपनाया जाना है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी एवं गैरसरकारी क्षेत्र के सहअस्तित्व को स्वीकार किया गया। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत समाजवाद की ओर

प्रगति करने का निश्चय किया गया और सरकारी क्षेत्र के विस्तार को समाजवाद की ओर प्रगति का सूचक मान लिया गया। वास्तविक परिस्थितियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में अंतर्विरोध के कारण देश में पूंजीवादी शक्तियों ने ही प्रगति की है। फलतः एकाधिकार की प्रवृत्तियाँ और अधिक सशक्त बन गई हैं। इस कारण आय तथा संपत्ति की असमानताओं में भी वृद्धि हुई। जहां गैरसरकारी क्षेत्र में पूंजीपति सीधे शोषण द्वारा अपनी सत्ता को बढ़ाने लगे, वहां सरकारी क्षेत्र में ठेकेदारी की पद्धति द्वारा आर्थिक विकास के लाभों का प्रयोग समृद्ध वर्ग ने अपने हितों को पनपाने के लिये किया। देश में उत्पादन तो बढ़ा (भले ही उत्पादन में वृद्धि संतोषजनक नहीं थी) किंतु उत्पादन में वृद्धि के कारण उत्पन्न अतिरिक्त आय का वितरण निर्धन वर्गों के हक् में होने की अपेक्षा समृद्ध वर्गों के हक् में ही हुआ। अतः यह कहना उचित ही है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र का विस्तार तो हुआ, परंतु यह अर्थ पद्धति पूंजीवादी प्रेरणा का दमन करने में विफल रही।

पूंजीवादी प्रेरणा का समाज में अंत तभी हो सकता है, जब पूर्ण समाजवाद की स्थिति कायम की जाए। आयोजना काल के दौरान दो महत्वपूर्ण वर्गों के सदस्य पूंजीपति वर्ग में प्रविष्ट हुए हैं। इनमें से पहला महत्वपूर्ण वर्ग राजनीतिज्ञों का है। सत्ताधारी राजनैतिक दलों के अनेक सदस्यों ने परमिट एवं लाइसेंस पद्धति के प्रयोग से कारखानेदार, मिल मालिक, ठेकेदार अथवा ट्रांसपोर्ट के मालिक बनने का प्रयास किया है। दूसरा वर्ग है सरकारी अफसरों का, जो बेनामी ढंग से, यानी फर्मों में विना पैसा लगाए ही हिस्सेदार बन जाते हैं क्योंकि वे उद्योगपतियों को विभिन्न प्रकार के लाइसेंस और कोटे दिलाने में सहायता करते हैं। गत अठारह वर्षों में पूंजीपतियों, राजनीतिज्ञों और अधिकार तंत्र में गठजोड़ के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी तत्वों को बढ़ावा मिला है। अतः यह प्रतीत होता है कि समाजवाद सरकारी दफ्तरों एवं सत्ताधारी राजनैतिक दल में प्रस्ताव मात्र की धारणा बनकर रह गया था।

बैंक राष्ट्रीयकरण समाजवाद की दिशा में पहला ठोस कदम है। इसी कारण प्रगतिवादियों ने इस निर्णय का स्वागत किया है। बैंक राष्ट्रीयकरण के कारण वे प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ, जो पूंजीवादी अर्थतंत्र के मठ पर काबिज थीं, एकदम हिल गई हैं। अतः बैंक राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप समाजवादी और पूंजीवादी शक्तियों में एक सीधी टक्कर हुई है और जनता को विभिन्न राजनीतिक दलों के सत्ता केंद्रों का सही परिचय मिलने लगा है।

सामाजिक क्रांति के सिद्धांत एवं इतिहास से यही पता चलता है कि जब तक प्रगतिवादी शक्तियाँ व्यापक रूप से समाज के केंद्रीय महत्व के विभिन्न अंगों पर पूर्ण नियंत्रण न कर लें, वांछित क्रांति विफल भी हो सकती है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए आवश्यक है कि बैंकों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण हो। अतः विदेशी बैंकों और छोटे बैंकों का स्वामित्व भी समाजाधीन होना चाहिए अन्यथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्विरोधों के पुनः उत्पन्न होने की संभावना है।

वस्तुतः समाजवादी अर्थव्यवस्था का मूल इस बात में है कि उत्पादन के संसाधनों का स्वामित्व समाज के अधीन होना चाहिए। सभी बैंकों के राष्ट्रीयकरण से भी यह उद्देश्य सीमित रूप में ही प्राप्त होता है। अतः समाजवाद की स्थापना के लिये सामाजिक स्वामित्व के क्षेत्र का विस्तार और अधिक करना अनिवार्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिन क्षेत्रों पर तत्काल ही पूर्ण सामाजिक अधिपत्य स्थापित करना चाहिए, वे हैं - (1) थोक खाद्यान्न व्यापार, (2) विदेश व्यापार, (3) तेल कंपनियाँ, (4) सामान्य बीमा कंपनियाँ और (5) पटसन, सूती वस्त्र, चीनी, सीमेंट तथा चाय के उद्योग। पूंजीवादी उद्यम के अंत के लिये आवश्यक है कि निजी संपत्ति के स्थायित्व को अर्थहीन बना दिया जाए और यह तभी संभव है, जबकि सामाजिक स्वामित्व की लपेट में अधिकांश उत्पादन के संसाधन आ जाएं।

इस संबंध में अंतिम महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सरकारी क्षेत्र में कुशलतापूर्वक कार्य चलाया जा सकता है। भारतीय क्रांति की विफलता का मुख्य कारण यह है कि स्वतंत्रता

के उपरांत वाले काल में ब्रिटिश प्रशिक्षण प्राप्त अधिकारतंत्र से समाजवादी समाज की स्थापना की प्रत्याशा की गई। वास्तव में सरकारी क्षेत्र को कुशल बनाने के लिये इसका गठन एक नये अधिकार तंत्र द्वारा किया जाना चाहिए, जो सामाजिक उद्देश्यों के प्रति सजग हो।

सरकारी क्षेत्र की कुशलता बढ़ाने का प्रश्न मूलतः उचित प्रोत्साहन कायम करने का प्रश्न है, जिससे काम करने की इच्छा को दुष्प्रभावित करने वाले अंशों को कुछ दंड देने अथवा उन्हें हतोत्साह करने की व्यवस्था ज़रूरी है। इस संबंध में समाजवादी देशों के अनुभव बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। इस कथन को स्वीकार करना काफी कठिन है कि सरकारी क्षेत्र में कुशलता का स्तर बढ़ाया ही नहीं जा सकता। 95 प्रतिशत श्रमिक तो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भी उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के भागीदार नहीं होते, समाजवादी अर्थव्यवस्था में शत-प्रतिशत को स्वामित्वीहीन बना दिया जाता है। अतः मुख्य प्रश्न अर्थव्यवस्थाओं की भिन्नता का नहीं। अर्थव्यवस्थाओं की भिन्नता को कायम रखते हुए भी कुशलता का स्तर बढ़ाना संभव है। अर्थव्यवस्था के ढांचे में परिवर्तन इसलिये अनिवार्य है कि इससे समाज का आर्थिक कल्याण और अधिक हो सके।

समाजवाद जीवन की एक पद्धति है। इसको कायम करने के लिये उत्पादन के साधनों का स्वामित्व समाज के अधीन लाना परमावश्यक है। बैंक राष्ट्रीयकरण इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। आंशिक बैंक राष्ट्रीयकरण या पूर्ण बैंक राष्ट्रीयकरण समाजवाद को कायम करने के लिये अपर्याप्त कदम है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सामाजिक स्वामित्व के क्षेत्रों का विस्तार करना अनिवार्य है। साथ ही, यह भी अनिवार्य है कि उचित प्रोत्साहन का बातावरण तैयार करके सरकारी क्षेत्र में कुशलता का स्तर उन्नत किया जाए। समाजवाद और अकुशलता, दो असंगत धारणाएं हैं। इनके सह अस्तित्व को सहन करना सामाजिक अपराध है। □

(लेखक आत्माराम मनातन धर्म कॉलेज; नवी दिल्ली में अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे;
31 अगस्त, 1969 अंक से)

DISHA - The IAS Academy

(Grooming all for the Civil Services)

Under the guidance of its Academic Directors **Dr. M.N. Singh** (English Medium) प्रणव कुमार (निदेशक हिन्दी प्रकोष्ठ), DISHA has secured over **28 selections** in 2005 IAS Examination.

SUBJECTS OFFERED

ENGLISH & हिन्दी

POL. SCIENCE & IR	भूगोल
GEOGRAPHY	इतिहास
HISTORY	समाजशास्त्र
SOCIOLOGY	राजनीति शास्त्र
PUB-AD	दर्शनशास्त्र
ECONOMICS	लोकप्रशासन
	अर्थशास्त्र
	हिन्दी साहित्य

At **DISHA** the aspirants are groomed for accomplishment and engineered for success. It is a tribute to our dedicated and learned faculty from JNU, DU, & the IITs

MAIN BRANCH

FOUNDATION COURSE : 2007, 08 & 09
BATCHES COMMENCE ON : 18th Oct., 13th Nov. & 27th Nov.

POSTAL GUIDANCE ENGLISH MEDIUM: G.S., Pol. Science, Geography, History, Economics, पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम): भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी साहित्य, सामान्य अध्ययन,

2003-(11), 2004-(16); & 2005 PERFECT GROOMING AT DISHA, SOME OF OUR LUMINARIES



Akshat Gupta
IAS



Sheetal
IAS



Janesh
IAS



Eric Mehta
IPS



Tony Kapoor
IPS



Pawan K. Soni
IPS

RANK 109 - SHUDHANSU D. MISHRA

&

MANY MORE

RANK 156 - ABHISHEK KUMAR

RANK 186 - G. S. P. DAS

RANK 244 - ANUP KUMAR SAHOO



Dharmajit K.
IPS



V. Bidari
IPS



Jitender Rana
IPS



Sankalp P.
IRS



V. Tripathi
IRS



Rajesh Kumar
IRS



Jaymish Pandya
IRS

Our Specialized faculty also provides excellent classroom guidance for UGC (JRF/NET)

Note: Fee Concession to SC/ST Candidates (**Hostel Facilities Available**)
Contact personally or write for prospectus with a DD/MO for Rs. 50/- Favouring Disha - The IAS Academy

Head Office : 585, 1st Floor, Jay Pee Complex, Bank Street, Munirka, N.D. - 110 067,

Ph.: 011-65640506/07 Mob. 09818327090, E-mail : disha_the_ias_academy@yahoo.co.in

Jaipur Branch Office : 502, 5th Floor, Pink Tower, behind Sahara Chamber, Tonk Road Jaipur.

Ph. 0141-3298887, Mob. 09351447086

YH/1/7/05

बैंकों का राष्ट्रीयकरण क्यों

○ इंदिरा गांधी

चौ दह बैंकों का राष्ट्रीयकरण पूर्णतः उचित है- शुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी और उन व्यापक उद्देश्यों की दृष्टि से भी, जिन्हें हमने लाखों-करोड़ों देशवासियों की आशाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये अपनाया है और आगे भी अपनाएंगे। कुछ ही वर्ष पहले 1964 में संसद ने समाजवादी ढंग के समाज की रचना का उद्देश्य स्वीकार किया था। उसके बाद सरकारी क्षेत्र में पूँजी निवेश का विस्तार हुआ, जिससे और अधिक औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक आधार निर्मित हुआ।

मेरी यह धारणा अवश्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के बारे में तुलनात्मक बहस प्रायः अवास्तविक है। हमारी अर्थव्यवस्था में दोनों क्षेत्रों को महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करनी हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि निजी क्षेत्र गुणों का मूर्त रूप है, वस्तुतः इस क्षेत्र का अब तक का इतिहास ऐसा नहीं है जिससे प्रेरणा मिले या उत्साह बढ़े। देश के व्यावसायिक बैंकों की कार्यविधि का जितना अध्ययन किया जाए उतनी ही यह धारणा बढ़ती है कि जिस कदम पर हम बहस कर रहे हैं, वह अपरिहार्य और पूर्णतः अनिवार्य है।

बैंक व्यवसाय और दूसरे उद्योगों में बुनियादी अंतर है। बैंकों में उनके शेयर होल्डरों का वित्तीय दाव नगण्य होता है। 31 दिसंबर, 1968 को इन बैंकों के पास खातों में, 2,750 करोड़ जमा रुपया था, जबकि इनकी चुकता पूँजी केवल 28.5 करोड़ रुपये, यानी एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक थी। इस प्रकार बैंक प्रबंधक अपना लगभग सारा धंधा दूसरों की पूँजी से चला रहे थे।

बैंक व्यवसाय का यह पक्ष उन देशों में भी

चिंता का विषय बना है जो समाजवाद में आस्था नहीं रखते। वस्तुतः अनेक देशों ने या तो बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया है या उनकी कार्यविधि पर जबरदस्त अंकुश लगा दिए हैं। फ्रांस ने अपने यहां के छह बड़े बैंकों में से चार का राष्ट्रीयकरण करना ज़रूरी समझा। जो दो बैंक बचे हैं, वे कुल बैंक साधनों के बीसवें भाग के ही स्वामी हैं। इसी तरह इटली सरकार ने पांच बैंकों में से चार को सार्वजनिक क्षेत्र में ले लिया। स्वीडन की सरकार ने भी अपने यहां उन दो बैंकों की पूँजी सरकारी क्षेत्र में कर ली, जिनका विलय 1950 में हुआ था।

लोगों ने सामाजिक नियंत्रण के बारे में यह सवाल उठाया है कि इसे कुछ और समय तक क्यों नहीं आजमाया जा सकता था। सामाजिक नियंत्रण में विशेषज्ञ प्रबंधकों पर बल देने जैसी कई उपयोगी विशेषताएं थीं जो अब भी विद्यमान हैं। सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था में कृषि, निर्यात और छोटे उद्योगों को भी ऊँची प्राथमिकता दी गई थी। लेकिन सामाजिक नियंत्रण की कमज़ोरी यह थी कि कई बैंकों में जो लोग पहले नीति निर्धारित करते थे, वे तब भी किसी न किसी रूप में कभी-कभी निदेशक मंडल के पुराने अध्यक्षों और उपाध्यक्षों की मार्फत नीतियां को प्रभावित कर रहे थे। हो सकता है, बैंकों ने आदेशों और निर्देशों का पालन किया हो, जैसा कि कुछ ने किया भी। लेकिन जो लोग किसी नीति पर तहे दिल से उत्साहपूर्वक अमल करते हैं और जो केवल आदेशों के कारण नीति का पालन करते हैं, उनमें ज़मीन आसमान का अंतर होता है। कई बैंकों ने इन निर्देशों का पालन नहीं भी किया, अतः हम उन साधनहीन वर्गों के अधैर्य और नैराश्य की अवहेलना

नहीं करते रह सकते थे जो स्वावलंबी बनने के लिये हमारी कोशिशों के आसरे रहते हैं।

यह भी पूछा गया है कि हमने इस विधेयक में विदेशी बैंकों को क्यों नहीं शामिल किया है। विदेशी बैंक एक विश्वव्यापी संगठन के अंग हैं और इस कारण वे निर्यातकों और आयातकों को कुछ विशेष सुविधाएं देने की स्थिति में हैं। इस तरह की सुविधाओं के लिये विदेशों में भारतीय बैंकों की शाखाओं की संख्या बहुत कम है। विदेशी बैंक उन विदेशी ग्राहकों को नज़दीक से जानते हैं, जिनसे भारतीय निर्यातकों का लेन-देन चलता है। इस तरह से विदेशी बैंकों का विदेशी मुद्रा में कर्ज़ देने और अपने मुख्य कार्यालय की ओर से उनका नियमन करने, पर्यटकों को सेवाएं प्रदान करने और भारत में उपलब्ध वाणिज्यिक अवसरों की जानकारी अपने कार्यक्षेत्र वाले देशों को कराने में विशेष महत्व है। साथ ही, विदेशी बैंकों पर कड़े नियम लागू हैं। इस संबंध में एक नियम यह है कि विदेशी बैंक बंदरगाहों तक ही अपना कारोबार सीमित रखें, केवल ऐसे बैंकों को ही देश के अंदरूनी हिस्सों में कारोबार करने की छूट है, जिनकी शाखाएं वहां पहले से काम कर रही हैं। रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया किसी विदेशी बैंक को विस्तार की अनुमति तभी देगा, जब विदेशी व्यापार और पर्यटन की दृष्टि से भारतीय ग्राहकों के लिये इन बैंकों की अधिक कुशल सेवाएं ज़रूरी समझी जाएंगी।

एक अन्य आलोचना छोटे बैंकों को अचूता छोड़ने के बारे में है। राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य कृषि, छोटे उद्योगों और निर्यात को तेज़ी से बढ़ावा देना, नये उद्यमियों को प्रोत्सहित करना और सभी पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना है। जिन बैंकों में जमा खातों में 50 करोड़ या

इससे अधिक राशि है, उनकी शाखाएं अनेक राज्यों में हैं। इसके विपरीत छोटे बैंकों का कार्यक्षेत्र कुछ खास-खास क्षेत्रों में ही है। विधेयक में शामिल 14 बैंकों का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक है, इसलिये ये छोटे बैंकों के मुकाबले सरकारी उद्देश्यों पर अधिक अच्छी तरह अमल कर सकने की स्थिति में हैं। छोटे बैंक मुख्यतः छोटे कर्जदारों की आवश्यकताएं पूरी करते हैं। उनके आंकड़ों से स्पष्ट है कि उनके कर्ज के खातों का औसत आकार कहीं छोटा होता है। वे उस समुदाय के हिस्से हैं, जिसमें उनका कारोबार है। छोटे व्यापारी और उद्योगपति उनकी कार्यविधि को थोड़ा-बहुत प्रभावित करते हैं।

इन सब बैंकों के संचालन के लिये कोई विशाल केंद्रीय संस्था गठित करने का हमारा इरादा नहीं है। अलवत्ता, हमें केंद्रीय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना होगा, लेकिन हर बैंक को स्वायत्ता प्राप्त होगी और निदेशक मंडल को सुनिश्चित अधिकार दिए जाएंगे। हम निर्देश अवश्य देंगे, लेकिन वे नीति और आम मामलों के संबंध में ही होंगे—विशिष्ट ऋण देने के बारे में नहीं। हम लोग अत्यधिक हस्तक्षेप के खिलाफ से हमेशा सावधान रहेंगे—चाहे वह राजनीतिक कारणों से प्रेरित हो या अन्य कारणों से।

मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं कि इस मामले में नौकरशाही हावी न हो। हमें इन बैंकों की पहल, प्रोत्साहन और निजत्व को भी सुरक्षित रखना होगा। यह सब हम इस तरह करना चाहते हैं कि स्वस्थ प्रतियोगिता या पहल की भावना खत्म न हो जाए।

इस अवसर पर मैं शेयरहोल्डरों को आश्वस्त करना चाहती हूं कि क्षतिपूर्ति की जो राशि तय की गई है, वह उचित और न्यायसंगत है। हमारी यह कोशिश भी है कि क्षतिपूर्ति की अदायगी यथासंभव जल्द कर दी जाए। कहा गया है कि सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में अदायगी शेयरहोल्डरों के लिये कठिनाइयां पैदा करेगी। मैं इसको ज़ोरदार शब्दों में प्रतिरोध करना चाहती हूं। हाल में ही भारत सरकार ने 4.25 प्रतिशत ब्याज पर 7 साला ऋणपत्र जारी किए थे। ये प्रतिभूतियां थोड़ी सी बढ़ोतरी पर बाज़ार में बिक जाती हैं। 5.5 प्रतिशत ब्याज वाले 30 वर्षीय ऋणपत्र भी

बढ़ोतरी पर बिक जाते हैं। इसलिये यह कहना, कि इन प्रतिभूतियों से शेयरहोल्डरों को पूँजीगत हानि होगी, बहुत खातरनाक और गैर-जिम्मेदाराना बयान है।

यह भी होता है कि समाज के अपेक्षाकृत गरीब वर्ग को प्रतिभूतियों को वाज़िब से कम मूल्य पर बेचने के हेतु प्रेरित करने के लिये उनके वास्तविक मूल्य के बारे में शंकाएं फैला दी जाती हैं। मुझे आशा है कि कोई ऐसी बातें नहीं कहेगा, जिससे इस तरह का शोषण हो। ये प्रतिभूतियां हस्तांतरणीय होंगी और इन्हें बेचा जा सकेगा। इनके बेचने से मिलने वाली रकम से बाटा नहीं होना चाहिए।

बैंकों के प्रबंधकों और कर्मचारियों को मैं आश्वासन देना चाहती हूं कि हम उनके जायज़ हितों की देखभाल करेंगे। हम उनसे सहयोग एवं सद्भाव की आशा रखते हैं। देश और बैंक व्यवसाय के हितों को नज़रअंदाज करते हुए आंदोलन का रवैया अब नहीं अपनाया जाना चाहिए। हम आशा करते हैं कि मज़दूर और प्रबंधक सहयोग करेंगे और जिम्मेदाराना रवैया अपनाएंगे।

उद्योग हो या व्यापार अथवा खेती, सबका वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाएगा। बैंक खातेदारों द्वारा सौंपी गई रकमों को पवित्र न्यास के रूप में देखेंगे। भारत की जनता सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक से लेन-देन करने की अभ्यस्त हो चुकी है। सकल जमा पूँजी का एक तिहाई स्टेट बैंक और उसकी सहायक संस्थाओं के कब्जे में है, लेकिन किसी ने भी यह नहीं कहा कि खातेदारों के हितों पर किसी प्रकार से आंच आई है। मैं नहीं कहती कि स्टेट बैंक आदर्श है, लेकिन निश्चय ही समाज को सुविधाएं देने के संदर्भ में वह निजी बैंकों के मुकाबले कार्यकुशलता या कर्ज़ देने में पीछे नहीं हैं। डाकखानों के बचत बैंक सुदूर देहाती इलाकों में जनता को बैंक से व्यवहार करने की आदत डालने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। 1967 के अंत में डाकखानों के बचत बैंकों में डेढ़ करोड़ खातेदारों का 700 करोड़ रुपया जमा था। सरकार का कटु से कटु आलोचक भी नहीं कह सकता कि डाकखानों के बचत खातों में रुपया जमा करने वालों ने कभी महसूस किया

हो कि उनके हित सुरक्षित नहीं है।

आम जनता को हम बेहतर और पहले से व्यापक सेवा का आश्वासन देते हैं। देश के विभिन्न भागों में बैंक की सुविधाओं का विकास बहुत असंतुलित रहा है। उन राज्यों में बैंक सुविधाएं बढ़ाने की तात्कालिक आवश्यकता है, जिनमें बैंकों की कमी है। विकसित राज्यों में भी बैंकों की सुविधाएं शहरी इलाकों, खासकर बड़े शहरों तक ही सीमित हैं, जबकि अद्वैशहरी और देहाती इलाकों में वे बहुत कम हैं। अलग-अलग राज्यों में ऋण जमा अनुपात के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कई राज्यों में यह अनुपात बहुत कम है, जैसे— असम, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब आदि। इससे यह शिकायत पैदा हुई कि बैंक कुछ इलाकों में जमा के रूप में पूँजी एकत्र कर लेते हैं और उसका उपयोग अन्य इलाकों में करके क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा देते हैं। ये प्रवृत्तियां दुरुस्त की जा सकती हैं और संतुलित क्षेत्रीय विकास की नीति, जिस पर अकसर ज़ोर दिया गया है, तभी लागू की जा सकती है, जब बैंकों पर सरकारी नियंत्रण हो।

इस विधेयक को लागू करते समय सरकार उस व्यापक हार्दिक समर्थन का अधिकारी बनने की कोशिश करेगी जो उससे इस संबंध में मिला है। हम इस विधेयक को केवल अधिक ऋण देने के लिये ही नहीं, बल्कि सोहेय ऋण देने के लिये भी लागू करना चाहते हैं। हमारा उद्देश्य उन गंभीर और गुरुतर समस्याओं को सुलझाने का है जो आज़ादी मिलने के समय से समाज के विभिन्न वर्गों और देश के विभिन्न भागों के सामने रही हैं।

यह कदम ऐतिहासिक नहीं है, लेकिन यह कदम सही दिशा में अवश्य है, अतः जो लोग इसके सफल कार्यान्वयन में दिलचस्पी रखते हैं, उनकी सहायता हमें चाहिए। वे हमें सुझाव और नये विचार दें जिन पर हम निश्चय ही विचार करेंगे ताकि इसको इस तरह लागू किया जा सके कि उनको या देश के आम लोगों को निराशा न हो।

(बैंक गष्टीयकरण पर लोकसभा में 29 जुलाई, 1969 को दिए गए तत्कालीन प्रधानमंत्री के भाषण का संपादित रूप; 31 अगस्त, 1969 अंक से)

भारत में कंप्यूटर युग का आरंभ

○ हरीश अग्रवाल

भारत की असाधारण कृषि सफलता, औद्योगिक विस्तार, अनुसंधान में उपलब्धियां तथा नये व चुनौतीपूर्ण कार्यों में एक चीज समान रही है, यह चीज है—कंप्यूटर।

कुछ साल पहले तक कंप्यूटर को एक अजीब चीज समझा जाता था। आज भारत में सौ से अधिक कंप्यूटर इस्तेमाल हो रहे हैं, और उद्योग, व्यापार, विज्ञान आदि क्षेत्रों में इनका उपयोग हो रहा है। भारतीय फर्मों ने उत्पादन बढ़ाने, नये बाज़ार बनाने और नियांत बढ़ाने में कंप्यूटर की सहायता ली है। कृषि वैज्ञानिकों ने इसका उपयोग खाद्य-उत्पादन बढ़ाने, फसलों के रोगों को दूर करने और दूध उत्पादन बढ़ाने में किया है। सरकारी विभागों में विकास योजनाएं बनाने, उत्पादकता बढ़ाने और प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में कंप्यूटर का प्रयोग हो रहा है। अनुसंधान प्रयोगशालाओं ने कंप्यूटरों का उपयोग खनिजों की खोज तथा कम खर्च वाले मकानों और पुलों की रूपरेखा तैयार करने में किया है। चिकित्सा संस्थान मरीजों की अच्छी तरह देखभाल, उपचार में आगे बढ़ाने और परिवार नियोजन आंदोलन की गति बनाए रखने के लिये कंप्यूटरों का उपयोग कर रहे हैं।

कंप्यूटरों के कारण अनेक भारतीय फर्में एक स्थान से पूँजी निकालकर दूसरे स्थान में लगाने और इस तरह पूँजी का अच्छी तरह इस्तेमाल करने में सफल रही हैं। कंप्यूटरयुक्त इन्वेंटरी कंट्रोल ने कमाल कर दिखाया है और इससे भारतीय बचत संभव हुई है।

टाटा इंजीनियरिंग व लोकोमोटिव कंपनी की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है। कि कंपनी 1965 से कंप्यूटरों का उपयोग कर रही है। उसने इन्वेंटरी कंट्रोल विधि से फालतू कलपुर्जों

की बचत करके इस साल पांच करोड़ रुपया बचाया है।

किसानों को सहायता

भारत के चमत्कारी गेहूं, जैसे “कल्याण सोना” की खोज में भी कंप्यूटरों का हाथ रहा है। यह बीज संसार के सैकड़ों बीजों का विश्लेषण करने के बाद तैयार किया गया है। हर बीज में बीसियों आनुवांशिक गुण थे। आनुवांशिक मिलन के इन लाखों गुणों का अध्ययन करके ही कल्याण सोना का निर्माण संभव हुआ है। यह अध्ययन कंप्यूटर की सहायता से ही संभव हुआ। यही नहीं कंप्यूटरों के कारण मौसम की सही भविष्यवाणी करना संभव हो गया है। इससे किसानों को बहुत लाभ पहुंचा है।

वैज्ञानिक अनुसंधान

भारत के वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान को कंप्यूटरों ने एक नयी दिशा प्रदान की है। रुड़की के संरचना इंजीनियरी अनुसंधान केंद्र ने कंप्यूटरों की सहायता से ट्रांसमिशन टावरों की रूपरेखा तैयार की, जिससे साढ़े छह लाख रुपये की बचत हुई।

हाल में हैदराबाद की क्षेत्रीय प्रयोगशाला में एक जटिल रासायनिक रिएक्टर की रूपरेखा बनाई गई। यह रिएक्टर अब सफलतापूर्वक चल रहा है। कंप्यूटर की सहायता से इसकी रूपरेखा तैयार की गई, जिसके कारण विदेशी मुद्रा में बचत हुई। इसे रासायनिक इंजीनियरी का एक चमत्कार बताया गया है।

अनेक सूती कपड़ा मिलें भी कंप्यूटरों का उपयोग कर रही हैं। इससे माल और धन की पर्याप्त बचत संभव हुई है। हमारी रेलों के यातायात में सुधार के लिये भी कंप्यूटरों का उपयोग हो रहा है।

बंबई का कारखाना

भारत में कंप्यूटरों का उपयोग ही नहीं होता, बल्कि इनका निर्माण भी होता है। बंबई के एक कंप्यूटर कारखाने में 1966 में पहला भारतीय कंप्यूटर बना। यहां बना इलैक्ट्रॉनिकी की-पंच 40 देशों को निर्यात किया जाता है।

नयी दिल्ली के आईबीएम डेटा सेंटर में भारत में ही बना 1401 कंप्यूटर अनेक कामों में प्रयुक्त हो रहा है। इससे हिंदुस्तान हाउसिंग कारखाने के कर्मचारियों को वेतन बांटने से लेकर दिल्ली के लोगों को शीतल पेय के वितरण का काम लिया जा रहा है। कंप्यूटरों का इस्तेमाल करने के लिये यह ज़रूरी नहीं कि किसी के पास कंप्यूटर हो। यदि कंप्यूटर से काम लेना हो तो कंप्यूटर किए पर लिया जा सकता है या कंप्यूटर केंद्र में जाकर कुछ घंटों से लेकर कुछ दिन तक उससे काम लिया जा सकता है।

ठीक ही कहा गया है कि कंप्यूटर के लिये कोई भी काम बड़ा नहीं है। यह आदमी का रोज़ का साथी बन गया है और इसने मानव जीवन को अधिक उत्पादनशील और अर्थपूर्ण बना दिया है। लेकिन इतना होते हुए भी कंप्यूटर मानव का स्थान नहीं ले सकता। कंप्यूटर एक टाइपराइट से ज्यादा नहीं सोचता। यह उन लोगों पर निर्भर करता है जो इसका इस्तेमाल करते हैं।

कंप्यूटर एक ऐसी मशीन है जो मानव को सोचने और निर्माण करने में मदद करती है लेकिन फिर भी पाषाण युग में मानव, जिसने पथरों से गिनना आरंभ किया, के द्वारा आरंभ किए गए विचारों का क्षितिज निरंतर बढ़ता जा रहा है। मानव कंप्यूटर की सहायता से विकासक्रम जारी रख रहा है। □

(16 अगस्त, 1970 अंक से)

भारत में टेलीविजन

दिल्ली में आकाशवाणी द्वारा आजमाईश के तौर पर सितंबर, 1959 में टेलीविजन केंद्र की स्थापना से देश में टेलीविजन का आगमन हुआ। आज यह टेलीविजन संबंधी सब सुविधाओं से संपन्न केंद्र बन गया है और आगामी वर्षों में यह देश में निरंतर विस्तृत होती टेलीविजन प्रणाली का केंद्र बिंदु बनेगा।

दिल्ली टेलीविजन केंद्र ने पिछले वर्षों में अपने कार्यक्रमों को ही अधिक विविध नहीं बनाया है बल्कि प्रसारण के समय में भी वृद्धि की है। टेलीविजन का नया टावर बनाने के बाद दिल्ली से प्रसारित टेलीविजन कार्यक्रमों को 60 किलोमीटर के दूर से देखा जा सकता है और अब उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब के कुछ हिस्सों के लोग दिल्ली से प्रसारित टेलीविजन कार्यक्रम देख सकते हैं। आजकल लगभग प्रतिदिन साढ़े तीन घंटा प्रसारण होता है और रविवार को तीसरे पहर एक घंटे का अधिक प्रसारण होता है।

प्रसारण के समय में वृद्धि और कार्यक्रमों की विविधता के कारण दिल्ली और आसपास के इलाकों में टेलीविजन देखने वालों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। आज लगभग 27,600 टेलीविजन इस्तेमाल हो रहे हैं।

विद्यार्थियों और किसानों के लिये विशेष कार्यक्रमों के अलावा दिल्ली दूरदर्शन केंद्र अपने दर्शकों के लिये अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। इन कार्यक्रमों में समाचार प्रसारण, मनोरंजन, लोक संगीत और लोक नृत्य, सामयिक विषयों पर चर्चा, विशेषज्ञों और विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट वार्ताएं, साहित्यिक कार्यक्रम, स्त्रियों और बच्चों के कार्यक्रम, स्वदेश और विदेशों की महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में फिल्म प्रदर्शन और कथाचित्र और वृत्तचित्र भी दिखाए जाते हैं।

नये केंद्र

चौथी योजना में श्रीनगर और बंबई में (पूना में रिले सुविधा सहित) नये टेलीविजन केंद्र बनाने की योजना है। अगले दो वर्षों में मद्रास,

कलकत्ता और लखनऊ (कानपुर में रिले सुविधा सहित) टेलीविजन केंद्र बनाए जाएंगे। दिल्ली केंद्र में पंजाब और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों के लिये कार्यक्रम रिले करने की व्यवस्था की जाएगी। सबसे पहले अमृतसर में टेलीविजन प्रसारण केंद्र बनाया जाएगा। फिलहाल यह दिल्ली में विशेषरूप से तैयार कार्यक्रम ही प्रसारित करेगा।

बंबई और श्रीनगर में नये टेलीविजन केंद्रों की स्थापना का काम बड़ी तेजी से चल रहा है। बंबई के टेलीविजन केंद्र के अंतर्गत टेलीविजन स्टूडियो और वर्ती में ट्रांसमीटर लगाया जाएगा और पूना के पास सिहाड़ पहाड़ी पर रिले ट्रांसमीटर की स्थापना होगी।

श्रीनगर के टेलीविजन केंद्र के स्टूडियो मिलिशिया मास में और ट्रांसमीटर शंकराचार्य पहाड़ी पर होगा। इस टेलीविजन केंद्र के अंतर्गत सामूहिक रूप से कार्यक्रम देखने के लिये कुछ केंद्र बनाए जाएंगे। आशा है कि बंबई और श्रीनगर के टेलीविजन केंद्र इस वर्ष की समाप्ति



दूरदर्शन के 'कृषि दर्शन' कार्यक्रम के लिये आउटडोर शूटिंग का एक दृश्य (1 जून, 1972 अंक से)

से पहले ही तैयार हो जाएंगे।

मद्रास टेलीविजन केंद्र के दिसंबर 1973 तक बन जाने की आशा है। कलकत्ता (दुर्गापुर-आसनसोल क्षेत्र के लिये रिले व्यवस्था सहित) और लखनऊ (कानपुर को कार्यक्रम रिले करने की सुविधा सहित) केंद्र मार्च 1974 तक तैयार हो जाएंगे। टेलीविजन विकास की चौथी योजना के कार्यक्रम पूरे हो जाने पर देश के 4 करोड़ लोग टेलीविजन प्रसारणों का लाभ उठा सकेंगे। इनमें से आधे से अधिक लोग देहाती इलाकों के होंगे।

प्रशिक्षण केंद्र

टेलीविजन के विस्तार के साथ कार्यक्रमों के प्रसारण की व्यवस्था करने वाले कर्मचारियों और इंजीनियरों आदि की बड़ी संख्या में आवश्यकता होगी। इसकी पूर्ति के लिये टेलीविजन कर्मचारियों का प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया गया है, जो कई चरणों में लागू होगा। संयुक्त राष्ट्र विकास संस्था के सहयोग से पूना की फिल्म संस्था के एक विशेष हिस्से के रूप में टेलीविजन केंद्र की स्थापना की गई है। फिलहाल यह केंद्र दिल्ली में ही है और जैसे ही इसकी इमारत तैयार हो जाएगी इसे पूना भेज दिया जाएगा। पहला प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सितंबर 1971 से फरवरी 1972 तक चला। दूसरा पाठ्यक्रम इस वर्ष फरवरी में शुरू हुआ था और आज भी चल रहा है। इन पाठ्यक्रमों में व्यावहारिक प्रशिक्षण पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रशिक्षण केंद्र से निकलकर प्रशिक्षार्थी नये प्रशिक्षण केंद्रों का काम सफलतापूर्वक से चला सकें। देश में टेलीविजन के और अधिक विस्तार के साथ प्रशिक्षण केंद्र का भी विस्तार किया जाएगा। यदि आवश्यकता हुई तो कुछ खास प्रशिक्षणों के लिये अतिरिक्त केंद्र खोले जाएंगे।

क्षेत्रीय व्यवस्था

आकाशवाणी का अपने कार्यक्रमों का अनुभव यह बताता है कि भारत जैसे विशाल देश में भाषा और संस्कृति की इतनी अधिक विविधता है कि प्रचार के माध्यम के रूप में रेडियो अथवा टेलीविजन तभी प्रभावशाली हो सकते हैं जबकि इनके कार्यक्रमों को स्थानीय

और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया गया हो। टेलीविजन की देशव्यापी व्यवस्था का औचित्य तभी सिद्ध हो सकता है जब टेलीविजन देश के विकास प्रयासों में सहायक बनें। अतः पूरे देश के लिये टेलीविजन का जाल बिछाने के किसी भी कार्यक्रम में क्षेत्रीय केंद्रों को आधार बनाना होगा। भाषा, संस्कृति और कृषि तथा अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इन क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण करना होगा। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक क्षेत्र में जो टेलीविजन व्यवस्था होगी उसमें एक प्रमुख केंद्र होगा, जिसमें सब सुविधाओं से संपन्न स्टूडियो होगा और कार्यक्रम तैयार करने के लिये अन्य सब व्यवस्थाएं की जाएंगी। इसके अलावा पूरे क्षेत्र में प्रसारण सुलभ कराने के लिये अनेक रिले केंद्रों की स्थापना की जाएगी। इस प्रकार 20 क्षेत्रीय शृंखलाओं के निर्माण से पूरे देश में टेलीविजन प्रसारण पहुंचाने की व्यवस्था की जा सकती है।

उपग्रह टेलीविजन

देश में टेलीविजन विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि देश के लगभग 5 हजार गांवों में शिक्षात्मक टेलीविजन कार्यक्रमों को उपलब्ध कराने के लिये विकसित अंतरिक्ष विज्ञान का लाभ उठाया जाना चाहिए। यह जैसा कि स्पष्ट है आजमाईश के तौर पर ही किया जाएगा, जिसके लिये भारत और अमरीका को बीच 1969 में एक करार पर हस्ताक्षर हो चुके हैं। इस प्रयोग के अंतर्गत जो टेलीविजन सेट लगाए जाएंगे उन्हें पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे एक कृत्रिम उपग्रह से सीधे कार्यक्रम प्राप्त होंगे। यह कृत्रिम उपग्रह अमरीका का राष्ट्रीय विमान और अंतरिक्ष प्रशासन उपलब्ध कराएगा। आशा है कि यह कृत्रिम उपग्रह 1974 तक भारत को मिल जाएगा। यह कृत्रिम उपग्रह एटीएसएफ किस्म का एक नया उपग्रह होगा और अमरीका के राष्ट्रीय विमान और अंतरिक्ष प्रशासन द्वारा अंतरिक्ष में छोड़े जाने के बाद अफ्रीका महाद्वीप के ऊपर अपना स्थान ग्रहण करेगा। इसका 30 फुट लंबा एटेना मध्य भारत की दिशा में

रहेगा। कहा जाता है कि यह एटीएसएफ किस्म का उपग्रह आजकल इस्तेमाल होने वाले टेलीविजन उपग्रहों से कहीं अधिक अच्छा और उपयोगी सिद्ध होगा। आजकल प्रयुक्त एक टेलीविजन उपग्रह के बल पर ही संसार के लगभग चौथाई लोग मनुष्य को चंद्रमा पर पहली बार पांव रखते हुए देख सकेंगे। कहा जाता है कि एटीएसएफ किस्म का कृत्रिम उपग्रह ज़मीन पर स्थित केंद्रों की सहायता के बिना ही बहुत दूर-दूर के इलाकों में कार्यक्रमों का प्रसारण करने में सहायता हो सकता है।

स्कूलों के लिये शिक्षा कार्यक्रम प्रसारित करने के अलावा नये उपग्रह टेलीविजन सेट बनाने की प्रगति की है। वस्तुतः टेलीविजन सेट बनाने की प्रगति इतनी प्रभावशाली है कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त इलेक्ट्रॉनिकी आयोग ने हाल में यह निश्चय किया है कि टेलीविजन सेट बनाने के और लाइसेंस देने का निर्णय इस आधार पर होना चाहिए कि अब देश में टेलीविजन सेट बनाने के लिये विदेशी सहयोग अथवा तकनीकी जानकारी की कोई आवश्यकता नहीं है। आयोग ने जो अन्य निर्देश दिए हैं, उनमें इनका विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है :

1. विदेशों में जिन नामों से टेलीविजन बनाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और जिन कंपनियों में विदेशी हिस्सा पूँजी है, उन्हें भी टेलीविजन सेट बनाने का लाइसेंस नहीं दिया जाना चाहिए।
2. टेलीविजन सेट बनाने की कुल निर्धारित क्षमता के 50 प्रतिशत या इससे अधिक की मंजूरी टेलीविजन सेट बनाने वाले छोटे कारखानों को ही दी जानी चाहिए।
3. योग्य इंजीनियरों अथवा वैज्ञानिकों और छोटे कारखानों के संघों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों, जिनमें केंद्र और राज्यों के तथा उद्योग विकास निगमों से सहायता प्राप्त कारखाने भी शामिल हैं, उपयुक्त संख्या में टेलीविजन सेट बनाने की अनुमति दी जानी चाहिए। □

(1 जून, 1972 अंक से)

ऊर्जा चुनौती का मुकाबला कैरो करें

○ जगजीतसिंह

इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ ही वर्षों में कोयले, गैस और तेल के भंडार दुनिया में खत्म हो जाएंगे। हमारी औद्योगिक प्रगति इन्हीं पर निर्भर है अगर आदमी में कुछ विवेक है तो उसे ऊर्जा के इन स्रोतों का उपयोग करने के लिये अंतरराष्ट्रीय स्तर की योजना बनानी पड़ेगी

दुनिया में पेट्रोलियमजन्य पदार्थों के भाव संकट की ओर अचानक आकृष्ट हुआ है, हालांकि इसकी आशंका बीस साल पहले से ही हो रही थी। जैसे-जैसे मानव सभ्यता की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ऊर्जा की उसे अधिक आवश्यकता होने लगती है। जिस गति से पिछले 100 वर्षों में इसका उपयोग हुआ है, उस अनुपात से यह स्पष्ट आभास मिल जाता है कि कोयला, तेल तथा गैस, जो हमारी भूमि के गर्भ से पैदा होने वाले मुख्य ईंधन रहे हैं, वे अब अधिक समय तक हमारे लिये उपलब्ध नहीं रहेंगे। यही कारण है कि अब संपूर्ण विश्व के सामने ऊर्जा का संकट आ गया है।

पी. पुतनम ने अपनी पुस्तक एनर्जी इन द प्यूचर में, जो लगभग 20 वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी, इस बात का अनुमान लगाया था कि मानव को विभिन्न कालों में कुल कितनी ऊर्जा की आवश्यकता हुई थी। उन्होंने अपने इस अनुमान के लिये एक 'क्यू' नामक इकाई को चुना। इस एक इकाई के अंतर्गत आनेवाली ऊर्जा क्षमता 38 लाख टन कोयला जलाने से प्राप्त होगी। यदि हम ईसा सन् से शुरू होने वाले 1850 वर्षों के समय को लें तो इस अवधि में कुल मिलाकर नौ 'क्यू' यूनिट ऊर्जा ही इस्तेमाल हो पाई थी। इसप्रकार एक शताब्दी में आधे 'क्यू' का औसत आता है। लेकिन यदि हम 1950 में समाप्त होने वाली शताब्दी

के ऊर्जा उपयोग पर दृष्टिपात करें तो हमें पता चलेगा कि इस अवधि में पांच 'क्यू' तक का उपयोग कर लिया गया। अभी हाल के आंकड़ों से पता चला है कि यह मात्रा अब दस 'क्यू' तक जा पहुंची है। ऐसी बात भी नज़र नहीं आ कि यह तेज़ी से होने वाला उपयोग यहीं रुक जाएगा, बल्कि इसमें और अधिक तेज़ी आने की संभावना निरंतर बढ़ती चली जा रही है।

यदि संपूर्ण विश्व के सामने ऊर्जा का ऐसा संकट है तो भारत के लिये तो यह समस्या कहीं ज्यादा विकट है। हमारे देश में जो कोयला भंडार है, उसके उपयोग से हम पांच 'क्यू' से थोड़ी अधिक ऊर्जा ही उपलब्ध कर सकते हैं, और यदि तेल और प्राकृतिक गैस आयोग, बंबई के अनुसार, स्थिति ऐसी ही रही जैसी है, तब कुल मिला कर आधा 'क्यू' जल शक्ति स्रोत से तथा आधा 'क्यू' यूनिट हमें तेल शक्ति से और उपलब्ध हो सकता है। इस प्रकार अब यह बात हमें स्पष्ट हो गई है कि यदि अमरीका में प्रतिव्यक्ति उपयोग में आने वाली ऊर्जा के हिसाब से देखा जाए तब हमारे ये सभी स्रोत कुछ ही दशाब्दियों तक चल सकते हैं।

विश्व में भूमि से प्राप्त ईंधन के संपूर्ण स्रोत अनेक शताब्दियों तक नहीं बने रह सकते हैं। विकासशील देशों में तथा विकसित देशों में इस समय जिस अनुपात से ऊर्जा का उपयोग किया जा रहा है, यदि यही गति बनी रही तब भी अधिक-से-अधिक दो शताब्दियों तक ही हमारे

ये स्रोत बने रह सकते हैं। इससे अधिक की आशा रखना उचित नहीं होगा। वास्तव में यदि हम थोड़े विवेक से काम लें तो अच्छा तो यह होगा कि भूमिगत ईंधन के भंडारों के उपयोग के बारे में दुनिया के सभी देश मिलकर योजना बनाए। लेकिन अफसोस इस बात का है कि आज के इस विश्व में यह आशा नहीं की जा सकती कि इस प्रकार से काम लिया जाएगा। ऐसी स्थिति में प्रत्येक राष्ट्र को अपनी परिस्थितियों के अनुसार ऊर्जा संबंधी नीति बनानी होगी।

भविष्य के लिये ऊर्जा नीति का निर्धारण करते समय इस बात को ध्यान में रखना बड़ा ज़रूरी हो गया है कि हमारे देश में तेल भंडार अत्यधिक सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। यदि हमें आज से 10 वर्ष पूर्व भी इस बात का आभास मिल जाता कि आने वाले समय में स्थिति ऐसी आएगी कि तेल को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा, तब हम अपनी ऊर्जा की आवश्यकता कोयला, परमाणु तथा पानी (बिजली) से ही पूरी करने की दिशा में संतुष्ट होते और अपने सीमित तेल भंडारों का केवल ऐसे कार्यों में उपयोग करते, जिनमें उनके बिना काम ही नहीं चल सकता, जैसे विमानों का उड़ाना। लेकिन इस प्रकार की घटनाओं का पूर्वाभास बहुत कम ही हो पाता है। इसलिये हमारे देश का रेल यातायात का अधिकांश भाग तथा अधिकांश औद्योगिक उत्पादन, जो कोयला शक्ति से चल सकता था और चलना भी था,

तेल पर आश्रित होता गया।

डॉ. भाभा का स्वप्न

डॉ. भाभा को यह आशा थी कि 1968 में तारापुर में प्रथम परमाणु बिजली घर स्थापित कर लिया जाएगा। उन्हें इस बात का भी भरोसा था कि अणु ईंधन की इस विशेषता का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकेगा कि वे अपनी ही किस्म का या अन्य किस्म का नया ईंधन तैयार करते हैं। उन्होंने अपनी योजना के अंतर्गत तीन किस्म के 'पावर-रिएक्टर' बनाने का निर्णय लिया था, जो बिजली पैदा करने के साथ-साथ अन्य रिएक्टरों के लिये ईंधन भी पैदा करते। कार्यक्रम यह भी कि पहले चरण में प्राकृतिक यूरेनियम को साफ करके ईंधन भी पैदा करते। कार्यक्रम यह था कि पहले चरण में प्राकृतिक यूरेनियम को साफ करके ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाए, जो बिजली पैदा करने के साथ-साथ दूसरे चरण के लिये प्लूटोनियम नाम का ईंधन भी दे।

दूसरी किस्म के रिएक्टर के लिये प्लूटोनियम का गौण ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाना था। लेकिन इसके आसपास थोरियम जमा करके थोरियम को एक नये परमाणु ईंधन (यूरेनियम 233) में परिणत कर दिया जाना था। क्रमशः यूरेनियम 233 का तीसरी किस्म के रिएक्टर में प्रयोग किया जाना था, जिसमें फिर थोरियम इस्तेमाल किया जाना था ताकि उसे यूरेनियम 233 में बदला जा सके। इस क्रम में अंत वाली प्रक्रिया की विशेषता यह है कि वह जितना यूरेनियम 233 स्वयं उपयोग में लाएंगी, उससे अधिक तैयार करेगी। इसलिये इस रिएक्टर का यह बड़ा लाभ है कि इसमें थोरियम इस्तेमाल करके हम इसकी ज़रूरत का पूरा ईंधन इसी से प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये यह आशा हो गई थी कि इन तीनों किस्मों के रिएक्टरों के ठीक उपयोग से हम उससे 30 गुना ऊर्जा प्राप्त कर सकेंगे, जितनी कि हमें कोयले आदि से मिलने की आशा है।

लेकिन यह बात बड़े दुर्भाग्य की रही कि अणु शक्ति से अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त करने की ये सभी आशाएं पूरी नहीं हो पाईं। विशेष रूप से ब्रीडर रिएक्टर द्वारा थोरियम से बिजली पैदा करने के रास्ते में अभी कई तकनीकी कठिनाइयां हैं। परिणामस्वरूप अणुशक्ति से ऊर्जा प्राप्त

करना अभी यूरेनियम पर निर्भर है, लेकिन यूरेनियम बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध है। यूरेनियम ऑक्साइड (यू-308) का प्रमाणित भंडार हमारे पास केवल दो हजार टन है। इसलिये यह स्पष्ट है कि परमाणु शक्ति से बिजली पैदा करने के कार्यक्रम में हमें डॉक्टर भाभा की योजना के अनुसार थोरियम पर आधारित ब्रीडर रिएक्टर पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना होगा।

ऐसी स्थिति में जब डॉ. भाभा की आशाओं के अनुरूप अपेक्षित मात्रा में हमें अणु शक्ति उपलब्ध नहीं हो रही है और अरब देशों द्वारा तेल की कीमतों में अंधाधुंध वृद्धि करने से तेल भी समुचित मात्रा में हमारे लिये उपलब्ध नहीं है, तब ऐसी स्थिति में यह सुझाव देना उचित नहीं होगा कि हम फिर कोयले पर वापस आएं और वह भी उस स्थिति में जब कोयला हमें औद्योगिक इकाइयों तथा रेल यातायात के लिये भी उपलब्ध नहीं हो रहा है। आशा है वर्तमान संकट के बावजूद इन दोनों क्षेत्रों में सामान्य कार्य शीघ्र ही शुरू हो जाएगा। ऐसा होने पर हमारे लिये यह ज़रूरी हो जाएगा कि उद्योगों के लिये ऊर्जा कोयले की बजाय तेल से प्राप्त करने की जो प्रवृत्ति पिछले दस साल से पाई जा रही है उसे बदल दें।

कोयले का महत्व

देखा जाए तो हम कोयले से भी तेल प्राप्त कर सकते हैं, जैसा जर्मनी ने द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व किया था। उन्होंने कोयले को कार्बन मोनोक्साइड (सीओ) तथा हाइड्रोजेन (एच-2) में बदलकर अत्यधिक सुवासित कोयले जैसे पदार्थ को 'पैराफीन' के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार हाइड्रोकार्बन्स, अल्कोहल तथा ऊर्चे स्तर का आक्टेन (अष्टमांशक) मोटर ईंधन जैसे कार्बन कंपाउंड को तैयार करना संभव हो सकता है। इसके लिये समुचित उत्प्रेरणा की तथा सभी अनुकूल संचालन पद्धति की आवश्यकता है। कोयले पर किए गए लंबी अवधि के इस मौलिक अनुसंधान का एकमात्र यह निष्कर्ष निकालना था कि कोयले से तेल प्राप्त करना मुख्य रूप से कम खर्चाला होता है। यदि हमें समुचित मात्रा में ऊर्जा तथा अपेक्षित संयंत्र सुलभ हो जाएं तब हम भी इस दिशा में काफी सफल हो सकते हैं।

ऐसी बात नहीं है कि कोयले से केवल रसायन और तेल ही प्राप्त किया जा सकता है, बल्कि ताप बिजली के लिये भी इसे अच्छे और सस्ते ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस समय हमें चाहिए कि हम कोयले से रसायन प्राप्त करने तथा ताप तैयार करने के लिये सस्ते तरीके से ईंधन प्राप्त करने की दिशा में अपनी वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी जुटाएं।

इस बात में शायद ही किसी को संदेह हो कि इस प्रकार के विशाल क्षेत्रीय साधनों का उपयोग करने के लिये अत्यधिक सूक्ष्म सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिये इतने बड़े स्तर पर अनुमानों एवं सूक्ष्म परीक्षणों का अध्ययन करके उनसे ऊर्जा प्राप्त करने में केवल वे बड़े राष्ट्र ही सक्षम हो सकते हैं जिनके पास काफी मात्रा में सभी साधन उपलब्ध हों। हम यह देखते चले आए हैं कि प्रचुर मात्रा में सभी साधन संपन्न राष्ट्रों ने अनेक वर्षों तक मौलिक अनुसंधान किए हैं तथा अनेक विकास संबंधी अनुसंधान किए हैं तब कहीं जाकर वे इनमें से किसी एक प्राकृतिक साधन से लाभ प्राप्त कर पाए हैं।

इस समय हमारे सामने 'न्यूक्लीयर-फ्यूजन' का प्रश्न उपस्थित है। 'न्यूक्लीयर-फ्यूजन' केवल एक दशाब्दी पूर्व तक केवल अनुमानित था, लेकिन अब यह उतना ही दूर है, जितना कि कभी पहले था। यदि हम चाहते हैं कि 'न्यूक्लीयर-फ्यूजन' से मानव जाति का कल्याण संभव हो सके तो हमें इसके लिये अनेक वर्षों तक लगातार प्रयत्न करना होगा। हमारे वैज्ञानिकों को इसकी उपलब्धि के लिये निरंतर अपने अनुसंधानों को जारी रखना होगा। ऐसा करके ही हमारे हृदय में इस बात का विश्वास जग सकता है कि 'फ्यूजन रिएक्टर' हमारे देश के लोगों के लिये एक प्रकाशपुंज लाएगा। इस मामले में मैं तो यही कहना चाहूँगा कि जिस स्थिति में हम रह रहे हैं, उसमें हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि ऊर्जा अनुसंधान के क्षेत्र में लगे लोगों की घोषणाओं को सुनने के पहले हम अपने कोयला साधन का ऊर्जा प्राप्त करने के लिये भलीभांति उपयोग करें। □

(लेखक वैज्ञानिक विषयों के प्रख्यात निबंधकार तथा कलिंग पुस्कार विजेता हैं; 7 फरवरी, 1974 अंक से)

बीस सूत्री कार्यक्रम और ग्रामीण विकास

○ शंकरदयाल सिंह

गाँधी जी ने कहा था कि वास्तविक भारत गांवों में है। सच कहा जाए तो आजादी के बाद पहली बार प्रधानमंत्री द्वारा घोषित बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रमों के बाद भारत के देहांतों का स्वर्ण युग प्रारंभ हुआ है। आज तक वास्तविक स्थिति यह थी कि भारत के गांव शहरों की चकाचौंध के आगे सिसकियां भर रहे थे। कल-कारखानों की सीटियां बजती थीं और ग्रामीण मज़दूरों की आहें भी फूटती थीं, कारण औद्योगिक मज़दूरों और खेतिहर मज़दूरों की स्थिति, मज़दूरी और सुविधाओं में आसमान-ज़मीन का अंतर था। बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के बाद ऐसे दबे हुए और उपेक्षित वर्ग ने पाया कि सरकार ने उन्हें शहरों के बाबुओं से भिन्न सर्वोपरि स्थान दिया है।

बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रमों में निम्नलिखित आठ सूत्र ऐसे हैं जिनका प्रत्यक्ष संबंध ग्रामीण जनता, खेतिहर श्रमिक या ग्राम विकास से है :

- खेती योग्य भूमि की सीमा निर्धारित करने वाले कानूनों को अमल में लाया जाएगा।
- भूमिहीनों और ग्रामीब जनता को मकान बनाने के लिये भूमि प्रदान की जाएगी।
- ठेका मज़दूर प्रथा समाप्त की जाएगी। साथ ही बेगार को अवैध घोषित किया जाएगा।
- ग्रामीण जनता का ऋण माफ कर दिया जाएगा।
- खेतों में मज़दूरी करके जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों को न्यूनतम वेतन प्रदान करने की व्यवस्था की जाएगी और इससे संबंधित कानून पर सख्ती से अमल किया जाएगा।
- 7.50 लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई का प्रबंध किया जाएगा और भूमिगत जल को उपयोग में लाया जाएगा।
- विद्युत के उत्पादन में वृद्धि की जाएगी।
- हथकरघा उद्योग के विकास के लिये नयी योजना बनाई जाएगी, जिससे बुनकर को धागा प्राप्त करने में सहायता होगी। मोटे कपड़े की किस्म में सुधार किया जाएगा। पहली जुलाई, 1975 को प्रधानमंत्री ने घोषणा

करते हुए कहा था: जादुई हल और नाटकीय परिणामों की आशा न करें। केवल एक ही जादू है जो ग्रामीबों को दूर कर सकता है और वह है स्पष्ट दूरदृष्टि के साथ-साथ कड़ा परिश्रम, दृढ़इच्छा और कठोरतम अनुशासन। हममें से प्रत्येक को अपने-अपने स्थान पर केवल अपने लिये ही नहीं, बल्कि अपने साथी नागरिकों के लिये और अधिक काम करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए। राज्य की संपत्ति का अधिक सम्मान किया जाना चाहिए। इसे नष्ट करने पर दंडात्मक जुमने किए जाएं। सभी तरफ हमें और अधिक संयम बरतने की आवश्यकता है। जो खपत स्पष्ट रूप से कम ही जा सकती है, उसे कम करने का सरकार का कर्तव्य है परंतु नागरिकों का भी उत्तरदायित्व है। राष्ट्र के जीवन को बेहतर बनाने के लिये केवल यही रास्ता है।"

वास्तव में बीस सूत्री कार्यक्रम का लक्ष्य ही है कि गांवों का विकास हो जो पिछले वर्षों से अवरुद्ध था। पहली बार यह देखने में आया है कि शहरों और गांवों में संतुलन स्थापित करने की चेष्टा की गई है। फल हमारे सामने है। बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के बाद देश में नयी अर्थव्यवस्था का युग प्रारंभ हो गया जिससे चीजों की कीमतें या तो स्थिर हो गई या गिरने लगीं। जो चीजें शादी, त्योहार और पर्व आदि पर अक्सर गायब हो जाती थीं या छिपा दी जाती थीं और मनमाने मूल्यों पर जिनका व्यापार चलता था, वे सब वस्तुएं अब सुलभ हो गई हैं। जब से मैंने होश संभाला, यह देखता रहा हूं कि डालडा, चीनी, तेल, कपड़ा, सूजी, मैदा आदि की अधिक मांग त्योहारों या शादियों के अवसरों पर हुआ करती। उन दिनों उनके दाम सहसा ड्योढ़े-दुगुने कर दिए जाते थे और अप्राकृतिक रूप से उनका अभाव पैदा कर दिया जाता था। यही हाल अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का भी था। बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के बाद पहली बार हम यह देखते हैं कि सभी वस्तुएं आसानी से उपलब्ध हो रही हैं। देश

वही हैं, बेचने वाले वही हैं, खरीदने वाले वही है, लेकिन वातावरण का इतना प्रभाव व्यवस्था पर पड़ता है, इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

बीस सूत्री कार्यक्रम को ग्रामीण जनता तक पहुंचाने के लिये यह आवश्यक है कि उनके बीच में इसका सही ढंग से प्रचार हो और उन्हें सही-सही जानकारी दी जा सके। इन्हीं उद्देश्यों को सामने रखकर बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण क्षेत्र चतरा (हजारीबाग) में 20 मार्च, 1976 को मैंने "20 सूत्री कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास" पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया। गांवों में रहने वाले, काम करने वाले और उनकी समस्याओं से अवगत कार्यकर्ताओं और व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया और ग्रामीण समस्याओं से संबंधित सभी विषयों पर अधिकारी विद्वानों ने अपने भाषणों द्वारा उस पिछड़े क्षेत्र में नये वातावरण की सृष्टि की।

विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि आर्थिक रूप से बीमार इस देश के लिये अगर किसी प्रकार की दवा की आवश्यकता थी तो बीस सूत्री कार्यक्रम के रूप में वह दी गई है। देश को आशा तथा विश्वास रखना चाहिए कि वह हर बात में राजनीति की बू-बास को न रखकर आम आदमी की समस्याओं को समझे। यह आम समस्याएं हैं - रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा की सुविधा, बीमारी में इलाज की सुविधा और विकास के समान अवसर। बीस सूत्री कार्यक्रम आजादी के 27 वर्षों के बाद प्रगति की ऐसी बीस सीढ़ियां हैं जिन पर कदम रखते हुए आम आदमी यह अहसास कर सकेगा कि देश की समृद्धि में वह भी हिस्सेदार है और यह भारत केवल अमीरों का ही नहीं ग्रामीबों का भी है, केवल शहरों का ही नहीं देहांतों का भी है और इस देश का नेतृत्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के रूप में एक ऐसे सशक्त व्यक्तित्व के हाथ में है जो दुनिया की बड़ी से बड़ी चुनौती का सामना बिना किसी घबराहट के कर सकती हैं।

(लेखक भारत के राष्ट्रपति थे। लेख के प्रकाशन के समय वह संसद सदस्य थे; 8 जून, 1976 अंक से)

ग्रामीण बैंक और कृषि विकास

○ देवीदत्त पंत

कृषक की मुख्य समस्या उसकी साधन-कर नहीं सकता या फिर इस प्रकार कर्ज़ लेता है कि जो न तो उचित कामों के लिये होता है और न उचित व्याज पर। इस कारण उसकी ऋणग्रस्तता बनी रहती है। इसको ध्यान में रखते हुए विगत 2 अक्टूबर को उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान तथा पश्चिम बंगाल में ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई है।

ग्रामीण बैंक क्षेत्रीय आधार पर काम करेंगे - एक या दो जिलों के लिये एक बैंक होगा। इन बैंकों से मुख्य रूप से इन वर्गों के लोग लाभ उठा सकेंगे - छोटे या दरमियानी किसान, कृषि श्रमिक, ग्रामीण कारीगर, छोटे उद्योगी या वे लोग जो अन्य उत्पादक कार्यों में लगे हैं।

ग्रामीण बैंकों की स्थापना के लिये उन स्थानों को प्राथमिकता दी जाएगी जहां विकास की पर्याप्त संभावनाएं हों, अपेक्षाकृत वह क्षेत्र कम विकसित हो तथा जहां सहकारी बैंकों की सेवाएं अपर्याप्त हों। ये बैंक निर्धारित सीमाओं के भीतर सभी आवश्यक ऋण उपलब्ध कराएंगे। इनकी व्याज दर राज्य में स्थित प्राथमिक सहकारी समितियों की व्याज दर से अधिक नहीं होगी।

कृषि विकास के लिये प्रभावकारी साधन सिद्ध होने के लिये इन बैंकों को अपनी कार्य प्रणाली के अंतर्गत ग्रामीण भारत के क्षेत्रीय तथा सांस्कृतिक व्यवहार से तालमेल बैठाना होगा। कर्मचारियों की नियुक्ति, कार्यप्रणाली, ऋण देने और जमा स्वीकार करने में कृषि विकास के लिये इन बैंकों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

इन बैंकों में कर्मचारी या सलाहकार मंडल की नियुक्ति के समय यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि जिस इलाके या क्षेत्र के बारे में विचार किया जा रहा है उसकी आर्थिक

स्थिति, कृषि पैदावार, लोगों का जीवनस्तर, प्राकृतिक संपदा की कमी या प्रचुरता आदि की जानकारी संबंधित व्यक्तियों को है या नहीं। इस नियुक्ति में भूमिपुत्रों को प्राथमिकता मिलने से यह लाभ होगा कि एक तो ग्रामीण प्रतिभा का शहरों की ओर पलायन रुक सकेगा, दूसरे ग्रामों में काम मिलने से लोगों का खेतों से नजदीक का संपर्क बना रहेगा। इससे उनमें कृषि के प्रति लगाव और गहरा होता जाएगा।

इन कर्मचारियों के लिये प्रशिक्षण केंद्र भी किसी ग्रामीण इलाके में ही होने चाहिए ताकि वे ग्रामीण परिस्थिति से अवगत हो सकें। फसल, अनाजों की विभिन्न किसी, उनकी कीमत आदि की जानकारी होने से वे यह समझ सकेंगे कि अपने कार्यकाल में उन्हें किस बात पर कर्ज़ देने में उदारता बरतनी है और किस बात को निरुत्साहित करना है। आज तक किसान 52 प्रतिशत ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिये लेता रहा है और ऋण पर व्याज 75 प्रतिशत या इससे भी अधिक देता रहा है।

ग्रामीण बैंकों का प्रशासन किसी सर्वाधिकार प्राप्त स्वतंत्र प्राधिकरण को सौंपा जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप जिस क्षेत्रीय बैंक में जो भी प्रशासनिक अधिकारी होगा, वह क्षेत्रीय आर्थिक परिस्थिति का विशेषज्ञ होगा। अभी तक हमारे बैंकों में कामकाज अंग्रेजी में होता है। किसान को अंग्रेजी का ज्ञान नहीं, अतः प्राथमिकता क्षेत्रीय भाषा में काम करने को दी जानी चाहिए। इसके साथ ही अन्य रुकावें भी दूर की जानी चाहिए।

किसी भी बैंकिंग संस्थान का काम लेन-देन पर केंद्रित रहता है। ग्रामीण बैंक उचित व्याज दर पर ऋण देंगे। लेकिन उन्हें यह भी देखना होगा कि ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों में किया जा रहा है या नहीं।

हमारे देश में कृषि में पर्याप्त छिपी बेरोज़गारी है। इन बैंकों की इस छिपी बेरोज़गारी से निबटने

में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। चूंकि गांवों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की पर्याप्त गुंजाइश है, अतः इनके अधिकारी यह सुनिश्चित करें कि किस परिवार में आवश्यकता से अधिक लोग कृषि में चिपके हैं। उन्हें कृषि के लिये अंधाधुंध ऋण न दें, प्रत्युत ऐसे लोगों को कुटीर उद्योगों के विकास के लिये प्रेरित किया जाना चाहिए। इसके लिये उत्साहित करने के लिये ऋण दिया जाना चाहिए। इससे एक तो रोज़गार बढ़ने से उत्पादन बढ़ेगा और कुछ लोगों के कृषि से उद्योगों की तरफ जाने से कृषि में प्रतिव्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होगी।

कृषि विकास हेतु इन बैंकों को किसान की ऋण लेने की परंपरागत आदत में भी सुधार करना है। आज तक किसान एकमुश्त ऋण लेता रहा और उसे उसी प्रकार खर्च भी कर देता है। अतः अब यह देखा जाना चाहिए कि जब जितने ऋण की आवश्यकता हो उस समय उतना ही रूपया दिया जाना चाहिए।

इन बैंकों को एक तो ऋण को वापस लेना है और दूसरे ग्रामीण लोगों की बचत को जमा के रूप में स्वीकार भी करना है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूर्णतः मुद्रा अर्थव्यवस्था न होकर वस्तु अर्थव्यवस्था भी है। अतः जमा स्वीकार करते समय तथा ऋण वापस लेते समय इस तथ्य को नहीं भुलाया जाना चाहिए। यानी यदि ग्रामीणजन मुद्रा के रूप में अपने कर्ज़ की वापसी नहीं कर सकता तो उसके द्वारा उत्पादित अनाज को ही स्वीकार किया जाना चाहिए। यही बात उसकी बचत जमा करते समय भी हो सकती है। इससे कृषि उपज के विपणन में बिचौलियों आदि की समस्या भी सुलझ जाएगी। इस संबंध में भारतीय खाद्य निगम तथा भारतीय बीज निगम से उचित तालमेल बैठाया जाना चाहिए। □

(7 अगस्त, 1976 अंक से)

संपूर्ण क्रांति की परिकल्पना

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विचार

अगर कोई प्रतिनिधि या प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती, भ्रष्टाचारी, दमनकारी और अक्षम हो जाती है, तब मतदाताओं को, यानी जनता को, यह अधिकार है कि वह उनके इस्तीफे की मांग करे – भले ही उनका कार्यकाल पूरा न हुआ हो। जनता को जितनी जल्दी हो सके यह अधिकार दिया जाए कि वह अपने नये प्रतिनिधियों का चुनाव कर सके

पि

छले कुछ महीनों से मेरे मित्रगण मुझ से आग्रह करते रहे हैं कि मैं देश के बारे में आपसे कुछ कहूँ। अपनी अस्वस्थता के कारण देश की वर्तमान स्थिति से मेरा संपर्क नहीं रह सका इसलिये मैं कुछ कहने से हिचकिचा रहा था। मैं नहीं मानता कि जनता के विचार व्यक्त कर सकने का कोई अधिकार मेरे पास है, किंतु मैं अपने विचार यहां एक साधारण नागरिक के नाते व्यक्त कर रहा हूँ।

सबसे पहली बात जो मैं कहना चाहूँगा और जिस पर ज़ोर देना चाहूँगा, वह यह है कि पिछले आम चुनाव के नतीजे छात्रों और जनता के उस आंदोलन के परिणाम थे जो गुजरात से शुरू होकर बिहार में फैला और जिसके संदेश से सारा देश गूँज उठा। इस संदेश का सार यह था कि यह आवश्यक नहीं है कि जनता का चुना हुआ कोई प्रतिनिधि अपने कार्यकाल की अवधि पूरी होने तक अपने पद पर बना ही रहे। आंदोलन के दौरान, जिस सिद्धांत पर ज़ोर दिया गया, वह यही था कि अगर कोई प्रतिनिधि या प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती, भ्रष्टाचारी, दमनकारी और अक्षम हो जाती है तब मतदाताओं को, यानी जनता को, यह अधिकार

है कि वह उनके इस्तीफे की मांग करे – भले ही उनका कार्यकाल पूरा न हुआ हो। इस सिद्धांत का एक अच्छा उदाहरण संयुक्त राष्ट्र अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन का है।

यह सही है कि हमारे संविधान में चुने हुए प्रतिनिधि को वापस बुला लेने का अधिकार शामिल नहीं किया गया है, लेकिन प्रजातंत्र में जनता के पास अलिखित अधिकार भी होते हैं जिन्हें वह आवश्यकता के अनुसार उपयोग में ला सकती है।

यह सब कहने का मतलब यह नहीं कि थोड़े से असंतुष्ट लोगों को यह हक़ है कि वे जब चाहें, तब निर्वाचित प्रतिनिधि या सरकार को सत्ता त्यागने के लिये मज़बूर कर दें, लेकिन इसका यह मतलब ज़रूर है कि जब कभी भी जनता का बहुमत संदेह से परे यह विश्वास करने लगे कि निर्वाचित प्रतिनिधि या सरकार अक्षमता, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजेवाद की शिकार हो गई है, तब वे इस्तीफे की मांग कर सकें। जनता की आवाज़ का आदर किया ही जाना चाहिए। इस बात की संभावना है कि सत्तारूढ़ दल भी या संबंधित प्रतिनिधि अपने समर्थकों को इकट्ठा करने की कोशिश करेंगे,

किंतु अगर उनके खिलाफ उठी जनता की आवाज़ में सच्चाई है तो प्रजातंत्र की नैतिकता और व्यवहार के अनुरूप यह आवश्यक है कि बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक पर तरजीह दी जाए। संविधान विशेषज्ञों को यह स्थिति अराजकता की लग सकती है, लेकिन यह बात यद रखनी चाहिए कि संसार के लगभग सभी प्रमुख संविधान क्रांतिकारी आंदोलनों के बाद ही बनाए गए थे।

पीछे मुड़कर देखने और इस बात पर गौर करने का यह अच्छा अवसर है कि किस तरह से गुजरात में भ्रष्टाचार के खिलाफ शुरू हुआ आंदोलन पूरे भारत में फैल गया। इस जन आंदोलन का खास मुद्दा राजनैतिक और सरकारी भ्रष्टाचार था। इसलिये इस आंदोलन के तहत जो लोग सत्ता में आए हैं, उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे राजनैतिक और सरकारी क्षेत्रों से भ्रष्टाचार खत्म करने के लिये श्रेष्ठ और कारगर कदम उठाएं। मेरी यह राय है कि उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की तरह एक संस्था, केंद्र और राज्यों में बनाई जाए जिसके पास कानूनी सत्ता और अधिकार हो। इस बारे में बात करते समय स्वाभाविक है कि स्वीडन का ख्याल आए,

लेकिन हमारे देश की परिस्थितियों में एक अधिक व्यापक संस्था की ज़रूरत महसूस होती है। उदाहरण के लिये केंद्र में ऐसा एक निकाय हो सकता है जिसका नाम लोकपाल हो - जिसमें पांच से अधिक सदस्य नहीं हों, और इस संस्था को यह अधिकार हो कि वह अपनी तरफ से किसी जांच-पड़ताल की शुरुआत कर सके या किसी नागरिक, सरकारी या गैरसरकारी निकाय की शिकायत के आधार पर छानबीन कर सके। कुछ कानून विशेषज्ञों को इस निकाय की रूपरेखा बनाने की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है और इस बारे में एक धारा संविधान में शामिल की जा सकती है। सरकार से सबसे पहले मेरी यही अपेक्षा है।

छात्रों और जनता के आंदोलन में जो मुख्य बात उठाई गई थी, वह यह थी कि प्रशासनिक और चुनाव संबंधी सुधार किए जाएं जिससे कि चुनाव सस्ते हों, सही तौर पर प्रतिनिधित्व संभव हो और प्रशासन जनता के निकट आए। एक अन्य महत्वपूर्ण मांग शिक्षा संबंधी सुधारों के बारे में थी कि शिक्षा प्रणाली को इस तरह गठित किया जाए कि उसका सीधा संबंध देश की समस्याओं से हो और शिक्षित लोग इन समस्याओं को सुलझा सकें। यह इच्छा भी व्यक्त की गई थी कि न्यूनतम शिक्षा सबको मिल सके और अज्ञान तथा निरक्षरता का समूल नाश किया जा सके। 6 मार्च, 1975 को लोकसभा और राज्यसभा के अध्यक्षों के सामने मैंने जनता का जो मांगपत्र रखा था उसका यहां जिक्र कर देना बेहतर होगा जिससे कि वे मानदंड स्पष्ट हो जाएं जिनके आधार पर वर्तमान सरकार के कार्य और कार्यप्रणाली को परखा जा सके।

केंद्र के अलावा राज्यों में कांग्रेस सरकारें सत्ता में हैं। यह आवश्यक है कि जनता को जितनी जल्दी हो सके, यह अधिकार दिया जाए कि वह अपने नये प्रतिनिधियों का चुनाव कर सके, ताकि ये प्रतिनिधि अपने



(स्व० लोकनायक जयप्रकाश नारायण)

चुनाव-घोषणापत्रों के अलावा जनता की मांगों के लिये प्रतिबद्ध हों।

आपको यह याद होगा कि जनता के आंदोलन के अंतिम लक्ष्य की परिभाषा मैंने संपूर्ण क्रांति कह कर की थी। संपूर्ण क्रांति की मेरी कल्पना का कुछ लोगों ने मर्खौल उड़ाया और कुछ ने यह कह कर अवहेलना की कि संपूर्ण क्रांति एक अव्यावहारिक आदमी का सपना है। इसलिये मैं एक बार फिर से संपूर्ण क्रांति के विचार को दोहराना चाहता हूं और अपना विश्वास उसमें व्यक्त करता हूं कि स्वास्थ्य लाभ होते ही मैं अपने-आपको इस कार्य के लिये अर्पित कर दूँगा। हमारी विरासत में कुछ चीजें बहुत मूल्यवान और महान हैं - उनकी हमें रक्षा करनी है और उन्हें मज़बूत बनाना है। लेकिन साथ ही हमने उत्तराधिकार में बहुत से अंधविश्वास, गलत मूल्य और अन्यायपूर्ण मानवीय और सामाजिक संबंध भी पाए हैं। जातिवाद इसका एक उदाहरण है। भगवान बुद्ध के समय से और हो सकता है उनसे पहले से भी, इस बात की कोशिश की गई थी कि ऊंच-नीच पर आधारित जातिप्रथा को खत्म किया जाए, लेकिन अभी तक यह प्रथा पूरे

देश में फैली हुई है। अब समय आ गया है कि हम हिंदू समाज के इस कलंक को मिटा दें और भाईचारे एवं समानता को अपना आदर्श बनाएं और इसे अपने जीवन में उतारें। इसी तरह शादी, जन्म और मृत्यु से जुड़े हुए भी कुछ और बुरे रिवाज हैं। संपूर्ण क्रांति के द्वारा इन्हें भी खत्म किया जाना चाहिए।

अब मैं जीवन के अधिक आधुनिक पहलुओं की बात करूँगा - जैसे कि शिक्षा। समय आ गया है कि कोठारी कमीशनों तथा दूसरे सारे शिक्षा कमीशनों के आमूल परिवर्तन के सुझाव को लागू किया जाए। इस क्षेत्र में हम चीन के उदाहरण का अनुकरण कर सकते हैं जहां सभी स्कूल और कॉलेज बंद कर दिए गए थे और विद्यार्थियों को गांवों और झोपड़पटियों में भेजा गया था जिससे कि वे जवान और बूढ़े हर नागरिक को बुनियादी शिक्षा दे सकें।

मैं यहां उन प्रचलित सामाजिक और आर्थिक सुधारों का भी जिक्र करना चाहूंगा जिनके बारे में बात तो बहुत हुई लेकिन काम बहुत कम किया गया है। इन कामों के लिये युवा शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। इसका लाभ समाज और युवकों दोनों को ही मिलेगा।

ईश्वर कृपा से आने वाले महीनों में मैं स्वास्थ्य लाभ के बाद संपूर्ण क्रांति के अपने कार्य में भरसक योग दूँगा। लेकिन तब तक यह काम रुकना नहीं चाहिए। हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार अकेले अथवा दूसरों के सहयोग से इस काम को आगे बढ़ाए। हमारे देश के युवकों के लिये यह एक प्रकाश स्तंभ है। मैं आशा करता हूं कि नवयुवक इस प्रकाश की ओर अपनी यात्रा जारी रखेंगे। मरणशैव्या पर भी अपनी सामर्थ्य अनुसार सलाह और निर्देश देने के लिये मैं तैयार हूं।

मेरे नवयुवक मित्रों, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो।

संपूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है - अपना यह नारा भूलो नहीं। □

(7 - 21 मई, 1977 अंक से)

विश्वविद्यालय की शिक्षा

○ शिवमंगल सिंह सुमन

भा

रतीय मनीषियों ने सभ्यता के प्रथम प्रभात में शिक्षा या विद्या की परिभाषा करते हुए कहा था कि 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो हमें विमुक्त करती है। मुक्त और मुक्ति शब्द भारतीय चिंतन की उच्चतम उपलब्धियों के प्रतीक हैं। स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षाविद् ने विद्या को केवल वृत्ति प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं रखा था, वरन् उसे भौतिक समस्याओं के समाधान, आध्यात्मिक अनुभूतियों के आह्वान और संपूर्ण मनुष्य के निर्माण का सोपान माना था। भारत में अभी-अभी जो अभूतपूर्व क्रांति घटित हुई और जनमानस में एक प्रकार की नयी मुक्ति की जो अनुभूति हुई, उसके साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी नयी चेतना का संचार हुआ। इस दृष्टि से इस वर्ष 15-16 जनवरी को राजकोट में जो अखिल भारतीय कुलपति सम्मेलन हुआ था, उसका ऐतिहासिक महत्व है। संयोग की बात है कि राजकोट से गांधीजी का भी भौतिक एवं आध्यात्मिक संबंध था। जिस भूमि में विदेशी शासन से मुक्ति का आह्वान उद्घोषित हुआ था, उसी भूमि से तानाशाही से मुक्ति के आयाम में हमारी मानसिक चेतना को नयी भावभूमि प्रदान करने की आतुर जिज्ञासा स्वयं में ही महत्वपूर्ण है। शिक्षा के संबंध में गांधीजी की अपनी मौलिक परिकल्पना थी। नयी तालीम के रूप में शिक्षा को श्रम और उत्पादन से जोड़ कर उन्होंने राष्ट्र की चेतना को नया रूप देना चाहा था। उनका प्रत्येक कार्य प्रयोग-सिद्ध होता था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका, साबरमति आश्रम, गुजरात विद्यापीठ आदि स्थानों में इसके सफल प्रयोग किए थे और आज वह जीवित होते तो इन प्रयोगों के आधार पर अपनी सफलताओं-असफलताओं से सबक लेते हुए बुनियादी शिक्षा से उच्चतम शिक्षा के विकास क्रम का

कल्प अवश्य संवारते।

राजकोट में कुलपति सम्मेलन का सबसे बड़ा महत्व यह था कि भारत के प्रधानमंत्री ने केवल इसका उद्घाटन ही नहीं किया वरन् इसके विचार-विनियम में पूर्ण निष्ठा से भाग लिया और शिक्षापद्धति में परिवर्तन लाने के अपने मंतव्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारी आज की शिक्षा-व्यवस्था का देश के गुरीब लोगों और गांवों में रहने वालों के साथ मेल नहीं बैठता। हमें देखना है कि शिक्षा व्यवस्था से समाज की विषमताएं न बढ़ें। आज की पद्धति उन विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर रूढ़ हुई है जिन्हें अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं। आवश्यक है कि राष्ट्र के विकास के लिये शिक्षा आरंभ से अंत तक सभी तबकों के लोगों के लिये किसी न किसी उत्पादक प्रवृत्ति के साथ जुड़ी हो।

सबसे पहला प्रश्न शिक्षा के माध्यम का है। कम से कम समय में इसे अधिक से अधिक व्यापक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा हो। इस विराट राष्ट्र की निरक्षरता दूर करने, प्रौढ़ शिक्षा के आह्वान को युद्ध स्तर के अभियान के रूप में अग्रसर करने और सुदूर ग्रामों के अंचल तक विज्ञान की नयी-नयी उपलब्धियां सुलभ कराने के लिये क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा देने के सिवा और कोई चारा नहीं। एक ओर तो हम दावा करते हैं कि हम विश्व की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं और दूसरी ओर बड़ी विवशता से कहते हैं कि हमारे देश की कोई भाषा उच्चतम स्तर की शिक्षा का माध्यम बनने में समर्थ नहीं है। अतएव निश्चय किया गया कि बिना किसी विलंब के प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा भी क्षेत्रीय

भाषाओं के ही माध्यम से दी जाए। प्रयोग प्रारंभ हो जाएगा तो पारिभाषिक और तकनीकी शब्दावली अपने-आप ही ढलनी प्रारंभ हो जाएगी। वर्षों पूर्व शिक्षा मंत्रालय द्वारा क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च स्तर की मौलिक पाठ्य पुस्तकों की रचना के लिये प्रत्येक प्रांत को एक-एक करोड़ रुपये का अनुदान दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप देश के लगभग 70 विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर तक क्षेत्रीय भाषाओं में निर्बाध रूप से शिक्षा दी जाने लगी है। अब हमें पांच वर्षों के भीतर स्नातकोत्तर तथा तकनीकी, सभी स्तरों पर, मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा देने का संकल्प पूर्ण करना है।

शिक्षा शांति, प्रेम और अहिंसा की भाँति अखंड है। प्राथमिक, उच्च, माध्यमिक महाविद्यालयीन आदि के रूप में उसे खंड-खंड देखना नितांत भ्रमात्मक है। अभी स्थिति यह है कि स्नातकोत्तर कक्षाओं का शिक्षक स्नातक कक्षाओं के शिक्षक को, स्नातक शिक्षक उच्च माध्यमिक वाले को और उनके पाठ्यक्रमों को हीन समझता है। पर जब तक माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर नहीं सुधरेगा, तब तक महाविद्यालयों में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों का स्तर कैसे परिष्कृत हो पाएगा? विश्वविद्यालयों को शोधकार्य के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भी समझना होगा। ग्राम जीवन के विकास से भी उसका संबंध जोड़ना होगा और इसी के साथ हमारी छुट्टियों को उत्पादक श्रमों के साथ संयोजित करना होगा। आज की विडंबना यह है कि शिक्षण का समारंभ होते ही ग्रामवासी विद्यार्थी अपने-अपने परिवार के कामकाज से कट जाता है। किसी ने टीक ही कहा है कि अल्प शिक्षित अपना ग्राम छोड़

(शेषांश पृष्ठ 48 पर)

आर्वजिक बैंकों की कार्यप्रणाली : कुछ सुझाव

○ एस.एल.एन. सिन्हा

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि राष्ट्रीयकरण के बाद नयी शाखाएं खोलने में काफी प्रगति हुई है तथा वार्षिक विकास दर 12-13 प्रतिशत रही है। सबसे अधिक बल ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलने पर दिया गया जिसमें पिछले 11 वर्षों में औसतन 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों में से, भारतीय स्टेट बैंक ने प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से आजमायशी अधिकारियों की भर्ती करने की एक क्रियाशील नीति का अनुसरण किया और संभवतः इसके कारण भी इस बैंक की कार्यप्रणाली में सामान्यतः कार्यकुशलता का उच्च स्तर देखने को मिलता है। हाल ही में, बैंकों में भर्ती तथा पदोन्ततियों के लिये क्षेत्रीय आधार पर बोर्डों का गठन किया गया है और यह कदम बैंकों में भर्ती किए जाने वाले कर्मचारियों तथा अधिकारियों के स्तर को उठाने में काफी सहायक होना चाहिए।

यदि बैंकों को केवल धन उधार देने वाली संस्था की बजाय विकास संस्थाओं के रूप में कार्य करना है तो उनमें इंजीनियर, चार्टर्ड तथा कॉस्ट एकाउंटेंट, वित्तीय विश्लेषक, कृषि विशेषज्ञ तथा मनोवैज्ञानिक जैसे विविध प्रकार के कार्मिक होने आवश्यक हैं। प्रसन्नता की बात है कि इस बात को अनुभव किया जा चुका है। केवल प्रगति की गति धीमी है।

राष्ट्रीयकरण के लाभ

राष्ट्रीयकरण से जो लाभ हुए हैं वे अधिक जमा राशि प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक ऋण आवंटन के क्षेत्र में अधिक हैं। कुछ बहुत ही अच्छी बातें हुई हैं जिनका कारण कुछ तो अपनाई गई नयी नीतियां रही हैं और कुछ बैंक ऋण आवंटन व्यवस्था को अर्थव्यवस्था की नयी प्रवृत्तियों के अनुरूप ढालना रहा है। दूसरे

शब्दों में, बैंकों की ऋण आवंटन नीति में आए परिवर्तन का समस्त श्रेय राष्ट्रीयकरण को ही नहीं दिया जाना चाहिए।

अब राष्ट्रीयकरण के पहले की अपेक्षा ऋण संबंधी आवश्यकताओं का मूल्यांकन कहीं बेहतर होता है। ऋण आयोजना तथा प्रबंध में काफी उन्नति हुई है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि बहुत अधिक परीक्षण हुए तथा संभवतः क्रियान्वयन नीतियों में बहुत अधिक परिवर्तन भी किए गए हैं। लेकिन मूल उद्देश्य ये रहे हैं : ऋण आवंटन नीति को हमारी योजनाओं के स्वरूप से संबद्ध करना तथा विशेषकर कृषि व लघु उद्योग इकाइयों जैसे प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को तथा समाज के कमज़ोर वर्गों को भी ऋण उपलब्ध कराना। सैद्धांतिक रूप में तो उद्देश्य अत्यंत श्रेष्ठ है, लेकिन इन्हें व्यावहारिक रूप देने के मार्ग में कठिनाइयां हैं। यह तो बैंक क्षेत्र की सावधानी, राजनीतिज्ञों की अधीरता तथा वास्तविकताओं से अलग-थलग हुए अर्थशास्त्रियों की आदर्शवादिता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रश्न है। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक तथ्यों और प्रवृत्तियों की पूरी तरह जानकारी न होने के कारण समायोजनों तथा संशोधनों की भी आवश्यकता होती है।

मेरा ख्याल है कि ऋणों के अधिक संतुलित तथा बेहतर क्षेत्रवार आवंटन की दिशा में बहुत प्रगति हुई है। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को 1969 में लगभग 15 प्रतिशत ऋण दिया जाता था, लेकिन अब यह वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिए गए कुछ ऋणों को मिलाकर यह दुगुने से भी अधिक यानी 32 प्रतिशत हो गया है। यदि सरकारी अनाज खरीद के लिये दिए गए ऋण को जोड़ से निकाल दिया जाए तो प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को दिया गया कुल ऋण 40 प्रतिशत

से थोड़ा ही कम बैठेगा।

यद्यपि अधिकारियों की इच्छा यह रही होगी कि प्रगति इससे भी अच्छी हो, लेकिन वास्तविकता यह है कि जो प्रगति हुई है उसमें भी बैंकों ने जोखिम उठाया है। ऋणों की अदायगी में देरी तथा गैर-अदायगी के मामले बढ़ते जा रहे हैं। दरअसल कमज़ोर वर्गों को ऋण की अपेक्षा अनुदान की अधिक आवश्यकता है। साथ ही साथ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं की भी समुचित पूर्ति होनी चाहिए, विशेषकर उन औद्योगिक इकाइयों की, जो कृषि क्षेत्र के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सामग्री जुटाती हैं।

एक अवांछनीय पक्ष

विशेषकर पिछले सात-आठ वर्षों में, भारतीय बैंक तंत्र का एक अवांछनीय पक्ष यह रहा है कि इसका बहुत नियमन-नियंत्रण होता है। दिशानिर्देशों, बैठकों, सेमीनारों, संगोष्ठियों, कार्यदलों और समितियों की भरमार रही है। बैंकों के अधिकारियों का बहुत सारा समय फार्मों को भरने और सम्मेलनों में भाग लेने में ही व्यतीत हो जाता है। ऋण अनुमोदन योजना में भी अनावश्यक कागज़ी कार्रवाई, विचार-विमर्श तथा प्रशासन की कठोरता में काफी बढ़ोतारी हुई है, जबकि बैंकिंग ऐसा व्यवसाय है जिसमें ऋण देने वाले के पास निर्णय लेने के काफी अधिकार होना आवश्यक है। भारतीय रिज़र्व बैंक को एक-एक इकाई को ऋण देने के मामले से इतना सरोकार नहीं होना चाहिए। उसका कार्य सिर्फ यह है कि वह मोटे तौर पर कुछ दिशानिर्देश जारी कर दें।

बैंकों के उच्चाधिकारियों के अनिश्चय तथा दब्बूपन का एक कारण यह है कि ये नियुक्तियां सरकार द्वारा की जाती हैं। नीति में अनिश्चितता

होने के कारण इस दिशा में काफी अनिश्चितता तथा आशंका बनी रहती है। अब समय आ गया है कि काफी स्पष्ट नीति निर्धारित और घोषित की जाए तथा उतना ही महत्वपूर्ण यह है कि उसे लागू भी किया जाए। इस संबंध में राष्ट्रीयकृत बैंकों में अध्यक्ष, कार्यकारी निदेशक और महाप्रबंधक जैसे पदों पर नियुक्तियां करने के लिये पांच सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त बैंकिंग सेवा आयोग गठित करना चेहरत होगा। इसके पांच नियमित सदस्यों के अतिरिक्त, वित्त मंत्रालय और भारतीय रिज़र्व बैंक का एक-एक प्रतिनिधि भी इस आयोग का पदेन सदस्य हो। इन नियुक्तियों में राजनैतिक प्रभावों को कम करने के लिये कुछ ऐसे ही उपाय किया जाना चाहिए। आज बैंक कार्मिक सेमिनार में बैंक संबंधी कार्यप्रणालियों या नयी बातों पर चर्चा के बजाय केवल नियुक्तियों व पदोन्तियों की ही बातें होती हैं।

विविधीकरण

विश्वभर के बैंक अपने कार्यकलाप में विविधता का समावेश कर रहे हैं और ऐसे क्षेत्रों में पदार्पण कर रहे हैं जिन्हें बैंकों के लिये अनुपयुक्त समझा जाता था। कभी-कभी विविधता लाने की प्रक्रिया में सहायक संस्थाओं की स्थापना की जाती है। भारतीय बैंकों ने यह काम लगभग पूरा कर लिया है जिसे विविधीकरण का पहला चरण कहा जा सकता है, यानी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिये ऋण प्रदान करना। अब उनके विकास एजेंसी बनने के अगले चरण के लिये भूमिका तैयार हो चुकी है। विशेष रूप से उनकी परामर्शदात्री भूमिका के विस्तार किया जाना अनावश्यक है। ये बैंक परियोजनाओं को तैयार करने, उनके बारे में, वित्तीय अनुमान तथा वित्त लगाने के छंग के बारे में अपने ग्राहकों की, विशेषकर छोटे तथा नये उद्यमियों की, काफी सहायता कर सकते हैं। कार्यकारी पूँजी प्रबंध के क्षेत्र में भी बैंक अपने ग्राहकों की सहायता करने में सक्षम है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा मध्यावधि ऋणों में अधिकाधिक भाग लेने का यह स्वाभाविक परिणाम होगा। इस समय उनके द्वारा दिए जाने वाले कुछ ऋणों में मध्यावधि ऋणों का भाग 20 प्रतिशत है।

सेवाएं प्रदान करने तथा आय बढ़ाने का एक और क्षेत्र है - निवेश संबंधी परामर्श। निवेश संबंधी परामर्श की आवश्यकता न केवल अवकाश ग्रहण करने पर एकमुश्त धन प्राप्ति के समय होती है, बल्कि ऐसे परामर्श की आवश्यकता लगातार पड़ती है, जैसे जीवन बीमा संबंधी मामलों में।

कंपनी प्रबंध के स्तर को ऊंचा उठाने में भी वाणिज्यिक बैंक काफी कार्य कर सकते हैं। उन्हें कंपनियों के घाटे-नफे के बारे में हमेशा जानकारी रहती है और वे कंपनी के प्रबंधकों को सावधान कर सकते हैं, उनका मार्गदर्शन कर सकते हैं और उन्हें अनुशासित कर सकते हैं।

वाणिज्यिक बैंकों को कंपनियों के शेयर जारी करने तथा उनका हस्तांतरण करने का काम सौंपना एक अच्छी बात होगी। इससे गलत कार्मों की रोकथाम हो सकेगी और शेयरों की साख बढ़ेगी।

कार्य का मूल्यांकन

किसी भी व्यावसायिक इकाई की कार्यकुशलता का मूल्यांकन करने का यह एक मोटा मापदंड ही है कि लगाए गए संसाधनों की तुलना में कितना लाभ हुआ है। जहां तक वित्तीय संस्थाओं का प्रश्न है, लाभ को मापदंड बनाना तो और भी अनुपयुक्त होता है, क्योंकि इनमें निजी धन यानी शेयर पूँजी और सुरक्षित निधि की अपेक्षा उधार लिया गया धन कहीं अधिक होता है। और प्रकाशित आंकड़ों से यह पता लगाना लगभग असंभव है कि डूबे हुए कर्जों के लिये किया गया प्रबंधन पर्याप्त है या नहीं, निवेशों का मूल्यांकन किस प्रकार किया गया है। अंत में, राष्ट्रीयकृत बैंकों का लाभ तो जमा राशियों के तथा ऋणों की ब्याज दरों संबंधी नीतियों द्वारा प्रतिबंधित होता है - इन करों के बीच का अंतर संभवतः उतना नहीं होता जितना कि बाजार की स्थिति को देखते हुए होना चाहिए।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कोई भी यह नहीं कह सकता कि लाभदेयता कम है। इसप्रकार 1978 में, जब तक के लिये आंकड़े उपलब्ध हैं, 22 राष्ट्रीयकृत बैंकों की 312 करोड़ रुपये की शेयरपूँजी और आरक्षित निधि की तुलना में कराधानपूर्ण (बोनस, ग्रेचुटी

तथा 'अन्य' प्रावधानों के बाद) 172 करोड़ रुपये का लाभ हुआ था। कराधान की राशि 139 करोड़ रुपये थी। बैंकों के लाभ के बारे में इससे और अधिक कुछ कहना संभव नहीं है।

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का पुनर्गठन

अब हम इस बात पर आते हैं कि भारतीय बैंकिंग व्यवस्था के पुनर्गठन तथा बैंकिंग के नियमन में सुधार के क्या उपाय हो सकते हैं। अब सातों सहायक संस्थाओं को भारतीय स्टेट बैंक से बिल्कुल अलग कर दिया जाना चाहिए। दूसरे, भारतीय स्टेट बैंक को छोड़कर आय बैंकों के मामले में क्षेत्रीय दृष्टिकोण बहुत ध्यानपूर्वक अपनाया जाना चाहिए। इससे वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किए जाने वाले संवर्धनात्मक तथा नियामक कार्य का स्तर अब से बेहतर हो जाएगा।

यद्यपि भारतीय स्टेट बैंक का विशाल आकार इसकी कुशलता के मार्ग में बाधक नहीं बना है, तथापि भविष्य में इसके विस्तारण को धीमा रखना श्रेयस्कर होगा। छोटे तथा मझोले बैंकों का विस्तार अब से कहीं अधिक तेज गति से किया जाना चाहिए।

दूसरी ओर, मैं यह कहना चाहूंगा कि शाखाओं का विस्तार करने के बजाय अन्य दिशाओं में भारतीय स्टेट बैंक के दायित्वों को बढ़ाना चाहिए। विभिन्न फार्मों तथा प्रक्रियाओं का मानकीकरण करने और दूसरे बैंकों के लिये वरिष्ठ अधिकारी उपलब्ध कराने का दायित्व भारतीय स्टेट बैंक को सौंपा जा सकता है। यह बहुत ही खेद का विषय है कि रिज़र्व बैंक द्वारा 30 वर्षों के राष्ट्रीयकरण के 11 वर्ष बाद तथा भारतीय बैंक एसोसिएशन, भारतीय बैंकसंस्था, बैंकसंशिक्षण कॉलेज तथा भारतीय प्रबंध संस्था जैसे प्रतिष्ठित संगठनों के होते हुए भी बैंकों के फार्मों, अभिलेखों तथा प्रक्रियाओं में बहुत अधिक भिन्नता है। इस स्थिति को बदलने के लिये तत्काल कदम उठाने की आवश्यकता है। प्रगति, कुशलता तथा आम लोगों की सुविधा के लिये मानकीकरण बहुत ही आवश्यक है। मेरा विचार है कि यह कार्य मुख्य रूप से भारतीय स्टेट बैंक को ही सौंपा जाना चाहिए।

बैंकिंग के विकास और नियमन के क्षेत्र में भारतीय रिज़र्व बैंक को अब से अधिक

कुशलता से काम करना चाहिए। इसे बैंकों के सामान्य निरीक्षण का कार्य काफी कम कर देना चाहिए और बैंकों की कार्यक्षमता व उपयोगिता को बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। इसे अपने यहां ऐसे लोगों को बड़ी संख्या में रखना चाहिए, जिन्हें बैंकिंग कार्य के बारे में पर्याप्त ज्ञान हो। समय-समय पर सामने आने वाले मुद्रों पर विचार करने के लिये प्रतिदिन एक समिति या कार्यदल नियुक्त किए बिना ही रिजर्व बैंक देश के बैंकों की प्रगति के लिये काफी ठोस कार्य कर सकता है। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में, बिना समिति नियुक्त किए ही बैंकों से विचार-विमर्श करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक के लिये काफी संभावनाएं विद्यमान हैं। बैंकिंग के विकास तथा नियमन के क्षेत्र में रिजर्व बैंक के कार्यों के विकेंद्रीकरण की भी काफी संभावनाएं हैं।

(पृष्ठ 46 का शेषांश)

देता है, अधिक शिक्षित अपना प्रदेश छोड़ देता है और उससे भी अधिक शिक्षित अपना देश ही छोड़ देता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि हमारी छुट्टियां केवल मौज-मनोरंजन के लिये नहीं, बरन खेत-खलिहान और कल-कारखानों में कार्य के लिये समर्पित हों, जैसा कि कुछ अन्य देशों में किया जा रहा है। इससे युवकों में नये आत्मविश्वास का उदय होगा और अर्जन के साथ सर्जन का अभूतपूर्व कल्प प्रारंभ हो सकेगा।

गांधीजी भी कहा करते थे कि भूखे को भीख नहीं, काम दो। उच्च शिक्षा में स्तर को संवारने और राष्ट्र के नये कल के साथ उसे जोड़ने के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने हाल ही में बहुत से नये सुझाव दिए हैं। ध्यान देने की बात है कि एक ओर तो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठता के शिखर स्थापित करते हुए शोधकार्य को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देना होगा और दूसरी ओर राष्ट्र की व्यापक बेरोज़गारी से जूझने के लिये हमें युद्ध स्तर पर प्रयत्न करने होंगे। जहां तक विश्वविद्यालयों के परिसर में शांति का प्रश्न है, समाज से प्रतिबद्ध होते ही इसमें गुणात्मक अंतर आ जाएगा। शासन के साथ-साथ इसमें विद्यार्थियों के अभिभावकों को भी सहयोग

मेरा विचार है कि राष्ट्रीय ऋण परिवर्तन को, इसके कार्यक्षेत्र तथा गठन के स्वरूप में कुछ परिवर्तन करके, फिर चालू किया जाना चाहिए। मुद्रा तथा ऋण संबंधी समस्याओं पर विचार-विमर्श के लिये हमारे यहां कोई राष्ट्रीय संस्था होनी चाहिए।

उपसंहार

हमारे देश में बैंकिंग-कार्य के लिये काफी अच्छा आधार है तथा यदि समुचित रूप से मार्गदर्शन व स्वायत्तता प्रदान की जाए तो हमारे बैंक काफी प्रगतिशील एजेंसियों के रूप में विकसित हो सकते हैं जिससे स्थायी प्रकार के आर्थिक विकास संभव होगा तथा ऋणों के आवंटन में समाजवादी उद्देश्यों को पूरा करने में भी सफलता मिलेगी। इस बात में कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीयकरण से बहुत-सी अच्छी बातें हुई हैं, लेकिन यदि नीति तथा

प्रक्रिया में बहुत अधिक रद्देबदल न किए गए होते तो और भी अधिक अच्छाइयां सामने आ सकती थीं। यद्यपि ये रद्देबदल उत्तम उद्देश्य से किए गए, लेकिन दुर्भाग्यवश इनसे प्रगति की रफ्तार धीमी पड़ गई है।

अधिकारियों ने 'अधिक जल्दबाजी नहीं' के सिद्धांत को अभी तक ध्यान में नहीं रखा था। अब इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि केवल बैंक कार्यालयों तथा बैंक खातों की संख्या बढ़ाना ही सब कुछ नहीं है। सबसे अधिक महत्व गुणवत्ता का है। बैंक शाखाओं के विस्तार-कार्य की गति कम किया जाना एक सराहनीय बात है। दृढ़ीकरण तथा विस्तारण साथ-साथ चलने चाहिए। □

(लेखक भूतपूर्व डिप्टी गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, वित्तीय प्रबंध तथा अनुसंधान संस्थान, मद्रास थे; 26 जनवरी, 1981 से)

देना होगा। इसके अलावा विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता की रक्षा तभी होगी जब विद्यार्थी को राजनीति के चिंतन की पूर्ण स्वतंत्रता द्वारा पर भी राजनीतिक दलों के स्वार्थ का साधन बनने से बचाया जा सके। सौभाग्य की बात है कि हमारे प्रधानमंत्री ने परिसर में शांति, व्यवस्था एवं स्वायत्तता के संबंध में हमें पूर्णतया आश्वस्त कर दिया है, बशर्ते कि विश्वविद्यालय का प्रशासन और अध्यापक वर्ग शिक्षा के नये कल्प को संवारने, उसे जनजीवन की आशा-आकांक्षाओं का प्रतीक बनाने के लिये जी-जान से जुट जाएं।

शिक्षक और विद्यार्थी में अधिक से अधिक सहयोग की भावना का वातावरण उत्पन्न करने के लिये विश्वविद्यालय में संख्या का दबाव कम करना होगा। कक्षा और कक्षा के बाहर दोनों की व्यक्तिगत चर्चा चलती रहे। उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षण की विभिन्न योजनाओं से और मूल रूप से श्रम तथा उत्पादन के साथ जुड़ जाने पर न केवल उच्च शिक्षा के लिये अंध प्रतियोगिता कम हो जाएगी बरन विद्यार्थी की प्रवृत्ति में भी अंतर आ जाएगा। केवल ऐसी ही संस्थाओं को मान्यता मिलनी चाहिए जो विद्यार्थी को अपनी प्रतिभा के पूर्ण विकास की सुविधा प्रदान कर सकें। ऐसी स्थिति होने पर ही परीक्षा में

समुचित परिवर्तन संभव होगा और ग्रेडिंग पद्धति तथा आंतरिक मूल्यांकन की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी। डिग्री को नौकरी प्राप्त करने की भावना से विच्छिन्न करके ही हम सच्चे ज्ञान अर्जन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दे सकेंगे। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में युगांतकारी परिवर्तन तभी संभव होगा जब विश्वविद्यालयों के अधिकारी अपनी संगमरमरी मीनारों से उतर कर अपने आसपास के समस्त वातावरण को शिक्षामय बनाने का प्रयत्न करेंगे। राष्ट्रीय सेवा योजना के अंतर्गत विद्यार्थियों की टेलियां ग्राम जनपद में निरक्षरता दूर करने, प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करने और सामान्य नागरिकों का सामान्य ज्ञान से समुदायन करने के लिये पूर्ण निष्ठा से जुट जाएं। इस कार्य में अनौपचारिक शिक्षा, पत्राचार तथा सांध्य महाविद्यालयों का विशेष योगदान हो सकता है। प्रत्येक स्नातक के लिये डिग्री प्राप्त करने से पूर्व श्रमदान और समाज सेवा में योगदान का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य होना चाहिए। राष्ट्र की उच्च शिक्षा के नये कीर्तिमानों का निर्माण इन्हीं उपकरणों के द्वारा हो सकता है और इसी उत्सर्ग भावना से राष्ट्र की आत्मा उदात्त उद्देश्यों की पूर्ति में कृतकार्य हो सकती है। □

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार एवं विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति थे; 7-21 अक्टूबर, 1978 अंक से)



www.galaxyonline.com

पर्यावरण बचाओ जीवों बचाओ

गैलेक्सी...
भारत की जुड़ी ही जगह है जहाँ ही जाने हैं
जो अपने जलवा कम हो जाते हैं
जो जल में 24/7 जल ही जल जाता है
जिसके द्वारा के जल के लिए जलवाली जलवाली और जलवाली-जलवाली
जलवाली से है।

इस संघर्षी के लिए जलवाली-जलवाली जल से जैव जल में जलवाली
जलवाली, जल जलवाली को जलवाली का और उनके जल
को जल का जलवाला के लिए जलवाली को जिस जल है। जलवाला
जलवाला पर में जलवाली को जलवाली और जल जलवाली जलवाली के
लिए जिलवाला के लिए जलवाला। जल जलवाली है, जो जल जल
जलवाला के लिए जलवाला है।

जल जलवाला है जल जलवाला जिस जल है।

और आप...?

दूर नहीं दूर जलवाला है...



हमारे ये राजनीतिक दबल

○ मधु दंडवते

आज विभिन्न क्षेत्रों में गिरावट आई है, पर मूल्यों के ह्वास के कारण हमारी लोकतांत्रिक परंपराओं में जो पतन दृष्टिगोचर हो रहा है उसके परिणाम दूरगामी हो सकते हैं। इसने हमारे राजनीतिज्ञों व राजनीतिक संस्थाओं को बुरी तरह प्रभावित किया है। इन्हाजिओं साइलोन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक गॉड डैट फ्रेल्ड में कहा है:

“सिद्धांतों व मूल्यों के अंतर को नहीं पहचाना जाता, जबकि यह अंतर मूलभूत है। कुछ सिद्धांतों को मिलाकर आप एक चिंतनधारा स्थापित कर सकते हैं। परंतु मूल्यों को गूंथकर एक संस्कृति का प्रादुर्भाव हो सकता है, हम एक ऐसी सभ्यता का सूत्रपात कर सकते हैं जिसमें व्यक्ति नये ढंग से मिल-बैठ सकें।”

यद्यपि जिन मूल्यों के समूह की चर्चा इन्हाजिओं साइलोन ने की वे भी राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे हैं। भ्रष्टाचार कोई नयी बात नहीं। ब्रिटिश काल में भी भारत में भ्रष्टाचार व्याप्त था। स्वतंत्रता के पश्चात भी भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं हो पाया और मूल्यों के प्रति हमारे बदलते दृष्टिकोण के फलस्वरूप समाज के लिये भ्रष्टाचार एक कलंक बन गया। अब तो भ्रष्टाचार को सामान्य जीवन का अंग मान लिया गया है। अब भ्रष्टाचार से लोगों में किसी तरह की हीन भावना भी नहीं पनपती। इससे राजनीतिज्ञों को अंतर्रात्मा पर भी कोई बोझ नहीं पड़ता। जो दल सदन में अपना बहुमत खो देते हैं वे आसानी से बिना गिला-शिकवा के सत्ता नहीं त्यागते, अपितु सत्ता में बने रहने के लिये वे विधायकों को विकाऊ वस्तुओं की तरह प्रयोग कर शक्ति संतुलन अपने पक्ष में करने हेतु आतुर हो जाते हैं। रातोंरात विधानसभा में अल्पमत वाला दल बहुमत में बदल जाता है। इस तरह वे अपनी घटिया हरकतों के जरिये सत्ता में जमे रहते हैं। ऐसे गंदे राजनीतिक दुराचरण से संसदीय लोकतंत्र की मर्यादा को आधात पहुंचता है।

सांप्रदायिक हिंसा

हाल ही में महाराष्ट्र के भिवण्डी और बंबई सरीखे नगरों में अभूतपूर्व सांप्रदायिक दंगे हुए। सामान्य व्यक्ति अपने आप में शांतिप्रिय है और वह अपने पड़ोसी के साथ चाहे वह किसी भी

धर्म-संप्रदाय का क्यों न हो, मिलजुल कर रहना चाहता है। परंतु कुछ राजनीतिक ऐसे होते हैं जो लोगों की सांप्रदायिक भावनाएं भड़का कर, उत्पन्न सांप्रदायिक तनाव के बल पर ही समाज में अपना कोई स्थान बना पाते हैं। सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में उनके साथ हो रहे अन्याय के प्रति लोगों को जागृत करना कठिन है। परंतु उनकी सांप्रदायिक भावनाओं को जगाने के लिये उन्हें मात्र हल्के से उकसाना ही पर्याप्त रहता है। संकुचित प्रवृत्ति के राजनीतिज्ञ ऐसी ही हरकतों में संलग्न रहते हैं। उनका अपना अलग ही दृष्टिकोण होता है और वे अपनी लेखनी व शब्दजाल से सांप्रदायिकता का लावा डालते रहते हैं। चूंकि वे अपनी संप्रदाय के हित की बात करते हैं, इसलिये वे उनके नेता बन जाते हैं।

इन सबके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक दंगे भड़कते हैं और उसमें सभी संप्रदायों के अधिकांशतः भोले-भाले गुरीब लोग मारे जाते हैं। थोड़ी-बहुत उनकी जो संपत्ति होती है, वह भी नष्ट हो जाती है और वे राजनीतिज्ञ जो ये सब करते हैं, सुरक्षित दूर से तमाशबीन बन कर गुरीबों की झोंपडपट्टी से उठती आग को निहारते रहते हैं। हाल ही में हुए दंगों में कुछ घृणित स्वार्थी को प्रोत्साहित करने वाले भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के चेहरे बेनकाब हुए हैं। भिवण्डी में कुछ झोंपडवासी अपने घर असबाब के साथ जिंदा भुन गए। सर्वविदित है कि कुछ भूमिस्वामियों ने राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर यह सब घट्यंत्र रचा था। वे स्वार्थवश इस भू-भाग को खाली करना चाहते थे, सो उन्होंने झोंपडपट्टियों में आग लगवा दी। सरकार ने जब यह घोषणा की कि इस कांड में बचे जीवित व्यक्तियों को उसी भूखंड पर पुनः बसाया जाएगा तो इन भूमि-स्वामियों ने न्यायालय में अपील दायर कर दी कि हटाई गई झोंपडपट्टियों का पुनः निर्माण कार्य रोक दिया जाए। उनके इस दुष्कृत्य को राजनीतिज्ञों की शह थी। क्या इससे भी घृणित और कोई कृत्य हो सकता है?

राजनीतिज्ञ आमतौर पर उच्च आदर्शों व पूजास्थलों की पवित्रता के संबंध में ऊंची-ऊंची बातें करते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि वही राजनीतिज्ञ जो पूजास्थल की पवित्रता को

सर्वोपरि मानते हैं, उसी पूजास्थल को शस्त्रों-हथियारों का भंडार एवं कुख्यात बदमाशों व आतंकवादियों का अड़ा बनाने में सहयोग देते हैं। ये सभी कार्य पूजास्थल की पवित्रता को भंग करते हैं यह भी राजनीतिज्ञों का गंदा खेल ही है। दुर्भाग्यवश इन गलत हरकतों का परिणाम सामान्य नागरिकों को भुगतना पड़ता है।

विघटनकारी ताकतें

एक समय था जब भारतीय राजनीतिक आंदोलन ने देश को एक सूत्र में पिरोने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। परंतु आज राजनीति विघटन का प्रतीक है। आज चुनावों में जीत के लोभ से प्रेरित राजनीतिज्ञ जाति-आधारित राजनीति को बढ़ावा देते हैं। राजनीति ऐसे पिछड़े राज्यों में खेल बन गई है जहां जातिवाद का बोलबाला है। यह अब परिवर्तन का मंच न रह कर मात्र जातिवाद का अंकगणित रह गई है। इन वर्गों में उत्पन्न तनाव चुनावी लाभ की पूंजी है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर राजनीतिज्ञ चुनावों को दृष्टिगत रखते हुए जाति-आधारित संघर्षों को उकरने की घटिया चालें चलते रहते हैं। राष्ट्रीय विपत्ति जैसी बाहरी आक्रमण या सत्ता के विरुद्ध विद्रोह के समय इन राजनीतिज्ञों द्वारा सिंचित ये विघटनकारी शक्तियां दबी रहती हैं और संकट समाप्त होते ही ये फिर से सिर उठाने लगती हैं।

चाहे कोई राजनीतिज्ञ दल-बदल को बढ़ावा देता हो, और भ्रष्टाचार को एक आम रिवाज़ बना दे या जाति व सांप्रदायिक तनावों का लाभ उठाए अथवा कोई व्यापारी राजनीतिज्ञों से लाभ उठाए या अफसरशाही किसी से मिलीभगत कर ले, इन सबके कारण हमारे मूल्यों के स्तर में शोचनीय गिरावट आई है, जिससे इन राजनीतिज्ञों द्वारा ऐसी घटिया हरकतें संभव हो पाई हैं। स्वच्छ समाज एवं जनजीवन के लिये संघर्ष और बलिदान द्वारा एवं दीर्घकालीन शक्षापद्धति द्वारा निर्माण व मूल्यों के प्रति समान की भावना जगा कर ही राजनीतिज्ञों की इन गलत हरकतों पर काबू पाया जा सकता है। यह मार्ग कंटकपूर्ण अवश्य है परंतु जनजीवन व राजनीति में स्वच्छता लाने के हित में हमें इस मार्ग पर ही आगे बढ़ना होगा। □

(लेखक समाजवादी विचारक और संसद सदस्य थे; 15 अगस्त, 1984 अंक से)

काला धन : हम इसे सीमित करने का प्रयास करें

○ कमल नवन काबरा

काला धन भारत में यों ही नहीं पैदा हो गया। यह तो अनेक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक बातों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया की अवांछित या यूँ कह लीजिए अवैध उपज है जो अब न केवल लगभग सभी जगह फैल गई है बल्कि हावी हो गई है। मेरा विश्वास है कि यदि सरकार अर्थव्यवस्था को उसके स्वाभाविक मार्ग से हटाकर दूसरी दिशा में ले जाने और उसे दूसरे ढंग से कारगर करने के लिये हस्तक्षेप भी करती तो भारत में काले धन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ होता। लेकिन यदि काला धन हमारी व्यवस्था पर बुरी तरह असर नहीं डाल रहा होता तो क्या हम सभी सुखी जीवन बिता रहे होते? अर्थव्यवस्था में विकास, उसके ढांचे में परिवर्तन और विविधता जो आज हम देख रहे हैं यह सब केवल अंग्रेजों के भारत से चले जाने के कारण नहीं हो गया। यदि आर्थिक क्षेत्र में सरकार का बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं हुआ होता तो यह सब होना संभव नहीं था।

इस बात को गहराई से समझना होगा। यदि हम विकास का ऐसा तरीका अपनाते जिसमें निजी क्षेत्र को अधिक छूट मिली होती तो सरकार का काम केवल ऐसी परिस्थितियां पैदा करना होता जिसमें निजी क्षेत्र पनप सके और विस्तार पा सके। इसके बाद सरकार पीछे हट सकती थी। इससे न केवल काले धन की कष्टदायक समानांतर अर्थव्यवस्था के फैलाव से बचा जा सकता था बल्कि हमारी विकास दर भी तेज रही होती। इससे जो नया दृश्य बनता उसमें न तो किसी विस्तृत राष्ट्रीय स्तर की आयोजना की ज़रूरत होती, न विशाल सार्वजनिक क्षेत्र होता और न ही विकास के

तरीके को प्रभावित करने, आय और संपदा का वितरण करने और पूँजी निवेश को दिशा विशेष की तरफ मोड़ने के लिये लंबी-चौड़ी कंट्रोल मशीनरी की ज़रूरत होती। तैयार सामान, सेवाओं, टेक्नोलॉजी और पूँजी के आयात में कमी करने या उस पर प्रतिबंध लगाने और निर्यात को प्रोत्साहन देने के अनावश्यक प्रयास भी नहीं होते। उस दशा में तेजी से विकास और रोज़गार पर उसके असर के कारण विकास का लाभ सबसे निचले स्तरों तक पहुँचता।

वैसी दशा में निगमित क्षेत्र की कंपनियों को विशेष रूप से निर्यात के लिये उत्पादन करने हेतु कृषि के क्षेत्र में भी प्रवेश करने दिया जाता। आधुनिकताएं टेक्नोलॉजी के आयात के लिये भुगतान का प्रबंध भी इससे हो सकता था। जापान और दक्षिण कोरिया की तरह भूमि सुधार तेजी से पूरे किए जा सकते थे जिससे छोटी लेकिन कुशल खेतिहर अर्थव्यवस्था छाड़ी हो सकती थी। यह अर्थव्यवस्था उद्योगपतियों के लिये भी निरंतर बढ़ती हुई बाज़ार मांग पैदा कर सकती थी। शायद ऐसा करना राजनीतिक रूप से संभव नहीं था। अंग्रेजों ने रवाना होने से पूर्व यहां भूमि का पुनर्वितरण नहीं किया था। ये सब बातें देखते हुए हमें उद्योगों की तरह खेती में भी पूँजी लगाए जाने की अनुमति देकर बड़े मशीनों वाले फार्म स्थापित करने चाहिए थे। इस प्रकार कृषि का "औद्योगिकरण" करने वालों को समर्थन दिया जाना चाहिए था।

करों की बस हल्की-सी खुराक

ढांचा किस तरह का हो सकता था यह विस्तार से बताने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन

यह बात साफ है कि वह कोई ऐसा स्वर्ग नहीं होता जिसमें कोई भी कर न हो। उसमें संभवतः करों की एक हल्की-सी खुराक होती और कर लगाकर सभी वर्गों के साथ निष्पक्षता बरतने और नियमों के अधीन प्रगति करने का बहाना छोड़-छाड़ कर सीधा सार्वजनिक क्षेत्र के लिये धन जुटाने पर बल होता। इस गैर सरकारी ढांचे में कीमतों पर नियंत्रण और सरकारी कीमतें ज़रूरी नहीं होती। कीमतों को स्वतंत्र रखने से निजी और निगमित करों के बावजूद अच्छी आय होती और पूँजी निवेशकों को पुनः लगाने के लिये पर्याप्त धन मिल जाता। सस्ती मज़दूरी का लाभ उठाकर हमारी औद्योगिक कंपनियां इतनी विशाल बन सकती थीं कि विश्व की बड़ी फर्मों में उनका नाम होता। सस्ती और क्वालिटी में होड़ लेने वाली वस्तुओं के उत्पादन का लाभ उपभोक्ताओं को हुआ होता।

काला धन कैसे बढ़ता है?

इस प्रकार एक नया सिलसिला सामने आता है। कम से कम कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि निजी उद्योग-धंधों वाली अर्थव्यवस्था में अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप और लोकतंत्र की छत्रछाया में न्याय और विकास को साथ मिलाने की कोशिश से भी कालेधन की अर्थव्यवस्था ने इतनी बड़ी मात्रा में जन्म लिया है। यदि ठोस सरकारी समर्थन के साथ ज़ोर केवल विकास पर होता तो खुले बाज़ार, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा और विकास के हमियों का दावा है कि हम विश्व में एक औद्योगिक शक्ति के रूप में उभर सकते थे। करों की दरें कम होने पर भी ज्यादा धनराशि उगाही जा सकती थी और कम आय वालों की देखभाल भी अधिक अच्छी तरह होती।

अधिक विकास कम रोज़गार

फिर भी हमारे सामने आर्थिक नीति संबंधी जो विकल्प थे उन्हें समझने के लिये आइए, देखें कि 1950 और 1960 के दशकों में भारत में बाज़ार पर आधारित विकास और गैर सरकारी निजी क्षेत्र की नीति कहां तक चल पाती है। यदि इन पिछली बातों से निष्कर्ष निकाला जाए तो, कहा जा सकता है कि यदि उत्पादन की, विशेष रूप से औद्योगिक उत्पादन की ऊँची विकास दर संभव होती तो भी रोज़गार की स्थिति आज से बेहतर नहीं हो पाती।

यदि हम कृषि और लघु उद्योगों के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय संपर्कों और संबंधों की बात सोचें तो इस प्रकार के विकास की संभावनाएं और मज़बूत होती हैं। विकास की गाड़ी चलाने के लिये यदि हम गैरसरकारी निजी उद्यम का इंजन इस्तेमाल करते तो विदेशी तकनीकों और उपभोक्ता वस्तुओं की मांग निश्चय ही बढ़ती। निरंतर आयात के कारण लैटिनी अमरीकी देशों की तरह विदेशी ऋणों का बोझ और मुद्रास्फीति का संकट भी बढ़ता। अनुभव यह भी बताता है कि भूतपूर्व उपनिवेश वाली अर्थव्यवस्थाओं के अपने पुराने मालिकों से तालमेल बढ़ाने से न तो कहीं स्वतंत्र विकास हो पाया है और न ही इन अर्थव्यवस्थाओं को कोई लाभ मिलता है।

निजी उद्यम प्रणाली के अंतर्गत कृषि ने बड़ी संख्या में छोटे किसानों को बेकार कर दिया होता और उन्हें किसी उद्योग या अन्य क्षेत्र में भी काम नहीं मिलता। किए ए के मज़दूरों, मशीनों के इस्तेमाल, वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने आदि के कारण कृषि में लागत भी बढ़ जाती। समस्त उद्योग-धंधे कुछ हाथों में सीमित करने की ताक़तों के सक्रिय होने के कारण छोटे उद्योगों को भी नुकसान हुआ होता। दबाव के सामने झुकना नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण का निचोड़ यह भी है कि कालेधन की समस्या काला धंधा करने वालों के दबाव में आने और उन्हें तरह-तरह की छूटें देने से हल नहीं होगी। यदि सार्वजनिक नीतियां बनाने और आयोजना का लक्ष्य उन लोगों को अधिक महत्व देना है जो विकास

की प्रक्रिया में खुलकर खेलना चाहते हैं और अपने लिये लाभ उठाना चाहते हैं तो यह काम काले धन को रोकने के नाम पर नहीं बल्कि स्पष्ट रूप से होना चाहिये।

काले धन से निपटने के सात रास्ते

यदि हमारा लक्ष्य यह है कि काले धन को रोकने की कार्रवाई केवल इसलिये नहीं की जानी चाहिए कि इससे विकास के लाभ पूँजी लगाने वालों में ही बंट जाते हैं बल्कि और कारणों से भी होनी चाहिए तो तालमेल बिटाने और नये तरीके ढूँगे की एक भिन्न नीति अपनानी होगी। इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हो सकती हैं :

- काले धन की कमाई और संपत्ति पकड़ने के लिये बेनामी सौदेबाजी को खत्म करना होगा। इसके लिये ज़रूरी है कि सभी प्रकार की आर्थिक सूचनाएं और जानकारियां एकत्र की जाएं। सभी वयस्क नागरिकों और संगठनों को एक पहचानपत्र जारी करना, नागरिकों का एक राष्ट्रीय रजिस्टर बनाना, पहचानपत्र को सभी प्रकार की आर्थिक सौदेबाजी के लिये अनिवार्य बनाना और सभी प्रकार की आर्थिक जानकारी कंप्यूटरों के माध्यम से संग्रह करना काफी हद तक काले धन का दुष्चक्र रोक सकता है।
- बड़े नोटों का विमुद्रीकरण हो अर्थात उनका चलन बंद किया जाए ताकि तिजोरियों में जमा काला धन बेकार हो जाए।
- उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का तेजी से विस्तार किया जाए। ज़रूरी हो तो यह काम सरकार स्वयं करे ताकि कालाबाज़ारी के कारण होने वाली वस्तुओं की तंगी समाप्त हो सके।
- एक विशाल आवास निर्माण कार्यक्रम चलाया जाए और ज़मीन की खरीद-फरोख़्र का सारा काम इस उद्देश्य से स्थापित किए गए सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों के माध्यम से हो।
- मौज़-मस्ती, ऐशो-आराम और दिखावे की वस्तुओं के संग्रह और उपभोग पर कड़े नियंत्रण होने चाहिए। इससे सादा जीवन को बढ़ावा मिलेगा, ऊँची विकास दर के लिये अतिरिक्त धन जुटाया जा सकेगा और चीजों की तंगी समाप्त करने, रोज़गार का विस्तार करने, ग्रीष्मी

हटाने में मदद मिलेगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि काले धन की अर्थव्यवस्था उपभोक्ता संस्कृति की देन है।

● राजनीति प्रक्रिया में अमीर लोगों को ग्रीष्मी के मुकाबले अधिक लाभ मिलते हैं। उन्हें कम करने के लिये विभिन्न चुनावी तथा राजनीतिक सुधार लाने होंगे। संविधान में राजनीतिक दलों को जो मान्यता मिली हुई है उससे भी आग बढ़कर उन्हें सरकारी खर्च पर सभाएं आयोजित करने और पोस्टर तथा चुनाव घोषणापत्र छपाने में सुविधाएं दी जानी चाहिए। साथ ही उन्हें प्रचार माध्यमों पर अधिक समय दिया जाना चाहिए। मतदान करने और मतगणना करने के लिये मशीनों का प्रयोग होना चाहिए। इन सुधारों का तर्कसंगत परिणाम अंत में समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाया जाना होगा। राजनीतिक दलों के हिसाब-किताब को कानूनी रूप से जांचा जाना चाहिए और यह बात कानूनी रूप से सुनिश्चित की जानी चाहिए कि कंपनियों और सहकारी संस्थाओं की तरह राजनीतिक दलों में भी उनका अंदरूनी लोकतांत्रिक ढांचा कायम रहे।

● भ्रष्टाचार कम करने और काले धन पर रोक लगाने के कई तरीके हो सकते हैं। इनमें कंट्रोल और नियमों को आसान बनाना, एक ही खिड़की पर लाइसेंस संबंधी समस्त कार्यवाही, फाइलों और मामलों को समयबद्ध तरीके से निपटाना, सस्ता और शीघ्र न्याय शामिल हैं। जिन फाइलों के बारे में सुरक्षा संबंधी गोपनीयता की अड़चन न हो उन्हें जनसाधारण द्वारा जांच के लिये उपलब्ध कराया जाना चाहिए। राजनीतिज्ञों, सार्वजनिक पदाधिकारियों आदि को भ्रष्टाचार के खिलाफ प्रेरणा और प्रशिक्षण दिया जाए तो वह भी कारगर साबित हो सकता है।

ये सभी उपाय दीर्घकालीन समझे जाने चाहिए। लेकिन आशा है कि निर्भीकता और वैज्ञानिक पहल को अगर कोई स्थान दिया जाना है तो वह आज ही अभी मिलना चाहिए अन्यथा देर हो जाएगी। □

(लेखक प्रख्यात अर्थसाहस्री हैं;
16-30 मई, 1985 अंक से)

धर्म जड़ता को सहारा देता है

○ इरफ़ान हबीब

आज हमारे लिये यह ज़रूरी है कि हम धर्म या मजहब या हमारे समाज में जो कुछ भी इस नाम से जाना जाता है, की भूमिका पर विचार करें।

शायद हमें इसकी शुरुआत यह मानकर करनी चाहिए कि हम धर्म को समाप्त नहीं कर सकते (और इसकी ज़रूरत भी नहीं है)। यह है, और इसे तब तक रहना भी चाहिए, जब तक समाज में असमानताएं हैं, जब तक सभी लोग बराबर नहीं हो जाते। ऐसा करना लोगों के बस का नहीं है और इसलिये तब तक लोगों को आध्यात्मिक शांति की तलाश रहेगी। जैसा कि काल मार्क्स ने कहा है, “धर्म कठिनाइयों में पड़े लोगों की आह, हृदयहीन विश्व की भावना और आत्मारहित परिस्थितियों की आत्मा है। यह लोगों को नशे में रखने की अफीम है।” यही नहीं, यदि कुछ और विचार करें, तो हमें यह मानना होगा कि यदि सामाजिक शोषण समाप्त भी कर दिया गया तो भी धर्म को मानने वाले रहेंगे क्योंकि अप्रत्याशित परिस्थितियाँ और व्यक्तिगत दुखद घटनाएं तब भी होंगी और लोग उनसे बचने के लिये धर्म और पूजा का सहारा लेते रहेंगे। इसलिये अगर काफी समय तक लोग धर्म से जुड़े रहेंगे तो इसका अर्थ यह नहीं कि धर्म मानव मस्तिष्क पर मज़बूती से छाया रहेगा। वास्तव में अगर कोई इस बात को नहीं समझता कि मानव संबंधों पर धर्म का प्रभुत्व धीरे-धीरे कम हो रहा है तो वह आधुनिक समय में मनुष्य की बौद्धिक प्रगति को नहीं समझ पा रहा। पर्यावाख ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले ठीक ही कहा था कि “मनुष्य भगवान से अधिकाधिक हट रहा है और स्वयं को अधिकाधिक महत्व दे रहा है।” विज्ञान ने प्राचीन काल और प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने के बाद धर्म पर मनुष्य की निर्भरता बहुत कम कर दी है। उदाहरण के लिये डार्विन के

‘विकासवाद’ के सिद्धांत ने एक ही चोट में मानव जन्म के पुराणों के वर्णन को ‘कपोल कल्पना’ बना दिया है।

विज्ञान (बुद्धिवाद) की प्रगति ने श्रद्धापूर्वक संजोए गए धार्मिक विश्वासों को अंधविश्वास की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया है। इसने कुछ सर्वथा नये नैतिक मूल्य भी स्थापित किए हैं, आर्थिक और सामाजिक समानता का विचार, महिलाओं के अधिकार, रोज़गार, समाज कल्याण और स्वास्थ्य-रक्षा का अधिकार, विकास करने और उसे बढ़ावा देने की राज्य की जिम्मेदारी आदि। यह याद रखना ज़रूरी है कि ये विचार बुद्धिवाद और विकास की धारा में पैदा और विकसित हुए। केवल बाद में धार्मिक नेताओं ने इनको आंशिक रूप से स्वीकार किया। रूसी के अनुयायियों ने, जिन्हें फ्रांसीसी राज्यक्रांति के दिनों में इसाई विरोधी कहा जाता था, पहली बार मनुष्यों की समानता और गुलामी की समाप्ति की घोषणा की। केवल तभी इसाई मिशनरी शिविरों में गुलामी समाप्त करने पर चर्चा प्रारंभ हुई, ताकि फ्रांस के लोग नैतिक पहल न कर सके।

पिछली दो शताब्दियों के दौरान धर्म-निरपेक्ष विचारों का धर्म पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और महात्मा गांधी द्वारा समाज सुधार के कार्यों (मुख्य रूप से महिलाओं पर अत्याचारों और जातिवाद के खिलाफ) को धार्मिक ढांचे में पेश किया गया जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक सुधार हुए, हिंदू धर्म का जन्म हुआ। इस रूपांतरण का स्रोत आधुनिक यूरोपीय विचारों में था, जो उपयोगवादी-उदारवाद से समाजवादी-आदर्शवाद के मध्य था। कुछ आलोचकों ने सुधारों को धार्मिक जामा पहनाने की हमेशा निंदा की है। इसी के कारण बंगाल का नवजागरण मुख्य रूप से एक हिंदू घटना-मात्र बनकर रह गया।

मुसलमानों में जिस प्रवृत्ति को सरलता से लेकिन गलत रूप में रूढ़िवाद कहा जाता है, उसका उदय आंशिक रूप से आधुनिक मुस्लिम पक्षधरों (उदाहरण के लिये इक़बाल) और आंशिक रूप से सातवीं शताब्दी के इस्लाम को लागू करने के दावे के कारण (उदाहरण के लिये यहूदी) हुआ। आर्य समाज की तरह ही इसकी भी इतिहास से पुष्टि नहीं होती। भारत में मुस्लिम व्यक्तिगत कानून का समर्थन रूढ़िवादियों के मंच का एक प्रमुख मुद्दा है। फूट डालने की उनकी भूमिका

इन आंदोलनों की सफलता का मुख्य कारण इनकी यह मांग है कि किसी भी व्यक्ति की पहली निष्ठा या वफादारी अपने धर्म के लिये है। कुछ वर्ष पहले तक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मुख्यपत्र ‘पंचजन्य’ के संपादक और प्रकाशक आवश्यक कानूनी कागजों में यह घोषणा करते थे कि उनकी राष्ट्रीयता भारतीय नहीं, ‘हिंदू’ है। यह मालूम नहीं है कि इससे कारण क्यों उनको सरकारी डांट खानी पड़ी। अब दिलचस्प बात यह है कि यही लोग अब उन सिख उग्रवादियों की बढ़-चढ़ कर निंदा कर रहे हैं, जो सिखों को एक कौम या राष्ट्र बताते हैं। स्पष्ट है कि उग्र हिंदू राष्ट्रवाद, मुस्लिम संप्रदायवाद और सिख अलगाववाद सभी समान रूप से इस बात के दोषी हैं कि वे धर्म का सहारा लेकर लोगों को उनके सही रास्ते से बहका रहें हैं। आधुनिक सभ्यता ने दो निष्ठाओं या वफादारियों का विकास किया। अपने देश के प्रति निष्ठा और पीड़ित वर्गों और जनता के प्रति निष्ठा। चाहे हम अपने देश को एक देखना चाहते हों (न केवल सीमाओं की दृष्टि बल्कि भावना से भी), या उसको समाजवादी स्वरूप देने के लिये कार्य करना चाहते हों, अलगाववादी ताक़तों के संघर्ष हमारे कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग होगा। इन ताक़तों का आधार समुदाय या जाति को विशेष महत्व देना है। भारत में यह

शिक्षा देने की लंबी परंपरा रही है कि सभी धर्म सच्चाई का संदेश देते हैं, इसलिये वे एक हैं, सभी एक ही ईश्वर की शरण जाने का रास्ता बताते हैं, इसलिये उनमें कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्र भारत में भी यही अधिकृत सिद्धांत है। राजा रामपोहन राय और महात्मा गांधी ने भी इस भावना का सहारा लिया था। जो लोग इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं, उनकी निष्ठा सम्मान की पात्र है। इससे भी अधिक, उस उद्देश्य की प्रशंसा की जानी चाहिए जिसके लिये इसे बढ़ावा दिया जाता है यानी संप्रदायिक सद्भावना की। लेकिन कठिनाई यह है कि यह दावा इतिहास की दृष्टि से सही नहीं है। यह विभिन्न धर्मग्रंथों और परंपराओं के इतना खिलाफ है कि किसी तर्कसंगत बहस में इसे ठोस प्रमाण देकर सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसलिये यह सिद्धांत एक नारे से अधिक नहीं है, जिसके साथ बड़े-बड़े नाम जुड़े हैं। यह उन लोगों को नहीं बदल सकता जो अपने धर्म ग्रंथों और रीति-रिवाजों को पत्थर की लकीर समझते हैं।

इसका एकमात्र रास्ता यह है कि चट्टान की तरह दूढ़ रहकर धर्मनिरपेक्ष और वैज्ञानिक भावना को जन्म दिया जाए। यद्यपि हम अकसर अपने गणतंत्र के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की चर्चा करते हैं, मगर दुर्भाग्यवश हममें से अधिकांश के लिये धर्मनिरपेक्षता का अर्थ अपने धर्म को बढ़ावा देते हुए अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाने की नीति है।

इस दोहरे मापदंड को बढ़ावा देने में हमारा अपना संविधान सबसे आगे है। एक और अनुच्छेद 15 धार्मिक भेदभाव की मनाही करता है। अनुच्छेद 25 में अपनी आत्मा के आदेशों के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता और अनुच्छेद 27 में करों से होने वाली आमदनी का इस्तेमाल किसी धर्म विशेष के प्रचार के लिये करने की मनाही है। इसके विपरीत अनुच्छेद 30 में धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने और धर्म निरपेक्ष सहकारी संस्थाओं की तरह उनके लिये सरकारी सहायता प्राप्त करने का अधिकार है और अनुच्छेद 290 में इस बात की व्यवस्था है कि केरल और तमिलनाडु राज्यों की आय में प्रतिवर्ष 50 लाख रुपये से अधिक हिंदू मंदिरों के रखरखाव के लिये

दिए जाएं। अगर हम भारतीय संविधान की तुलना अमरीका के संविधान से करें तो हमें फौरन ही यह पता लग जाएगा कि हमारे दावे धर्मनिरपेक्ष नहीं हैं। हमारे यहां अमरीका के संविधान और दूसरे अन्य कई आधुनिक संविधानों की तरह राज्य और धर्म को अलग-अलग नहीं रखा गया है।

इसलिये इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वास्तविक व्यवहार में धर्मनिरपेक्षता के प्रति हमारी सरकार की निष्ठा पर भरोसा नहीं होगा। सभी नागरिकों द्वारा दिए गए करों से किए जाने वाले सार्वजनिक निर्माण कार्यों की आधारशिला रखते समय धर्मग्रंथों के उद्धरण पढ़ना और पूजा-पाठ करना आम बात हो गई है। इसी तरह धार्मिक व्यक्तियों के नामों पर सार्वजनिक संस्थाओं (यहां तक कि सरकार द्वारा स्थापित और उसकी सहायता से चलने वाले विश्वविद्यालय) के नाम भी रखे जा रहे हैं। फिर धर्म ने सूचना माध्यमों पर कब्जा जमा लिया है। आकाशवाणी से गुरुवाणी के प्रसारण की मांग (आंशिक रूप) फौरन मान ली गई, क्योंकि ऐसे धार्मिक कार्यक्रम पहले भी प्रसारित हो रहे थे। यह कहा जा सकता है कि राज्य के इन कार्यों से किसी धर्म विशेष का प्रचार करने में नाममात्र की भी सहायता नहीं मिलेगी, लेकिन असली मुद्दा यह नहीं है। राज्य जो कर रहा है, उससे यह संकेत मिलता है कि राज्य स्वयं धार्मिक विचारों से जुड़ा है और उसका समर्थन करता है। इससे न केवल सरकार पर इस बात की शंका होती है कि वह धर्मनिरपेक्ष है बल्कि धार्मिक कट्टरता राजनीतिक दृष्टि से सम्मानजनक समझी जाने लगती है।

क्या करना चाहिए?

इसलिये इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि सच्ची धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया जाए और उसे सभी के द्वारा स्वीकार किया जाए। संभवतः हमें नागरिक स्वतंत्रता संगठन के नमूने पर एक संगठन बनाना चाहिए जो धार्मिक कार्यों के लिये सरकारी पैसे, मंच और सूचना माध्यमों के इस्तेमाल पर निगाह रखें।

इसके अलावा सभी तर्क विरुद्ध बातों और अंधविश्वासों को समाप्त करके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। यह उद्देश्य केवल भौतिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी में अधिकाधिक साधन लगाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मानविकी की शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण न अपनाने से संकीर्णवाद और संप्रदायवाद के बने रहने और फलने-फूलने के लिये अवसर सुलभ होता है। बाद में वैज्ञानिक भी इन विचारों के शिकार हो जाते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में किस तरह संप्रदायवाद पैदा किया जाता है, इसे प्रकट करने के लिये इतिहास की अधिकांश पुस्तकों में आज भी प्राचीनकाल को गौरवपूर्ण ढंग से पेश करने के प्रयत्न में तथ्यों को गलत ढंग से पेश किया जाता है या पुराणों की कहानियां दी जाती हैं। यह सही है कि इतिहास लेखन में सच्चे मतभेदों का सम्मान किया जाना चाहिए पर इतिहास की पुस्तकों के जरिये संप्रदायिक भावनाओं के प्रचार की एक सीमा होनी चाहिए। इस तरह की पुस्तकों को जीव विज्ञान की किसी ऐसी पुस्तक के समकक्ष माना जाना चाहिए, जो विकासवाद के सिद्धांत के बदले सृष्टि के निर्माण के सिद्धांत का प्रचार करती है जैसा कि वास्तव में इस्लामी विज्ञान के समर्थक करते हैं।

दिमाग बदलो

जहां हम लोग नागरिकों के रूप में सरकार से यह मांग कर सकते हैं कि वह अपना आचरण और नीतियां बदले, वहीं यह भी समझने की ज़रूरत है कि असली मुद्दा लोगों का दिमाग बदलने का है। हमें लोगों से बहस करके उन्हें इस बात के लिये तैयार करना चाहिए। हम लोगों के इस अधिकार को चुनौती नहीं देते हैं कि हर व्यक्ति को अपनी पसंद का धर्म चुनने और उस पर चलने की स्वतंत्रता है। साथ ही हमें इस बात की विशेष सावधानी बरतनी होगी कि हम धर्मप्राण लोगों की भावनाओं को ठेस न पहुंचाएं। धर्म मनुष्य का निजी मामला है।

हमें चिंता इस बात की है कि धर्म का निजी क्षेत्र सार्वजनिक जीवन पर हावी न हो जाए, लोगों को एक-दूसरे के खिलाफ खड़े करने के लिये इसका उपयोग न किया जाए, धर्म पर आधारित अंधविश्वास और क्षेत्रवाद के विकास के कारण वैज्ञानिक भावना को दूषित न किया जाए। इन सभी विषयों पर बड़ी लड़ाई तो क्या छोटी-मोटी झड़पें जीतने के लिये भी हमें अधिकांश लोगों का समर्थन प्राप्त करना होगा। □

(लेखक मूर्धन्य समाजशास्त्री हैं,
15 अगस्त, 1985 अंक से)

विकल्प जो वास्तव में कारण हो

○ ज्योति बसु

वर्ष 2001 में हमारे देश की सामाजिक-राजनैतिक स्थिति बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि हम कृषि तथा उद्योग जैसे प्रमुख क्षेत्रों में उत्पादन तथा शिक्षा जैसी प्रमुख सेवाओं के नियोजन के लिये क्या नीति अपनाते हैं। मोटे तौर पर उत्पादन व सेवाओं के नियोजन के लिये दो तरह के विकल्प हो सकते हैं।

एक विकल्प तो यह है कि हम उत्पादन संपत्ति के स्वामित्व की वर्तमान असमान वितरण व्यवस्था जारी रखें, इस वितरण में कृषि और उद्योग में असमानता को बढ़ाता देखते रहें तथा इस असमान स्वामित्व वितरण पर आधारित उत्पादन कार्यक्रम बनाते व चलाते रहे। कृषि के मामले में इसका अर्थ यह है कि हम यह मानते हैं कि देश के औसत गांव में ऊपर के दस प्रतिशत लोगों के पास पचास प्रतिशत से अधिक ज़मीन है, बाकी नब्बे प्रतिशत लोगों के पास पचास प्रतिशत से कम ज़मीन है और इनमें से नीचे के बीस प्रतिशत लोग या तो भूमिहीन हैं या फिर उनके पास नाममात्र की ज़मीन है। हमें यह भी मानना होगा कि कहीं-कहीं अधिकांश ग्रीब लोग अपनी ज़रूरत के लिये कर्ज़ लेने के मामले में अमीर जर्मांदारों पर निर्भर करते हैं और मज़बूरी में मालिकों के लिये कम मज़दूरी पर काम करने और अपनी उपज कम दामों पर बेचने को बाध्य होते हैं।

इस असमान भूमि स्वामित्व ढांचे को राष्ट्रीय नियोजन की वर्तमान व्यवस्था में एक तरह से स्वीकार कर लिया गया है। देशभर में अब तक ग्रामीण ग्रीबों में जो भूमि पुनः वितरित की गई है, उसकी मात्रा बहुत ही मामूली है। सातवीं योजना में भी भूमि सुधारों के बारे यही अकर्मण्यता दिखलाई पड़ रही है, ज़मीन के असमान स्वामित्व को तय मान लिया गया है।

वर्गहित

भू-स्वामित्व ढांचे की इस स्थिति में उत्पादन के बारे में निर्णय मुख्यतः अमीर जर्मांदारों के

हाथ में होता है। इसलिये कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में उत्पादन विकास की योजना में इसी वर्ग के हितों का ध्यान रखा जाएगा। इस वर्ग को पूँजी आसानी से मिल जाती है। यह वर्ग नहीं चाहेगा कि मज़दूरी के मामले में खेती हर मज़दूरों और अन्य ग्रीब ग्रामीणों पर उसकी निर्भरता उसकी एक कमज़ोरी बन जाए। यह वर्ग उत्तरोत्तर ऐसी टेक्नोलॉजी अपनाने की कोशिश करेगा जिसमें पूँजी भले ही अधिक लगे पर मज़दूरों की आवश्यकता कम हो। दरअसल, सातवीं योजना में यह टेक्नोलॉजी न केवल पूँजीगत बन रही है बल्कि आयातोन्मुख भी हो रही है। हम तो यह मान कर चल रहे हैं कि इस टेक्नोलॉजी को अपनाकर हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर बढ़ रहे हैं लेकिन वास्तव में उसके कारण उत्पादन में मज़दूरों की ज़रूरत कम हो जाएगी जिससे बेरोज़गारी बढ़ेगी और क्रयशक्ति क्षीण होगी।

हमारे कृषि क्षेत्र में अजीबोगरीब स्थिति इसी कारण बनी है। एक तरफ तो हमारे पास अनाज का विशाल भंडार बन गया है और यह हाल में तीन करोड़ टन से ऊपर पहुंच गया। दूसरी ओर कृषि उत्पादन व्यवस्था ग्रामीण मज़दूरों को पर्याप्त रूप से खपा नहीं पाई है जिसका नतीजा यह है कि गांवों में अनेक लोग अब भी घोर ग्रीबी में दिन काट रहे हैं।

इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए मैंने नवंबर 1985 में राष्ट्रीय विकास परिषद की सातवीं योजना के बारे में हुई बैठक में ज़ोरदार अपील की थी कि गांवों और शहरों में रोज़गार कार्यक्रम में इस अनाज भंडार का अधिक से अधिक इस्तेमाल किया जाए। लेकिन अभी तक ऐसा नहीं किया गया।

परिणाम

लोगों की इस क्षीण क्रयशक्ति का असर उद्योगों के विकास पर भी पड़ेगा। इसके अतिरिक्त अगर औद्योगिक पूँजी का स्वामित्व

कुछ ही हाथों में सीमित रहा (सातवीं योजना से ये संकेत मिलते हैं) जिसमें एकाधिकार के विकास पर नियंत्रण में ढील दी गई है, लंबी अवधि की वित्त नीति संबंधी वक्तव्य भी पूँजी के केंद्रीकरण को मज़बूत बनाने का पर्याप्त संकेत देता है तो कृषि की तरह उद्योग में भी टेक्नोलॉजी अपनाने में पूँजी अधिक लगेगी और मज़दूरों की आवश्यकता कम होगी। दरअसल, संगठित औद्योगिक क्षेत्र में हर कारखाने में मज़दूरों की संख्या हाल के वर्षों में पहले ही काफी कम हो गई है। अगर यही क्रम जारी रहा तो औद्योगिक बेरोज़गारी गंभीर रूप ले लेगी और क्रयशक्ति में और गिरावट आएगी। कृषि क्षेत्र में भी यही समस्याएं स्थिति को और गंभीर बनाएगी।

आम लोगों की क्षीण क्रयशक्ति और घरेलू बाज़ार की अपनी सीमाओं के कारण औद्योगिक क्षेत्र में आम उपभोग के सामान की जगह संपन्न वर्ग के लिये उत्पादन करने की प्रवृत्ति बन सकती है। पर, बाज़ार में उस वर्ग के खरीदार भी सीमित हैं इसलिये उद्योग घरेलू आबादी की उपेक्षा करके निर्यात के लिये दबाव का सहारा ले सकते हैं। लेकिन क्या यह नीति सफल हो पाएगी?

लक्ष्य और विचलन

एक अन्य लक्ष्य से विचलन हमारे नियोजित आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका के बारे में नीति को कमज़ोर बनाने वाले हाल के फैसलों से स्पष्ट हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत मूल उद्योगों की स्थापना का प्रारंभ पांचवें दशक में द्वितीय पंचवर्षीय योजना से हुआ था। इन सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों और आमतौर पर सिंचाई, परिवहन जैसी मूलभूत सार्वजनिक सुविधाओं का विकास देश में औद्योगिक तथा कृषि विस्तार में सहायक रहा है। अगर इन सार्वजनिक आधारभूत सुविधाओं की तालिका तैयार की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा जिस राज्य या अंचल में ये सुविधाएं बढ़ी, वहां उद्योग और

कृषि उत्पादन भी निश्चित रूप से बढ़ा है। इस आधार पर हमारी नीति सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर ज़ोर देने की होनी चाहिए थी। प्रबंध में कामगारों को और प्रभावी ढंग से शामिल करके इस क्षेत्र की कार्यकुशलता सुधारने और इस क्षेत्र के लाभ आम जनता तक पहुंचाना सुनिश्चित करने की होनी चाहिए थी। लेकिन हुआ इसके विपरीत है और हमने हाल में जो नीति अपनाई है उससे इस क्षेत्र का विस्तार कम होगा और इसकी रोज़गार उत्पादन क्षमता घट जाएगी। यह बात योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिये किए गए प्रावधान से स्पष्ट होती है। अर्थव्यवस्था में निजीकरण के समर्थन में अनेक नीति संबंधी उपाय किए गए हैं। अगर निजीकरण की यह प्रवृत्ति जारी रही तो इकीसर्वी शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक पूँजी के स्वामित्व ढांचे में धोर विषमता की स्थिति बन जाएगी, कामगारों की कम ज़रूरत वाली लेकिन पूँजी के अधिक निवेश वाली टेक्नोलॉजी आ जाएगी, रोज़गार के अवसर सीमित हो जाएंगे, लोगों की क्रयशक्ति कम हो जाएगी।

शिक्षा नीति के बारे में केंद्र सरकार द्वारा हाल में जारी दस्तावेज़ उत्पादन नियोजन की इसी नीति से संबद्ध लगता है।

असमान स्वामित्व ढांचे के कारण उत्पादन व्यवस्था पूँजीगत टेक्नोलॉजी की तरफ झुक रही है। इस उत्पादन नीति का शिक्षा के संदर्भ में अर्थ यह है कि इस टेक्नोलॉजी को चलाने के लिये कुछ सुविधा संपन्न लोगों को अलग प्रशिक्षण सुविधाएं दिलाना ज़रूरी है। इसके फलस्वरूप विशाल जनसमूह के लिये शिक्षा की उपेक्षा कर दी जाएगी। यही बात नयी शिक्षा नीति के दस्तावेज़ में झलकती है जिसमें तथाकथित आदर्श स्कूलों और कुछ सुविधा प्राप्त लोगों के लिये अलग केंद्रों पर ज़ोर दिया गया है और कई वर्षों में पहली बार सभी लोगों को प्राथमिक शिक्षा दिलाने के लक्ष्य तय करने की उपेक्षा की गई है। आजकल देश को इकीसर्वी शताब्दी में ले जाने की बात करना फैशन-सा बन गया है। लेकिन प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक को दिलाने का लक्ष्य निश्चित नहीं किया गया है और केवल कुछ लोगों के लिये आदर्श विद्यालय खोलने की जल्दबाजीपूर्ण सुझाव दिया गया है। निरक्षरता दूर करने की यह विचित्र शिक्षा नीति है। इसके परिणाम क्या होंगे। हमारी राय में यह

बड़े शर्म की बात होगी जब कि हम वर्ष 2001 में पहुंचें तो गलत प्राथमिकताओं के कारण हमारी अधिकांश जनता निरक्षर हो या फिर मूल शिक्षा की सुविधा से वंचित हो। उत्पादन और सेवाओं के नियोजन के बारे में यह पूरा दृष्टिकोण अधिसंख्य जनता की आकांक्षाओं के बिल्कुल विपरीत है। हमें सशक्त और संगठित भारत बनाना होगा। इसके लिये प्रत्येक राज्य के आर्थिक ढांचे को मज़बूत बनाना होगा। तभी भारत, केंद्र और राज्य शक्तिशाली हो सकते हैं। हम चाहते हैं कि हमारी युवा पीढ़ी इकीसर्वी शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते उन बंधनों को तोड़ डाले जो धर्म, जाति आदि के नाम पर लोगों को एक-दूसरे से अलग करते हैं। इसके लिये हमें एक ढांचा तैयार करना होगा जिसमें लोगों की उत्पादन प्रक्रिया में भागीदारी समानता पर आधारित हो। यह काम हम मौजूदा सामाजिक-आर्थिक सीमाओं के भीतर ही रह कर उत्पादन और सेवाओं के नियोजन के लिये वैकल्पिक दृष्टिकोण अपनाकर कर सकते हैं।

विकल्प

मौजूदा सामाजिक-आर्थिक ढांचे के भीतर यह वैकल्पिक दृष्टिकोण आम जनता के लोकतांत्रित अभियानों में निहित शक्ति के आधार पर आरंभ होगा और हमें इसके अंतर्गत उद्योग और कृषि उत्पादन संपत्ति के और अधिक समान वितरण की अधिक से अधिक कोशिश करनी होगी। कृषि में यह प्रयास फिर भूमि सुधारों से शुरू होंगे।

यह काम सहानुभूति या दया के नाम पर नहीं बल्कि मेहनतकश खेतिहारों के बढ़िया उत्पादन में योगदान पर होगा। इन भूमि सुधार उपायों के साथ-साथ अन्य सुविधाएं जैसे - सिंचाई सुविधा, कृषि उपकरण और बिक्री-खरीद जैसी अन्य सुविधाएं भी सुलभ करानी होंगी। भूमि सुधार के फलस्वरूप कृषि के मामले में कोई भी निर्णय गरीब किसानों के हितों को ध्यान में रख कर किए जाने चाहिए, क्योंकि ज़मीन में मेहनत यही किसान करते हैं। सब जानते हैं कि गांवों में उपलब्ध प्रचुर संसाधनों का पूरा उपयोग नहीं किया जाता। नये दृष्टिकोण में टेक्नोलॉजी तो निश्चित रूप से आधुनिक ही होनी चाहिए लेकिन इसके अंतर्गत श्रम और स्थानीय संसाधनों का बढ़िया से बढ़िया उपयोग करना श्रेयस्कर होगा। इस टेक्नोलॉजी के उपयोग

से बेरोज़गारी की समस्या हल करने में मदद मिलेगी तथा लोगों की क्रयशक्ति बढ़ेगी। क्रयशक्ति बढ़ाने से उत्पादन कार्यक्रम भी प्रभावी होगा क्योंकि इससे उत्पादन और प्रभावी मांग में संतुलन सुनिश्चित होगा। लोगों की क्रयशक्ति बढ़ने से न केवल आम उपयोग की वस्तुओं के उद्योगों का विस्तार होगा बल्कि इन वस्तुओं के उत्पादन के लिये ज़रूरी मशीनें और बीच का सामान बनाने वाले उद्योगों के विस्तार का आधार भी बनेगा।

पश्चिम बंगाल में सफलता

हम बड़े शालीन भाव से यह बताना चाहते हैं कि पश्चिम बंगाल में पछले करीब नौ वर्षों में उपर्युक्त प्राथमिकताओं को ध्यान में रख कर नियोजन का यह वैकल्पिक दृष्टिकोण अपनाने के प्रयास किए गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्वाचित पंचायतों और शहरी क्षेत्रों में निर्वाचित नगरपालिकाओं के माध्यम से आम जनता को व्यवस्थित ढंग से योजना परियोजनाओं की तैयारी और उनके कार्यान्वयन में शामिल किया गया है। हाल के वर्ष में योजना तैयारी और कार्यान्वयन में प्रक्रिया का और अधिक विकेंद्रीकरण करके इसे समन्वित किया गया है। इसके लिये जिला स्तर पर जिला योजना समितियां और खंड स्तर पर खंड योजना समितियां गठित की गई हैं और इनमें पंचायतों और अन्य संस्थाओं से निर्वाचित प्रतिनिधि और विभिन्न विभागों के संबद्ध अधिकारी शामिल किए गए हैं।

नियोजन का यह वैकल्पिक दृष्टिकोण अपनाने, लोगों में आकांक्षाओं के अनुरूप प्राथमिकताओं का पता लगाने, ऊपर से नीचे तक के स्तर पर समुचित प्रावधान पहुंचाने और लोगों को नियोजन प्रक्रिया में शामिल करने से ही लोगों में विकास की समूची प्रक्रिया में भागीदारी की भावना पैदा की जा सकेगी। उनके बीच भेद की दीवारें भी तभी तोड़ी जा सकेंगी और देश की दूसरी पीढ़ी राष्ट्रीय एकता और अखंडता की भावना लेकर इकीसर्वी शताब्दी के लिये तैयार हो सकेगी।

कहना न होगा कि हमारे समाज में निहित स्वार्थ वाले तब वर्ष 2001 में वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था लाने के रास्ते में रुकावट डालें। लेकिन आम लोगों के संगठित लोकतांत्रिक संघर्ष से इन बाधाओं को दूर करना कठिन नहीं होगा। □

(लेखक पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ हैं; 15 अगस्त, 1986 अंक से)

और भी अच्छे तरीके से आगे बढ़ा जाए

○ एल.के. झा

अगले पंद्रह वर्षों में हम 21वीं शताब्दी में होंगे। 2001 स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर नयी दिल्ली में जब प्रधानमंत्री लाल किले पर राष्ट्रीय ध्वज फहराएंगे उस समय भारत की क्या तस्वीर होगी?

इस प्रश्न का उत्तर दो तरीके से दिया जा सकता है। एक तरीका यह है कि हम अपनी पिछली गतिविधियों के आधार पर भविष्य की तस्वीर बनाएं। दूसरा तरीका यह है कि हम इस बात पर विचार करें कि अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये विकास कार्यों को किस प्रकार इच्छित शक्ति प्रदान करें? केवल यह मानना काफी नहीं होगा कि भविष्य में ये चीजें क्या शक्ति ग्रहण करेंगी? इनमें पहला तरीका नियतिवादी है, जबकि दूसरा एक पक्के निश्चय की मांग करता है। जिन लोगों को योजना में विश्वास है, उन्हें दूसरा तरीका पसंद आएगा।

हम जब स्वतंत्र हुए, उस समय भारत वनस्पति तेल निर्यात करने वाला सबसे बड़ा देश था, क्योंकि उस समय देश में बहुत कम लोग ऐसे थे जो अपनी रोज़ाना की खुराक में तेल, आदि का प्रयोग कर पाते थे। आज दुनिया के ऐसे देशों में हम अग्रणी हैं जो वनस्पति तेल का आयात करने लगे हैं बल्कि लोग तो पहले भी काफी तेल इस्तेमाल करते थे। यह केवल इसलिये हुआ है कि अब बहुत बड़ी संख्या में लोग अपनी रोज़ाना की खाद्यान सामग्री में इसे शामिल करने लगे हैं। चीनी, जूते, साइकिल, बिजली के पंखे और यहां तक कि स्कूटर जैसी चीजों के बारे में भी यह कहा जा सकता है। यह कहना वास्तविकता से मुंह मोड़ना होगा कि विकास के लाभ गरीबों तक नहीं पहुंचे हैं।

जो लोग शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के अंतर को दर्शाते हैं, उनके दिमाग में भी कुछ ऐसी ही गलत धारणा बैठी हुई है। उदाहरण के लिये अक्सर कहा जाता है कि देश के केवल 40 प्रतिशत गांवों में ही बिजली पहुंच सकी

है। ऐसे लोगों को यह पता नहीं है कि अमरीका में द्वितीय विश्व युद्ध के कई वर्षों बाद इतने गांवों का विद्युतीकरण हो पाया था। 1933 में अमरीका के 90 प्रतिशत गांवों में बिजली नहीं पहुंच पाई थी। वैसे ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम अपने गांवों में बिजली के इस रिकार्ड पर आत्मतुष्ट होकर बैठ जाएं।

यह सब कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि मैं गरीबी को दूर करने के लिये विशेष प्रयासों की आवश्यकता के सुझाव नहीं दे रहा हूं। बिल्कुल इन प्रयासों की आवश्यकता है।

सबसे पहली ज़रूरत

गरीबी से लड़ने तथा देश के लिये हमारे पास जो मुख्य साधन है, वह है आत्मविश्वास। हमें अपनी कमियों पर ही बोलते रहने की बजाय अपनी उपलब्धियों पर गर्व करने की भावना को जन्म देना चाहिए। इस शताब्दी के पहले पचास सालों में भारतीय अर्थव्यवस्था में स्थिरता विद्यमान रही। ठीक इसके विपरीत, जब से हमने योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया अपनाई है, 1950 से 1980 के बीच हमारी औसत वार्षिक चक्रवर्ती वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत रही है। ठीक है कि हमें इससे ज्यादा बेहतर कार्य करना चाहिए था। लेकिन विकास के अपने आरंभिक सालों में विकसित देशों की जो वृद्धिदर थी, उसकी अपेक्षा हमारी यह वृद्धिदर बहुत कम नहीं है।

एक ओर जहां हमें अपनी उपलब्धियों को कम नहीं आंकना चाहिए, वहीं दूसरी ओर हम तुष्ट होकर भी नहीं बैठ सकते। इसमें पहले कि हम यह दावा करें कि हमने देश को गरीबी की संक्रमण से मुक्त कर लिया है, हमें अभी काफी लंबा रास्ता तय करना है।

कमज़ोरियों से कैसे निवाट

इस लक्ष्य को पूरा करने लिये कि अब तक जो विकास की गति हमने हासिल की है उस पर निर्भर करना ही काफी नहीं होगा। हमें प्रगति की रफ्तार तेज़ करनी होगी, यद्यपि आमतौर पर हमारी उपलब्धियां ठीक ही नहीं,

बल्कि प्रशंसनीय भी रही हैं। अभी हमारे अंदर अनेक कमियां और कमज़ोरियां शेष हैं, जिन्हें हमें दूर कर लेना चाहिए।

जब हमने योजना शुरू की, हमारे मार्ग में बचत की कमी सबसे बड़ी बाधा थी। कम आय वाले लोग बहुत कम बचत कर पाते थे। बचत का स्तर सकल घरेलू उत्पाद से 10 प्रतिशत कम था। जबरदस्त प्रयासों के द्वारा, जिनमें लोगों के ऊपर भारी कर लगाए गए, आठवें दशक के मध्य तक बचत की दर को दुगुने से अधिक करके सकल घरेलू उत्पाद के 20 प्रतिशत से अधिक तक लाया गया। लेकिन उत्पादन की दर दुगुनी नहीं हुई। इसकी बजाय पूंजी उत्पादन के अनुपात में वृद्धि हुई।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनेक नियंत्रणों और नियामक उपायों से पूंजी उत्पादन के अनुपात पर प्रतिकूल असर पड़ा। वैसे ये सभी नियंत्रण नेक इरादों से ही लगाए गए थे। अगर अन्य बातों का जिक्र न भी करें और केवल निजी या सार्वजनिक क्षेत्र की किसी अच्छी परियोजना पर निर्णय लिये जाने में जितना समय लगता है, उसी पर ध्यान दें तो पता चलता है कि इन परियोजनाओं के शुरू होते-होते काफी समय हाथ से निकल जाता है और चीजों की कीमतों में ज़मीन-आसमान का फर्क हो जाता है। मंज़ूरी देने की प्रक्रिया में फाइल को सभी नियंत्रकों और संबंधित विभागों के चक्कर काटने पड़ते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र, काला धन

पूंजी उपयोग के अक्षम होने का पूंजी उत्पादन पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है। सार्वजनिक क्षेत्र में भारी पूंजी निवेश हुआ है। यह आशा की जाती थी कि राष्ट्र के संसाधनों को इससे महत्वपूर्ण लाभ पहुंचेगा लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक कारखानों में लाभ की बजाय नुकसान होने लगा। उनकी कार्यक्षमता में सुधार लाने के लिये जब संबद्ध मंत्रालयों ने बड़े नियंत्रण और देखरेख शुरू की तो उनकी कार्यक्षमता

और भी कम हो गई। फलस्वरूप संसाधनों में भी काफी कमी हो गई। इससे न केवल एक योजना से दूसरी योजना तक बल्कि प्रतिवर्ष कर की दरों में वृद्धि होती चली गई। कुछ ही दिनों में करों में वृद्धि करने का प्रयास भी उत्पादन की दृष्टि से प्रतिकूल सिद्ध हुआ।

प्रत्यक्ष करों की ऊंची दरों के नीचे एक ओर तो ईमानदार, वेतनभोगी वर्ग और स्वनिर्मित व्यवसायी दबते चले गए, जबकि दूसरी ओर धनी और साधन-संपन्न वर्ग ने व्यापक स्तर पर करों से बचाव और उनकी चोरी शुरू कर दी। इससे एक समानांतर अर्थव्यवस्था पैदा हो गई जिसमें वे सारे आर्थिक संसाधन जमा होते चले गए, जिन्हें विकास कार्यों में लगाया जाना चाहिए था। इस समय देश की अर्थव्यवस्था में काले धन के भयंकर अनुमान मौजूद हैं।

इन प्रतिकूल प्रवृत्तियों और कमज़ोरियों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था अपनी मौजूदा स्थिति में बनी रही। यह सचमुच संतोषजनक बात है। लेकिन साथ ही अगर इन कमज़ोरियों को दूर कर दिया जाए तो हमारी प्रगति की रफ़तार में ठोस रूप से तेज़ी आने की संभावना बनती है।

सुधार-प्रक्रिया

इसके लिये स्वर्गीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आर्थिक-प्रशासन में सुधार प्रक्रिया शुरू की, जिसमें उत्पादकता पर विशेष ज़ोर दिया गया। उनके बाद प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने इस प्रयास को और आगे बढ़ाया और सुदूर भविष्य को ध्यान में रखते हुए अनेक परिवर्तनों का आहवान किया।

राष्ट्र के नाम अपने पहले प्रसारण में श्री गांधी ने कहा कि सार्वजनिक क्षेत्र को और अधिक कारगर होना चाहिए ताकि उसके द्वारा बचत को पूंजी-निवेश में बदला जा सके। उन्होंने कहा कि निजी क्षेत्र को कीमतें कम करके और नयी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके बाज़ार में उपलब्ध समान उत्पादों के साथ टक्कर लेने की क्षमता हासिल करनी चाहिए। पिछले वर्ष (1985) जनवरी को अपने दूसरे प्रसारण में उन्होंने घोषणा की : "उत्पादकता में सुधार, आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल और क्षमता के पूरे उपयोग को राष्ट्रीय अभियान के स्तर पर लिया जाना चाहिए।" उन्होंने आगे संकेत दिया कि "निर्णय लेने की प्रक्रिया को तेज़ करने के लिये नियमों और प्रक्रियाओं का एकदम सरलीकरण किया जाएगा।" उन्होंने

निर्णय लेने की प्रक्रिया के विकेंद्रीकरण के महत्व पर भी ज़ोर दिया।

इन उपायों को हमें एकांगी रूप से नहीं देखना चाहिए। दरअसल ये एक नये विकास दर्शन के अंग हैं। इस दर्शन के अनुसार मानवीय पक्ष पर अधिक ज़ोर दिया गया है। कर्मचारी और प्रबंधक, तकनीशियन और वैज्ञानिक इस दर्शन के अनुसार अधिक महत्वपूर्ण कारक हैं। इसलिये इन पर पूंजी और विकास के संसाधन के रूप में बजट के लिये आवश्यक धनराशि से अधिक ध्यान दिया जाता है। अगर हम विकास की दर को बढ़ाना चाहते हैं और मार्ग में आने वाली वित्तीय बाधाओं की सही पहचान चाहते हैं तो सही चीजों को महत्व देने की यह प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है।

सुधार की संभावना

अनुमानतः परिवहन में बीस प्रतिशत, उद्योग में पच्चीस प्रतिशत और कृषि में तीस प्रतिशत की बचत हो सकती है। दुनियाभर की अर्थव्यवस्था में तेल पर निर्भरता कम होती जा रही है जबकि भारत में यह अब भी वृद्धि पर है। बेहतर प्रौद्योगिकी के जरिये हम काफी विदेशी मुद्रा बचा सकते हैं। इसके अलावा सौर-ऊर्जा, पवन-ऊर्जा, समुद्रीय-ऊर्जा और अन्य ऊर्जाओं जैसे ऊर्जा के गैर-परंपरागत साधनों के और अधिक इस्तेमाल से भी बचत की संभावना हो सकती है।

प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल

दूसरा क्षेत्र, जिसमें नज़रिये को बदलने की ज़रूरत है, प्रौद्योगिकी का क्षेत्र है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने योजनाबद्ध विकास के शुरू होते समय ही यह बात समझ ली थी। इसलिये उन्होंने फैसला किया था कि देश को विज्ञान और प्रौद्योगिक शिखर तक पहुंचना चाहिए और परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में अपनी क्षमताओं का विकास करना चाहिए। आधुनिक प्रौद्योगिकी को काम में लाने से और अधिक रोज़गार के अवसर पैदा होंगे। इससे और अधिक वेतन मिलेगा और लोगों के जीवनस्तर में भी सुधार होगा। मेरी यह धारणा व्यावहारिक तथ्यों और अनेक संभावनाओं तथा प्रवृत्तियों के सैद्धांतिक विश्लेषण के बाद बनी है।

इंग्लैंड में औद्योगिक-क्रांति के बाद हुई बेरोज़गारी की सच्चाई और डर दोनों ही कारणों से दंगे हुए लेकिन स्वस्थ आर्थिक नीतियों के जरिये प्रौद्योगिकी के द्वारा लोगों के वेतन में वृद्धि की गई। वहाँ प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल

से बेरोज़गारी नहीं बढ़ी। जापान में आज मजदूर संघ यंत्र-मानवों, रोबो का स्वागत कर रहे हैं। इसके विपरीत जिन देशों में प्रौद्योगिकी का विकास नहीं हो पाया है वहाँ लोगों के वेतन भी कम हैं और बेरोज़गारी भी ज्यादा है।

प्रौद्योगिकी से उत्पादकता में सुधार लाने के लिये वैज्ञानिक जानकारी हासिल होती है। जिस हद तक प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से भूमि और पूंजी की उत्पादकता में वृद्धि होती है, उसका रोज़गार के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। बल्कि उससे तो और अधिक रोज़गार प्राप्त होते हैं। श्रमिकों के उत्पादन बढ़ाने से तब तक रोज़गार के अवसर कम होने लगते हैं जब तक कि बाज़ार में उनके उत्पादन की खपत नहीं हो जाती। दूसरे शब्दों में अगर किसी भी उद्योग में श्रमिकों द्वारा उत्पादन दोगुना हो जाता है और अगर इसके साथ ही उत्पादों की बिक्री भी दुगुनी हो जाए तो इससे रोज़गार पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

विकास के नये दर्शन को नयी दिशा और नयी शक्ति प्रदान करनी चाहिए। हमें लोगों के जीवनस्तर को ऊंचा उठाने के महत्व को समझना चाहिए। उनका जीवनस्तर तभी सुधर सकता है, जबकि उन्हें उनकी सभी इच्छित चीजें विपुल मात्रा में प्राप्त हो सकें (यह नहीं कि उनकी ज़रूरतों के बारे में कोई दूसरा आदमी बताए) और अपनी ज़रूरत की चीजें खरीदने के लिये उनकी पर्याप्त आय होनी चाहिए।

उपसंहार के रूप में मैं कहना चाहूंगा कि विकास कोई रैखिक प्रक्रिया नहीं है। उसे अनेक दिशाओं में छलांग लगानी पड़ती है। यह मानकर कि व्यौक्ति हम ग्रीब हैं इसलिये ग्रीब ही रहेंगे, हम भविष्य की योजना नहीं बना सकते। जगदीश भगवती ने जापान के महान उपन्यासकार नात्प्रग्रो सोरोकी का उदाहरण दिया है जिन्हें आज से करीब सौ साल पहले यह सलाह दी गई थी कि वह वास्तुकला का अध्ययन न करे क्योंकि जापान जैसे ग्रीब देश में सेंट पॉल गिरजाघर जैसे महान स्मारक बनाने के अवसर नहीं मिलेंगे। इस तरह की पराजयवादी मानसिकता से हम 21वीं शताब्दी में नहीं पहुंच सकते। 21वीं शताब्दी में जब भारत अपना पहला स्वाधीनता दिवस मनाएगा, उस समय उसे आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था के रूप में होना चाहिए न कि विदेशी सहायता पर निर्भर एक विकासशील देश। □

एल.के. झा (लेखक संसद सदस्य एवं प्रधानमंत्री के भूतपूर्व प्रशासनिक सुधार सलाहकार थे) बर्नी (लेखक हरियाणा के राज्यपाल थे)

एमटीएनएल ट्रस्ट लाईन

हम डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणित करते हैं।

आपके विश्वास की कुंजी

सुरक्षित ई-मेल या ऑन लाईन लेन-देन व्यापार गतिविधियों, ई टैंडरिंग, ई कामर्स आदि के लिये डिजिटल हस्ताक्षर *भारत में प्रचलित सभी कम्पनियों के लिए 16 सितम्बर 2006 से ई फाईलिंग में डिजिटल हस्ताक्षर आवश्यक

शुल्क विवरण			
क्रमसंख्या	प्रमाणपत्र की श्रेणी	वैधता	दर
1.	क्लास 1 इन्डिव्युअल	1 वर्ष	250/-
2.	क्लास 1 इन्डिव्युअल	2 वर्ष	400/-
3.	क्लास 11 इन्डिव्युअल	1 वर्ष	450/-
4.	क्लास 11 इन्डिव्युअल	2 वर्ष	600/-
5.	क्लास 111 इन्डिव्युअल	1 वर्ष	1000/-
6.	क्लास 111 इन्डिव्युअल	2 वर्ष	1500/-
7.	क्लास 111 एसएसएल प्रमाण-पत्र	1 वर्ष	6000/-
8.	क्लास 111 एसएसएल प्रमाण-पत्र	2 वर्ष	10000/-

- क्रिपटो टोकन या मीडिया प्रभार अलग से होगा।
 - एमटीएनएल टेलीफोन नम्बर के लिए श्रेणी ।। प्रमाणपत्र 1/3 राशि की छूट।
 - श्रेणी । आईसीएसआई प्रमाण-पत्र 2 वर्ष के लिए 550/-रु में उपलब्ध।
- क्लास 1 प्रमाण-पत्रः जहां पहचान का प्रमाण आवश्यक नहीं वहां व्यक्तियों को वैध ई-मेल एड्रेस होने पर जारी किये जाएंगे।
 क्लास 2 प्रमाण-पत्रः जहां लेन-देन के लिये वेलीडेटिंग डेटाबेस की सूचना पर आधारित पहचान का प्रमाण पर्याप्त हो।
 क्लास 3 प्रमाण-पत्रः जहां लेन-देन के लिये उपभोक्ता की पहचान का पूरा भरोसा चाहिए।
- एमटीएनएल उपभोक्ता पंजीकरण और भुगतान ऑन लाईन कर सकते हैं।
 - डिजिटल प्रमाणपत्र उपभोक्ताओं को उसी दिन जारी कर दिया जाता है।

हम से संपर्क करें : www.mtnltrustline.com या टोल फ्री नं 01800118855 या हैल्प लाईन 011-23718637 या कॉल सेन्टर 1500 पर डायल करें।

बात करें और सर्फ करें एमटीएनएल की ब्रॉडबैंड सेवाओं के साथ



(ब्रॉडबैंड + लैंडलाईन)

विशेषताएं	ट्राई बी 250 कोम्बो प्लान	ट्राई बी 500 कोम्बो प्लान
मासिक किराया(रु)	250	500
बैंडविडथ स्पीड(केबीपीएस)	256	256
प्रतिमाह नि:शुल्क प्रयोग(एमबी)	200	500
अतिरिक्त प्रयोग प्रभार(प्रति एमबी रु0)	1.20	1.00
नि:शुल्क कॉल प्रतिमाह	100	200
अतिरिक्त कॉल प्रभार(प्रति पल्स रु0)	1.20	1.20
संस्थापना प्रभार (रु0)	500	300
एक मुश्त मोडम सुरक्षा प्रभार	500	500
मोडम सेवा प्रभार प्रति माह	50	50

* 1 जनवरी, 2007 से अपने ट्राई बैंड को 256 केबीपीएस से 2 एमबीपीएस के लिए नि:शुल्क अपग्रेडेशन कोम्बो प्लान बुक कराने के लिये आज ही 1504 डायल करें या नजदीकी संचार हाट पर संपर्क करें।

महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड

पंजीकृत निगमित कार्यालयः जीवन भारती भवन, टॉवर-1

124, कनॉट सर्कर, नई दिल्ली-110001



क्या विविधता हमारी शक्ति है

विघटनकारी शक्तियां आर्थिक असमानता का प्रतिफल

○ एस.एम.एच. बर्नी

अलगाववादी शक्तियों का सामना करने का उपाय यह है कि आर्थिक विषमताएं दूर करने के प्रयास किए जाएं, क्योंकि ये विषमताएं मानव समाज को कमज़ोर बनाती हैं और सांप्रदायिकता तथा रुद्धिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों को जन्म देती हैं

दे

श आज संकट के दौर से गुज़र रहा है। अलगाववादी शक्तियां सक्रिय हैं। हमें अपने चारों ओर ख़तरे के संकेत दिखाई दे रहे हैं। असल में हम आज इतिहास के दोराहे पर हैं और हमारा समूचा भविष्य इसी बात पर निर्भर है कि कौन-सा रास्ता चुनते हैं और चुनौती का किस प्रकार सामना करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी असाधारण सूझ़ा-बूझ से उन कठिनाइयों और चुनौतियों का बहुत पहले ही अनुमान लगा लिया था, जो आज हमारे सामने मुंह बाएँ खड़ी हैं। ऐसा लगता है कि देश की भलाई के साथ वे इस हद तक एकाकार हो गए थे कि उन्हें पहले ही अहसास हो गया था कि आगे क्या होने वाला है। उन्होंने भारत को धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में विकसित करने और लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने की योजनाएं तैयार की ताकि जो दुर्बलताएं राष्ट्रीय एकता में बाधक बन सकती हैं, वे धीरे-धीरे दूर हो जाएं। उनका विश्वास था कि भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रुद्धिवाद, धार्मिक कटूरता और जाति तथा वर्गों पर आधारित राजनीति जैसी बुराइयों को आधुनिक दृष्टिकोण विकसित करके ही

समाप्त किया जा सकता है। एकता कायम करना आज हमारी सबसे बड़ी चिंता है और इन्हीं शक्तियों के कारण समस्याएं पैदा हो रही हैं।

तर्कपूर्ण दृष्टिकोण

सामाजिक और राजनीतिक संकट के वर्तमान दौर में यदि कोई राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के सुझाव का मजाक उड़ाता है तो उसे सनकी ही कहा जाएगा। वह मान सकता है कि केवल बहसबाजी से कोई फायदा नहीं होने वाला किंतु हमें विचार-विमर्श के माध्यम से ही देशवासियों के मन में एकात्मकता और सद्भाव जगाने, विविधता में एकता के पहलुओं को उजागर करने वाले परंपरागत मूल्यों के श्रेष्ठ तत्वों को मज़बूत बनाने, देश के सौंदर्य, समृद्धि और विविधता के समान आधार पर लोगों को एक-दूसरे से जोड़ने, उन्हें एक-दूसरे के सुख-दुख में भागीदार बनने की प्रेरणा देने और एक सुदृढ़, धर्मनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था कायम करने की दिशा में आगे बढ़ना है। मेरे विचार में शिक्षा समस्त सामाजिक सुधारों की कुंजी है। राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन देने के लिये चलाएँ गए शिक्षा

कार्यक्रम का सबसे पहला काम उन अंधविश्वासों और पौंगापंथी मान्यताओं को समाप्त करना होना चाहिए जो पुनरुत्थानवादी विचारधारा से बल पाकर बार-बार हमारे सामने सिर उठाती रहती हैं। पुनरुत्थानवाद के माध्यम से कुछ लोग भावनात्मक उन्माद जगाकर और उससे लोगों के अतीत से जुड़े विचारों और भावनाओं को भड़काकर धार्मिक कटूरता को हवा देते हैं। यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान पुनरुत्थानवाद से हमें कुछ प्रेरणा मिली किंतु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि निहित स्वार्थों से प्रेरित पुनरुत्थानवाद, विचारों को संकीर्ण बनाता है और राष्ट्रीय एकता के भाव को कमज़ोर करता है।

पुनरुत्थानवाद से टक्कर लेने के लिये नेहरूजी ने लोगों में तर्कबुद्धि विकसित करने पर बल दिया। अपने मिलने-जुलने वालों को उन्होंने बर्टेंड रसेल की पुस्तकें, खासकर शिक्षा से संबंधित पुस्तकें पढ़ने का सुझाव दिया। धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपादन और शिक्षा के माध्यम से लोगों में उसे विकसित करने का नेहरू जी का दृष्टिकोण ही सांप्रदायिकता और धार्मिक कटूरता से बचने का कारगर उपाय

है। हमारे योजनाकारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शिक्षा का अर्थ केवल तकनीकी क्षमता या समाज में आर्थिक प्रगति के अवसर जुटाना नहीं बल्कि यह वह प्रक्रिया है, जिससे ऐसे स्वतंत्र बुद्धि वाले नेता, नागरिक तैयार होते हैं, जो संकीर्णता से ऊपर होते हैं। ऐसी शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन की वाहक बन सकती है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली तथ्यात्मक ज्ञान अर्जित करने की जड़ प्रक्रिया को मजबूत बनाती है। आज भी स्कूलों और कॉलेजों में जो इतिहास पढ़ाया जा रहा है, उसका काल विभाजन, हिंदू-मुस्लिम और ब्रिटिश काल के नाम से किया गया है। यद्यपि ऐसा करना एकदम अवैज्ञानिक और गैर-ऐतिहासिक है। इस तरह का काल-विभाजन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जेम्स मिल ने किया था। हमारे प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार भारतीय इतिहास को समझाने का सबसे बढ़िया तरीका उसे प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल में बांटना है।

इतिहास की व्याख्या

गांधीजी भी अच्छी तरह समझते थे कि इतिहास को सांप्रदायिक आधार पर तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने के कारण इतिहास की पुस्तकें पढ़कर युवक बहुत पथभ्रष्ट हो चुके हैं। उन्होंने कहा ‘जब तक भारत के स्कूलों और कॉलेजों में इतिहास की पुस्तकों के माध्यम से गुलत इतिहास पढ़ाया जाता रहेगा, तब तक देश में स्थायी रूप से सांप्रदायिक सद्भाव कायम नहीं हो सकता। लाला लाजपत राय ने स्वीकार किया कि इतिहास की पुस्तकें पढ़कर ही मेरे मन में इस्लाम के प्रति आदर कुछ कम हुआ है। इतिहास की इस व्याख्या के फलस्वरूप हुए भारी नुकसान के बावजूद कुछ इतिहासकार अब भी हमारे मध्यकाल को देश के दो प्रमुख धार्मिक वर्गों हिंदू और मुसलमान के बीच कटुता के काल के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि इस अवधि में सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर दोनों वर्गों में मधुर संबंध रहे, जिससे हमारा राष्ट्रीय जीवन और समृद्ध हुआ। हमें यह

महसूस करना चाहिए कि जिस रूप में हमारे पास इस समय संगीत, कला, चित्रकला, वास्तुकला और साहित्य मौजूद हैं, वह दोनों संप्रदायों के शताब्दियों के सम्मिलित प्रयासों का परिणाम है। परंतु लोग चाहेंगे कि इस तथ्य को भूल जाएं।

सांप्रदायिक इतिहासकार हमें यह विश्वास करने को कहते हैं कि मध्यकालीन इतिहास में जो युद्ध हुए, वे मात्र हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक विरोध का परिणाम थे, जबकि यह इतिहास की विकृति है। संस्कृति की धर्म-आधारित व्याख्या अपनाने और संप्रदाय के शासक की अनावश्यक प्रशंसा करने की आदत ने दोनों संप्रदायों के बीच दीवार खड़ी कर दी है और एक-दूसरे के प्रति व्यर्थ की शंका और धृणा पैदा कर दी है।

धर्म-निरपेक्षता की धारणा

सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न जिसके बारे में हमारे चिंतन में काफी भ्रम है, यह है कि राष्ट्र के रूप में हमारे जीवन में धर्म का क्या स्थान है। भारत अनेक धर्मों, भाषाओं और वर्गों का देश है। इसलिये धार्मिक बहुलता हमारे सामाजिक जीवन की सच्चाई है। धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरपन की चुनौती का मुकाबला करने के लिये ही हमारे दूरदर्शी पूर्वजों ने धर्मनिरपेक्षता का संबंध लौकिक विषयों से किया है। इसका क्षेत्र सांसारिक है, पवित्र या धर्मस्थान विषयक नहीं। धर्मनिरपेक्षता का अभिप्राय यह है कि विभिन्न धर्मों को मानने वाले नागरिक सहिष्णुता तथा सह-अस्तित्व का दृष्टिकोण अपनाएं और सरकार की नीति सभी धर्मों के प्रति समानता और निरपेक्षता की हो। इसी आदर्श का प्रतिपादन अकबर ने किया था। उसकी नीति का उद्देश्य सबके धार्मिक हितों की रक्षा करना था।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ बहु-संप्रदायवाद या सरकार द्वारा विभिन्न धर्मों को संरक्षण या समर्थन देना नहीं है और न ही इसका यह अर्थ लाग्या जाना चाहिए। सह-अस्तित्व और परस्पर सहिष्णुता की परंपरा सदियों तक हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। हमें यदि रखना होगा कि कोई परंपरा सरलता से नहीं

मिलती, उसे कठिन परिश्रम से प्राप्त करना पड़ता है। आज धर्मनिरपेक्षता का अनुसरण करने का अर्थ है बुद्ध, अशोक और अकबर से गांधी तक व्यवहार में लाई गई एकता और सद्भाव की उस समूची परंपरा को आत्मसात करना, जो हमें मिश्रित संस्कृति के रूप में विरासत में मिली है।

क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना

राष्ट्रीय एकता के विशेषज्ञों का विचार है कि राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का शिक्षा प्रक्रिया के जरिये चेतना लाने और सांस्कृतिक मेल-जोल बढ़ाने से भी अधिक महत्वपूर्ण उपाय लोगों के बुनियादी हितों की रक्षा करना है। हितों की इसी रक्षा के कारण देश के प्रति उनकी निष्ठा बलवंती होती है। यह स्वाभाविक है कि लोग उहाँ संस्थाओं के प्रति आस्था रखें, जो उनके हितों की रक्षा करती हों। राजनीतिक निष्ठा को ऐसा तत्व माना गया है जिसे लोग पारस्परिक आधार पर हितों की रक्षा के बदले में प्रदान करते हैं। देश के विकास के लिये निष्पक्ष स्थितियों का निर्माण किए बिना राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता।

अलगाव फैलाने वाली चुनौतियों का मुकाबला करने और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये हमें आर्थिक विषमताएं समाप्त करने का ज़ोरदार अभियान चलाना होगा, क्योंकि ये विषमताएं मानव समाज को कमज़ोर बनाती हैं और सांप्रदायिकता, रूढ़िवाद तथा अन्य पृथक्तावादी बुराइयों को जन्म देती हैं। मेरा हमेशा यही मत रहा है कि यदि लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो वे अलगाववादी गतिविधियों में कम उलझते हैं। हमारे अस्तित्व के लिये यह अल्पत आवश्यक है कि आर्थिक विकास का ऐसा कार्यक्रम चलाया जाए, जिससे समाज के दुर्बल वर्गों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। इससे क्षेत्रीय असंतुलन, जिसकी कई राज्य शिकायत भी करते हैं, दूर हो जाएगा। क्षेत्रीय असंतुलन के कारण धार्मिक और भाषाई कटृता जैसे दूषित तथा अलगाववादी तत्वों को बढ़ावा मिलता है। □

(26 जनवरी, 1987 अंक से)

योजना संपादक सम्मेलन : एक रिपोर्ट

योजना पत्रिका समूह के संपादकों का तीसरा सम्मेलन नवी दिल्ली में 19 व 20 फरवरी, 1987 को आयोजित हुआ। योजना आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. मनमोहन सिंह ने सम्मेलन का उद्घाटन किया तथा अध्यक्षता सूचना और प्रसारण राज्य मंत्री अजित पांजा ने की। इस दो दिवसीय सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में योजना आयोग के सदस्यों एवं सचिव के अलावा सूचना और प्रसारण मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे।

डॉ. मनमोहन सिंह का संबोधन

योजना पत्रिका समूह के संपादक सम्मेलन में आपलोगों का साथ पाकर आज मुझे अपार हर्ष हो रहा है। योजना का प्रमुख उद्देश्य लोगों में योजनाओं के चेतना पैदा करना है और नये भारत के निर्माण में इस उद्देश्य का बहुत बड़ा महत्व है। शोषण और अभाव से मुक्त एक नये भारत के निर्माण में नियोजन पूरे देश के आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है, और इस प्रक्रिया में योजना जैसी पत्रिका का अपना एक अलग स्थान है। लेकिन यह संचार का युग है। हमें अनेक साधनों से जनमानस के साथ संपर्क स्थापित करना होगा। हमें यह जानकर बहुत खुशी हुई है कि योजना अब 12 भाषाओं में प्रकाशित हो रही है। विगत वर्षों के दौरान आपने ठोस उपलब्धियां हासिल की हैं। फिर भी मैं यह कहना चाहूंगा कि हमें इन्हीं सफलताओं पर संतोष नहीं कर लेना चाहिए। योजना की प्रभावशाली पाठक संख्या है, और इससे वे सभी लोग जुड़े हुए हैं जो जन कार्यों में बौद्धिक रूप से दिलचस्पी रखते हैं। सभी विश्वविद्यालयों में बड़ी संख्या में छात्र-छात्राएं इसका अध्ययन करते हैं तथा वे

लोग भी इसे पढ़ते हैं जो देश में किसी न किसी रूप में जन कार्यों से संबंध रखते हैं। यद्यपि जनहित में योजना निश्चय ही रचनात्मक भूमिका निभा रही है, फिर भी मैं अनुभव करता हूं कि इसमें सुधार की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। और इसलिये हमारी पत्रिकाओं को यह देखना ज़रूरी है कि हम आने वाले वर्षों में पहले की अपेक्षा और बड़े पैमाने पर योजनाओं की जानकारी किस तरह लोगों तक पहुंचा सकते हैं। योजना पत्रिका में निश्चय ही योजना तैयार करने तथा उनके कार्यान्वयन में समस्याओं से संबंधित लेख बहुतायत में प्रकाशित होते हैं। लेकिन यह मैं अवश्य कहना चाहूंगा कि अब पहले की तुलना में योजना की समस्याओं पर और अधिक क्रमबद्ध तथा अनवरत विचार-विमर्श की ज़रूरत है। दूसरी बात जिसकी ओर मैं आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, वह यह कि हमारी योजना कई चरणों से गुजरी है। योजना निर्माण के आरंभिक चरण से हम मुख्य रूप से उन कार्यक्रमों पर अधिक ज़ोर देते रहे हैं जो सामान्य से नीचे स्तर पर जीवनयापन करने वालों को सीधे प्रभावित करते हैं। ग्रामी हटाओ अभियान में हमारे पास अनेको कार्यक्रम हैं। लेकिन इन कार्यक्रमों का कितने प्रभावी ढंग से कार्यान्वयन

हो रहा है? बुनियादी तौर पर इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कौन-सी समस्याएं आड़े आई हैं? मेरे विचार से इन बातों पर आयोजकों और जनता के बीच योजना एक प्रभावी माध्यम बन सकती है। योजना निर्माताओं एवं योजना से लाभन्वित होने वाले वर्ग तक परस्पर संपर्क के लिये यह पत्रिका एक सुलभ साधन प्रमाणित हो सकती है। संभवतः आने वाले वर्षों में योजना इस दिशा में अधिक कारगर भूमिका निभा सकेगी।

इंदिराजी ने एक बार स्पष्ट रूप से यह कहा था कि योजना राष्ट्रीय एकता का एक माध्यम है। नियोजन से देश के विभिन्न भागों में, विभिन्न राज्यों में पारस्परिक संबंध कायम होता है। इससे इस बात को बल मिलता है कि एक स्वतंत्र, मज़बूत और आत्मनिर्भर राष्ट्र के निर्माण में रचनात्मक रूप से एक-दूसरे पर निर्भरता की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया जाए और इस प्रक्रिया में आयोजन ही एक प्रमुख उपकरण है।

इस पूरी प्रक्रिया में, जैसा कि मैंने कहा संचार की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। और योजना जैसी पत्रिका के लिये यह बात अधिक औचित्यपूर्ण है। मुझे पूरी आशा है कि आप उन मान्यताओं के प्रति पूर्ण निष्ठावान रहेंगे

हमारे देश में पत्र-पत्रिकाओं की बड़ी भीड़-भाड़ है। कुछ ही वर्षों के दौरान बहुत-सी पत्रिकाएं बाज़ार में आई हैं। दैनिक समाचारपत्रों में समाचारों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हुआ है। इसलिये प्रतियोगिता के इस युग में आपको योजना का स्तर बनाए रखना होगा। इस क्षेत्र में ऐसी भी परिस्थितियां आ सकती हैं जिनमें प्रलोभनों से अपने-आप को बचाए रखना बहुत चुनौतीपूर्ण होगा। आशा है कि आप इस प्रयास में सफल हो सकेंगे। आपको पाठकों की आवश्यकताओं के अनुरूप स्तरीय सामग्री जुटानी होगी। आपको यह सुनिश्चित करना होगा कि आप जो कुछ भी पाठकों तक पहुंचा रहे हैं यह उच्चस्तरीय है और इसके साथ-साथ आपको यह भी देखना होगा कि खर्च के लिये हमेशा सरकारी सहायता पर निर्भर न रहें।

मैं यह नहीं समझता कि यह सरकारी अनुदान परंपरा कोई प्रेरणादायक प्रभाव छोड़ सकती है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि योजना का आर्थिक आधार सुदृढ़ हो और इसमें प्रकाशित सामग्री उच्चतम श्रेणी की हो और ये दोनों बातें साथ-साथ चलनी चाहिए। यही नहीं, चुनौतियां हमारे सामने हैं और मुझे पूरी आशा है कि सम्मेलन में अन्य बातों के साथ-साथ इन मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया जाएगा।

श्री अजित पांजा का संबोधन

इस भवन में लगभग एक वर्ष कार्य करने के बाद आज यहां दुबारा आकर मुझे बहुत खुशी हुई है। आज यहां एक और कार्य से आया हूँ। जैसा कि डॉ. मनमोहन सिंह ने अभी ठीक ही कहा कि हम जो कुछ भी करें उसके हर काम में लोगों को शामिल करना बहुत ज़रूरी है। जब तक हम उन्हें अपने काम में शामिल न करें, उन्हें न बताएं कि हम क्या कर रहे हैं, हमारी योजना कभी सफल नहीं हो सकती। ऐसा करने के लिये हमें वैचारिक आदान-प्रदान तथा जनता के साथ संवाद व संपर्क करना बहुत आवश्यक है। यह किस तरह किया जाए यह कुछ कठिन कार्य अवश्य है परंतु मुझे विश्वास है संचार माध्यमों की सहायता से 15 विभिन्न भाषा वाले 75 करोड़

लोगों तक योजना प्रक्रिया की जानकारी देना असंभव नहीं होगा। हमें जनता के साथ वैचारिक आदान-प्रदान करना ही होगा। क्योंकि जब तक हम लोगों से मिलेंगे नहीं, उन्हें यह बताएंगे नहीं कि हम क्या कर रहे हैं हम उन्हें साथ शामिल नहीं कर पाएंगे।

जब मैंने सूचना और प्रसारण मंत्रालय में प्रवेश किया तो मुझे पता चला कि कई सरकारी प्रकाशनों को बंद करने का निर्णय लिया जा चुका था, यहां तक कि कनाट प्लेस के सूचना केंद्र को भी जहां प्रतिदिन लगभग 400 लोग पढ़ने जाते थे। मैंने डॉ. मनमोहन सिंह से यह आग्रह किया कि वे स्वयं ऐसी सभी फाइलें मंगवाकर देखें और उन पर उचित कार्रवाई करें। क्या हम हर चीज को बचत के नाम पर बंद कर सकते हैं? जब लोगों को संचार माध्यम की ज़रूरत है, प्रत्येक परियोजना का मूल्यांकन, प्राप्त लाभ की दृष्टि से नहीं किया जा सकता। इससे प्राप्त लाभ बौद्धिक है, इसका अपना महत्व है। मैं इस अवसर पर यह कहना चाहूँगा कि हमें प्रत्येक क्षेत्र पर आर्थिक दृष्टि से निर्णय करने में अपने रवैये को बदलना ही होगा।

हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अब भी उपेक्षित है। पढ़ना तो दूर, वे अपना नाम भी नहीं लिख सकते। मेरा विचार है कि हमें दो अतिरिक्त पृष्ठ उन जैसों के लिये भी रखने चाहिए। एक रेखाचित्र के माध्यम से हम अशिक्षित कृषक तक अपनी बात पहुंचा सकते हैं। पोस्टर की तरह वे ऐसे चित्रों को भी आसानी से देख कर समझ सकते हैं। हमारे पास दक्ष कलाकार हैं जो खूबसूरत चित्रांकन कर सकते हैं। ये चित्र बच्चों को और, प्रौढ़ यहां तक कि कार्यक्रमों से लाभान्वित ग्रामीण माताओं को भी आकर्षित कर सकते हैं। ये उन्हें भी आकर्षित कर सकते हैं जो बिल्कुल निरक्षर हैं। इस तरह हम उन्हें किताब पढ़ने का विश्वास दे सकते हैं। उनकी समझ में आ सकने लायक दो पृष्ठ की सामग्री तो मिल ही सकती है। ये वो मूल बिंदु हैं जिन पर आप लोगों का ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूँ।

अंत में, आकाशवाणी की पत्रिकाओं की तरह कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद करने के बारे में, जिनका मूल्य एक रुपया है, जिक्र करूँगा। एक समाचारपत्र का मूल्य भी लगभग एक रुपया होता है। एक अखबार का महत्व केवल एक दो घंटे के लिये होता है। पढ़ते ही आप उसे एक ओर डाल देते हैं। हमारी मासिक पत्रिकाएं जिनमें आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी रहती है, घाटे में चलती हैं, क्योंकि बाज़ार में उनकी बिक्री बढ़ाने में किसी की रुचि नहीं है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि हर चीज को पैसों से ही नहीं तैलना चाहिए, लेकिन जहां आर्थिक लाभ की संभावना हो वहां उसकी उपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए।

मैं डॉ. शशि और उनके सहयोगियों को बधाई देता हूँ कि हमारे प्रकाशनों की बिक्री में काफी वृद्धि हुई है और उनकी लोकप्रियता बढ़ रही है। मुझे विश्वास है कि अपने प्रकाशन के 30 वर्ष पूर्ण करने के बाद योजना अगले 30 वर्षों में भी जारी रहेगी। ऐसा मैं इसलिये कह सकता हूँ क्योंकि मुझे अपने प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल द्वारा योजना के बारे में कहे गए शब्दों से प्रेरणा मिलती है, उन्होंने कहा था। जहां तक मैं समझता हूँ। योजना का उद्देश्य व्यापक प्रसार के लिये है जो हमारी सभी सामुदायिक परियोजनाओं तक जाएगी, राष्ट्रीय विस्तार, सेवा खंडों, सहकारी समितियों, पंचायतों और सभी स्वयंसेवी संस्थाओं, संगठनों तक पहुंचेगी और इस प्रकार मर्गदर्शन का उल्लेखनीय कार्य करेगी। इस अवसर पर आपलोंगों से मेरा यह अनुरोध है कि आप इस सम्मेलन में नवे-नवे सुझावों, विचारों पर चर्चा करें ताकि यह पत्रिका केवल कुछ उच्च शिक्षित लोगों की एकउद्देशीय पत्रिका ही न रहे अपितु निरक्षरों के लिये भी एक बहुउद्देशीय पत्रिका बन सके। और तब मेरा विश्वास है, कि हम खर्च की गई उस राशि के साथ न्याय कर सकेंगे जो स्वयं जनता को ही देनी होती है। □

(16-30 अप्रैल, 1987 अंक से)

हिंदी का सवाल सारी भारतीय भाषाओं का सवाल है

○ मस्तराम कपूर

अब समय आ गया है कि हम चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखें, निहित स्वार्थों के षड्यंत्र को समझें और देश को विदेशों की सांस्कृतिक तथा वैचारिक गुलामी से मुक्त करने के लिये अंग्रेजी का मोह छोड़ कर हिंदी और भारतीय भाषाओं को अपनाएं। हिंदी के साथ समस्त भारतीय भाषाओं का भविष्य जुड़ा हुआ है और भारतीय भाषाओं के साथ भारतीय संस्कृति का भविष्य जुड़ा हुआ है

हर साल हिंदी दिवस मना कर हम उस सपने की याद कर लेते हैं जिसे हिंदी स्वतंत्रता संग्राम के हमारे महान नेताओं और संविधान के निर्माताओं ने देखा था। लेकिन हर साल यह सपना पीछे होता गया और अब तो यह धुंधला भी पड़ गया है। हम यह भी नहीं कह सकते कि इस स्थिति के लिये हम किसको दोष दें।

अंग्रेजी और बढ़ी

संविधान निर्माताओं ने सोचा था कि अंग्रेजी के इस्तेमाल को धीरे-धीरे कम करके 15 सालों में उसे पूर्णतया हटा दिया जाएगा। लेकिन अंग्रेजी का इस्तेमाल बढ़ता गया, जूँ की चाल से नहीं घोड़े की चाल से और अब वह महलों और चौबारों तक सीमित नहीं है, गुरीबों की झोपड़ियों में जा घुसी है। पता नहीं यह संविधान के शब्दों के अंतर्गत हुआ या उसकी भावना के अनुसार। स्वतंत्रता आंदोलन से निकले हिंदुस्तान के एक बड़े नेता कहा करते थे, 'अंग्रेजी को हटाना केवल इसलिये ज़रूरी नहीं कि वह राष्ट्रीय सम्मान को टेस पहुंचाती है, इसलिये भी ज़रूरी है कि अंग्रेजी अविद्या और गुरीबी की जड़ है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी देश को दो हिस्सों में बांटती है - एक अभिजात वर्ग और दूसरी साधारण जनता।

लेकिन इन बातों को अब कोई नहीं सुनना चाहता। दरअसल, भाषा के मामले में बुद्धिसंगत और तर्कसंगत बात न तो आज कही जाती है और न सुनी जाती है। सारी बहस को या तो भावनापूर्ण बना दिया जाता है या सारे राष्ट्रीय मूल्यों और लक्ष्यों की उपेक्षा करके उसे नौकरियों की बंदरवांट तक सीमित कर दिया जाता है। हिंदी के राजभाषा बनने और अंग्रेजी के हटने से हिंदी वालों को आईएएस, आईपीएस आदि की नौकरियां ज्यादा मिलेंगी और तमिल-तेलुगु या बंगाली-उड़िया वालों को कम, यही झगड़ा अब तक भाषा नीति को तय करता रहा है। आश्चर्य की बात है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में हमारे नेताओं ने जिस भाषा नीति की कल्पना राष्ट्रीय अस्मिता, विचार और संस्कृति की स्वतंत्रता, सृजनशील शिक्षा और सार्थक लोकतंत्र के उच्च आदर्शों से प्रेरित हो कर की थी, आज उसे सिर्फ ऊंचे पढ़ों के बंटवारे की वजह से ताक पर रख दिया गया है। अगर हमारे नेताओं में आम लोगों के बच्चों को रोज़गार के अवसर जुटाने की चिंता होती तो कम से कम इतना तो सोचते कि साधारण लोगों को रोज़गार के अवसर अंग्रेजी से नहीं, हिंदी और तमाम भारतीय भाषाओं के सर्वत्र

प्रयोग से ही उपलब्ध होंगे।

अपनी भाषा में सृजन शक्ति

स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं के प्रयोग का निर्णय इसलिये लिया था क्योंकि वे जानते थे कि सृजनशीलता का सीधा संबंध भाषा से होता है और सहज रूप से प्राप्त भाषा में सृजन की जितनी क्षमता होती है, वह विदेशी भाषा में हरगिज नहीं हो सकती। इसका साफ उदाहरण स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उन्हें मिला। हमारे स्वाधीनता आंदोलन में गरमी तब आई जब गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा के अंग के रूप में स्वदेशी भाषाओं का आंदोलन चला और भाषावार क्षेत्रों के आधार पर कांग्रेस समितियों का गठन हुआ। इसी बात से प्रेरित होकर उन्होंने भाषावार प्रांतों की रचना का संकल्प लिया। आशय यह था कि जब अपनी भाषाओं में देश का शासन चलेगा तो व्यक्ति और राष्ट्र दोनों की सृजनशील शक्तियों का विकास होगा और राष्ट्र तेज़ी के साथ आगे बढ़ेगा।

संपर्क भाषा

इस व्यवस्था के लिये अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में हिंदी का चुना जाना अकस्मात नहीं हुआ। 19वीं शताब्दी में ही

स्वामी दयानंद, केशवचंद्र सेन और ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे महान समाज सुधारकों ने इसे समस्त भारत के लिये संपर्क भाषा के रूप में चुना था। ये सभी अहिंदी भाषी थे। मजेदार बात यह है कि हिंदी भाषा और नागरी लिपि को अंतर्राष्ट्रीय संपर्क-सूत्र के रूप में प्रयोग करने का विचार खने वाले लोग अहिंदी भाषी थे उनके सामने आईएएस और आईपीएस की नौकरियों का सवाल नहीं था, वे केवल राष्ट्र के हित की भावना से प्रेरित थे। आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के विभाजन के बाद जब तिलक और विपिनचंद्र पाल ने देशव्यापी दौरे किए, तो उनके भाषण हिंदी में होते थे। कलकत्ता सम्मेलन का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं: “विपिनचंद्र पाल बहुत फराट से हिंदी बोलते थे किंतु तिलक को हिंदी बोलने में थोड़ी कठिनाई होती थी लेकिन बोलते हिंदी में ही थे। उन दिनों सारे देश में राष्ट्रीय रूप में जो सृजनशीलता फूटी, वह हिंदी भाषा से ही आई। अंग्रेजी में बढ़िया भाषण

करने वाले नरम दल के खेमे में एक से एक थे किंतु उनका प्रभाव कुछ मुट्ठीभर लोगों तक सीमित होता था जबकि गरम दल के नेताओं का प्रभाव आंधी की तरह सारे देश में फैल गया। आगे चलकर महात्मा गांधी ने तो हिंदी को प्रचार के राष्ट्रीय आंदोलन का एक हिस्सा ही बना दिया और उसके फलस्वरूप देश के कोने-कोने में राष्ट्रीय चेतना व्याप्त हो गई।”

जन-जन की बात

प्रश्न उठता है कि हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने हिंदी को क्यों चुना? क्या उन्हें देश की एकता का ख्याल नहीं था? अब लोग कहने लगे हैं कि हिंदी के आने से देश की एकता ख़तरे में पड़ जाएगी। उनके सामने यह सच्चाई थी कि अंग्रेजी के माध्यम से हम मुश्किल से दो प्रतिशत लोगों तक पहुंच पाते हैं। जबकि हिंदी के माध्यम से हम सारे देश के लोगों तक अपनी बात पहुंचा सकेंगे। उनका विश्वास था कि हिंदी सारे देश को एक सूत्र में बांध सकती है। इसके अलावा वे सोचते थे

कि अंग्रेजी मानसिक गुलामी की भाषा है और मानसिक गुलामी से मुक्ति हासिल किए बिना हम सही मायनों में आज़ाद नहीं हो सकते।

सभी जानते हैं कि हमारा संविधान कोई क्रांतिकारी नहीं है तथापि हमारे संविधान निर्माताओं ने परिवर्तन के लिये कुछ प्रावधान किए हैं। इनमें दो प्रावधान सर्वाधिक महत्व के हैं। एक तो जाति व्यवस्था से उत्पन्न कुंठ को दूर कर समतामूलक समाज का निर्माण करने के लिये अधिकार वंचित जातियों हेतु आरक्षण आदि के रूप में विशेष सुविधाएं और दूसरा विदेशी भाषा से उत्पन्न बौद्धिक कुंठ को दूर करने के लिए जनभाषाओं के उपयोग का संकल्प। ये दोनों निर्णय सारी व्यवस्था पर एक छोटे से वर्ग के एकाधिपत्य को समाप्त करने वाले थे। अगर इन दोनों निर्णयों को पूरी ईमानदारी के साथ लागू किया जाता तो आज भारत की गिनती विश्व के अत्यंत पिछड़े देशों में न होती।

निहित स्वार्थ

संविधान के इन दो क्रांतिकारी संकल्पों के

KALP ACADEMY IAS/PCS - 2007

PT / PT-CUM-MAINS / FOUNDATION

Proudly announces the scintillating performance by its students
Our Heart-felt Congratulations to



BASANT GARG
IAS - 2nd Rank



RACHITA BHANDARI
IAS - 6th Rank



RIDHIM AGGARWAL
114th Rank

**Batches start on
20th Jan. 2007**

Postal Guidance IAS/PCS/UGC/CSIR-NET

- | | |
|--------------------------------|---|
| ♦ History (Mains & PT) | ♦ Sanskrit (Mains) |
| ♦ General Studies (Mains & PT) | ♦ Commerce (PT) |
| ♦ Pub. Admn. (Mains) | ♦ राजनीति विज्ञान (मुख्य) |
| ♦ Sociology (PT) | ♦ सामाज्य अध्ययन (मुख्य एवं प्रारम्भिक) |
| ♦ Zoology (PT) | ♦ समाज शास्त्र (मुख्य) |
| ♦ Maths (Mains & PT) | ♦ हिन्दी साहित्य (मुख्य) |
| ♦ Maths (CSIR) | ♦ संस्कृत (UGC) |
| ♦ Life Sciences (CSIR) | ♦ समाज शास्त्र (UGC) |
| ♦ History (UGC) | |

**Admission Open for
Regular Batches 2007**

For Details Contact : E-mail - iasatkalp@yahoo.com

B-18, 1st Floor, Satija House (Opp. Aggarwal Sweets) Commercial Complex, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9

27655825, 27655826, 9891016454

YH/1/7/03

योजना, जनवरी 2007

खिलाफ आजादी मिलते ही निहित स्वार्थों के पड़यत्रों के फलस्वरूप आज आरक्षण का सवाल भी खटाई पड़ गया है और भाषा का सवाल भी। घड़यंत्र करने वाले वही वर्ग हैं जो जन्मजात विशेषाधिकारों के कारण सदियों से सुख भोगते रहे हैं। गुलामी के दिनों में भी ये वर्ग सुखी थे और आजादी में तो इनकी चांदी हो गई है। इस वर्ग ने सबसे पहले देश के टूटने और अहिंदी क्षेत्रों के पिछड़ जाने का भूत खड़ा किया जिससे डर कर कुछ लोग अपनी भाषाओं की कीमत पर भी अंग्रेजी को बनाए रखने की मांग करने लगे। उन्होंने ऐसे त्रिभाषा सूत्र की खोज की जिसे लागू करना नितांत असंभव था क्योंकि वह शिक्षा और वैज्ञानिक सोच के सारे सिद्धांतों के खिलाफ था। उन्होंने अपना दांव इतनी चालाकी से खेला कि उनके विरोधी आपस में लड़ने लगे और उन्हीं की नीतियों का समर्थन करने लगे। उदाहरण के लिये तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कषगम के जो नेता परंपरागत प्रभुत्व वाले वर्गों के खिलाफ लड़ रहे थे, वे उन्हीं वर्गों का हित साधने वाली अंग्रेजी भाषा की मांग करने लगे और अपनी जनभाषा तमिल की उपेक्षा करने लगे। आज वहां तमिल के स्कूल बंद हो रहे हैं क्योंकि झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ना चाहते हैं और तमिल माध्यम के स्कूलों में कोई अपने बच्चों को नहीं भेजना चाहता। मद्रास में पंजाबी एसोसिएशन छोटे-बड़े डेढ़ सौ के लगभग स्कूल चलाती है। कुछ समय पहले इस संस्था के मंत्री से मेरी बात हुई तो पता चला कि इन स्कूलों में करीब 90 प्रतिशत बच्चे तमिलभाषी होते हैं किंतु दूसरी भाषा के रूप में (वहां पहली भाषा अंग्रेजी है) अधिकांश बच्चे तमिल की बजाय हिंदी को चुनते हैं। उन्होंने बताया कि उन्हें कई स्कूलों में तमिल सेक्शन बंद करने पड़े क्योंकि छात्र नहीं मिले। अन्य प्रदेशों में भी यही हाल है। ज्यौं-ज्यौं अंग्रेजी फैलती जा रही है भारतीय भाषाओं के स्कूल बंद होते जा रहे हैं। कुछ समय पहले केरल की भूतपूर्व सरकार के शिक्षामंत्री ने मलयालम स्कूल धड़ाधड़ बंद होने पर चिंता प्रकट की थी। लोग अब शायद समझने लगे हैं कि अंग्रेजी के

साम्राज्य का मतलब है भारतीय भाषाओं की मृत्यु, लेकिन हिंदी विरोध किए जा रहे हैं, यह अजीब गोरखधंधा है।

जिम्मेदार कौन-सी भाषा

एक अजीब तर्क निहित स्वार्थों ने यह भी दिया कि अंग्रेजी ही तो देश का विघटन हो जाएगा। इस झूठ को बार-बार दोहराया गया है। न सिर्फ हिंदी विरोध से राजनैतिक लाभ उठाने वालों ने बल्कि तथाकथित बुद्धिजीवियों ने भी जिनकी रोजी-रोटी अंग्रेजी से जुड़ी हुई है। अब यदि हम इन 41 सालों का इतिहास देखें तो पता चलेगा कि इन वर्षों में देश लगातार विखराव और विघटन की ओर बढ़ा है। सीमावर्ती लगभग सभी राज्यों में विघटन और विखराव की प्रवृत्तियां पनप रही हैं। राष्ट्रीय एकता परिषद जो जवाहरलाल नेहरू के समय में बनी थी अब भी बनी हुई है अर्थात राष्ट्रीय एकता हमारी स्थायी समस्या बन गई है। कोई पूछ सकता है कि इसके लिये हिंदी जिम्मेदार है या अंग्रेजी जिसका साम्राज्य इन दिनों लगातार मज़बूत होता गया? भाषा का राष्ट्रीय एकता से निश्चय ही संबंध है लेकिन इस तरह नहीं जैसाकि इस देश की जनता को आज तक बताया गया है; अर्थात कुछ लोगों को कम अफसरियां मिलेंगी तो जनता में असंतोष पैदा होगा। केवल डेढ़ या दो प्रतिशत लोग इन अफसरियों के लिये पागल हैं, शेष जनता की इसमें रुचि नहीं है। वह तो रोजी-रोटी की अपनी समस्याओं से उसी तरह जूझ रही है जिस तरह आजादी के समय जूझ रही थी। इनमें से आधी आबादी तो ग्रीबी की रेखा के नीचे है और अमानवीय स्थितियों में जी रही है। इसे इन अफसरियों के बटवारे से क्या लेना-देना? इसकी रुचि तो इस बात में है कि देश के विकास और समृद्धि में उसे भी हिस्सा मिले, उनकी भी स्थिति सुधरे। अंग्रेजी भाषा इसमें कुछ मदद नहीं कर सकती। अंग्रेजी देश की जनता को आम और खास के दो हिस्सों में बांटती है और खास लोगों के लिये सारी समृद्धि को सुरक्षित करती है। यह देश की एकता के कमज़ोर होने का सबसे बड़ा कारण है। एक तरफ भयानक ग्रीबी और दूसरी तरफ अति समृद्धि, यह द्वंद्व देश की एकता का

सबसे बड़ा शत्रु है।

हिंदी और भारतीय भाषाओं को देश में उचित स्थान मिलने से यह द्वंद्व खत्म हो सकता है। शासक वर्ग और जनसाधारण की भाषा एक होने से विकास की गतिविधियों में जनता का ज्यादा सहयोग मिल सकता है। जिस तरह स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में जनभाषाओं के प्रयोग से अपार जनशक्ति, जो सोई हुई थी, मुक्त हो कर देश के उत्थान के लिये उपलब्ध हुई थी, उसी तरह आज भी उस सुप्त जनशक्ति का उपयोग, उत्पादन और विकास के कामों में किया जा सकता है। तब उन लाखों-करोड़ों युवक-युवतियों को रोज़गार मिल सकेगा जिनकी ज़िंदगी आज बेरोज़गारी के कारण नरक तुल्य बन गई है। इसके अतिरिक्त जब जनता और सरकार की भाषा एक होगी तो सरकारी विभागों से भ्रष्टाचार भी खत्म होगा क्योंकि अफसरों के कामों पर जनता की सीधी निगरानी रहेगी और वे एक अबूझ भाषा की आड़ में मनमानी नहीं कर पाएंगे। इसके अलावा जो बच्चे इस समय विदेशी भाषा के आतंक के कारण उचित शिक्षा नहीं ले पाते और बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं (इनकी तादाद स्कूल जाने वाले कुल बच्चों के अस्सी प्रतिशत के लगभग है) वे भी पढ़-लिख कर देश के विकास में योगदान कर सकेंगे।

अब समय आ गया है कि हम चीज़ों को सही परिप्रेक्ष्य में देखें, निहित स्वार्थों के घड़यत्र को समझें और देश को विदेशों की सांस्कृतिक तथा वैचारिक गुलामी से मुक्त करने के लिये अंग्रेजी का मोह छोड़ कर हिंदी और भारतीय भाषाओं को अपनाएं। हिंदी के साथ समस्त भारतीय भाषाओं का भविष्य जुड़ा हुआ है और भारतीय भाषाओं के साथ भारतीय संस्कृति का भविष्य जुड़ा हुआ है। विदेशी भाषा के चलते पिछले 41 सालों में इस देश में विदेशी संस्कृति की बाढ़ आई है और उस बाढ़ में हमारी जड़ें उखड़ रही हैं। इस बाढ़ को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक हम विदेशी भाषा से पीछा नहीं छुड़ाते। □

(लेखक विश्व पत्रकार एवं विचारक हैं;
1-15 मित्रांबर 1988 अंक से)

भूमि सुधार : एक दृष्टिकोण

भूमि सुधारों पर अमल करने के मामले में पुलिस और निचले स्तर पर राजस्व तंत्र भी नकारात्मक रवैया अपनाए रहता है। यह प्रायः भूमि सुधारों के लाभभोगियों की सुरक्षा करने की बजाय जमीदारों के प्रति पक्षपात करता है

भारत के स्वाधीन होने के तुरंत बाद भूमि सुधार नीति अपनाई गई जिसका उद्देश्य कृषि संबंधों का फिर से ढांचा तैयार करना था ताकि शोषण को खत्म किया जा सके तथा ज़मीन का और समान वितरण किया जा सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उपाय शुरू किए गए :

- बिचौलिये, जमीदारों को समाप्त करना।
- काश्तकारों तथा बटाईदारों की खेती की सुरक्षा की व्यवस्था और लगान का विनियमन, जिसका प्रमुख उद्देश्य उन्हें स्वामित्व के अधिकार प्रदान करना था।
- कृषि भूमि जोत पर ज़मीन की सीमा लागू करना और फालतू ज़मीन को भूमिहीन कृषि मज़दूरों तथा छोटे-छोटे किसानों में उसका वितरण।
- कृषि जोतों की चक्कबंदी।
- ज़मीन के दस्तावेज़ को आधुनिक बनाना तथा उसका रखरखाव।

बिचौलिये जमीदार

देश में कहीं-कहीं ऐसे स्थान हैं जहां बिचौलिये जमीदारों की प्रथा अभी तक समाप्त नहीं की जा सकी है। इनमें बिहार के भागलपुर जिले में पानी के अधिकारों पर जमीदारी, गोवा में 'कम्बूनिडेड' मेघालय में जोतदारी, सार्वजनिक प्रकार के धार्मिक तथा धर्मादा संस्थाओं, व्यक्तिगत सेवा जमीदारी जिसे उड़ीसा में न्यासी बस्तियां (ट्रस्ट इस्टेट) कहा

जाता है, उत्तर प्रदेश में कुछ स्थानों तथा महाराष्ट्र देवस्थान इनाम आदि शामिल हैं। कुछ राज्यों में बिचौलियों को समाप्त करने के लिये वैधानिक उपायों को चुनौती दी गई है तथा ऐसे कुछ मामले उच्च न्यायालयों/उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन हैं।

काश्तकारी सुधार

कई राज्यों में काश्तकारी सुधार उपायों के संबंध में वैधानिक प्रावधान लागू किए गए हैं, जिनमें काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार दिया जाना अथवा जमीदारों से ज़मीन के स्वामित्व को प्राप्त कर लिया है और उसे कुछ काश्तकारों को स्थानांतरित कर दिया गया है। इसके लिये कुछ मामूली रकम या दर राज्य को अदा करनी होती है।

भूमि सुधारों के लिये पंचवर्षीय योजनाओं में तीन प्रमुख मार्गनिर्देश दिए गए हैं। ये हैं :

- लगान कुल उत्पाद के 1/5 या 1/4 के स्तर से अधिक नहीं होना चाहिए।
- काश्तकारों को उस ज़मीन में स्थायी अधिकार मिलना चाहिए जिसे वे जोतते हैं। ज़मीन के मालिक को सीमित अधिकार दिए जाने पर निर्भर करता है।

● जिस ज़मीन को फिर इस्तेमाल में नहीं लाना हो, जिसमें काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार देकर ज़मीदार-किसान संबंध को समाप्त कर देना चाहिए।

पिछली सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान इन उपायों पर अमल करने के दौरान

निम्नलिखित खामियां सामने आई हैं :

- पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, जम्मू-कश्मीर तथा आंश्र क्षेत्र जैसे इलाकों में लगान निर्धारित नहीं किया गया है। उचित लगान निर्धारित करने के लिये अनेक काश्तकारी कानूनों के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया काफी विस्तृत है। किसी भी हालत में उचित लगान के संबंध में प्रावधान काश्तकारों के लिये इतने प्रभावशाली नहीं हैं जिससे काश्तकार को सुरक्षा उपलब्ध हो।
- काश्तकार के लिये जहां सुरक्षा का प्रावधान है वहां भी काश्तकार के लिये आसानी से काश्तकारी के अधिकार का दावा करना अत्यधिक कठिन है क्योंकि अधिकतर पट्टे मौखिक और अनौपचारिक हैं। काश्तकारों को यह भय है कि यदि वे कानून के अंतर्गत अपने अधिकारों की मांग करते हैं तो उन्हें ज़मीन से बेदखल कर दिया जाएगा और उनके ऊपर तरह-तरह के अत्याचार होने लगेंगे जिससे प्रशासन उनकी रक्षा नहीं कर पाएगा।
- आम धारणा यह है की काश्तकारों कि कुल संख्या का बहुत कम प्रतिशत ऐसा है जो स्वामित्वाधिकार खरीदने के हक़दार थे। वास्तव में वे इसे प्राप्त करने में सफल रहे हैं। जमीदारों ने काश्तकारों पर दबाव डालकर खरीद के अधिकार के प्रावधान को निष्प्रभावी बनाया। कई मामलों में खरीद को अंततः

निष्प्रभावी घोषित किया गया क्योंकि काश्तकार खरीद मूल्य अदा करने में विफल रहे।

कृषि जोतों की सीमा निर्धारित करना

बुनियादी भूमि सुधार का एक प्रमुख उद्देश्य ज़मीन का और समान वितरण करना था। इन उद्देश्यों को पूरा करने का मुख्य माध्यम था, ज़मीन पर सीलिंग (सीमा-निर्धारण) लागू कर देना जिसके अंतर्गत जर्मांदार को एक निर्धारित मात्रा में ज़मीन रखने की अनुमति दी जाती है। उससे अधिक की बकाया या अतिरिक्त ज़मीन को भूमिहीनों में पुनर्वितरण के लिये निर्धारित कर दिया जाता है।

सहमति प्राप्त सीलिंग की सीमा तथा सीलिंग कानूनों में विभिन्न खामियों की अनुमति दे दिए जाने के कारण पुनर्वितरण के लिये पर्याप्त फालतू भूमि का अधिग्रहण करना संभव नहीं हो सका। जितनी ज़मीन फालतू घोषित की गई है और जो उलझनों तथा मुकदमें से मुक्त है, वास्तव में वितरित की जा चुकी है।

इस बात की व्यापक शिकायतें मिली हैं कि सीलिंग कानूनों के अंतर्गत ग्रामीण ग्रीब लोगों को आवंटित भूमि उनके कब्जे में नहीं है। कुछ मामलों में यह भी आरोप लगाया गया है कि लाभभोगियों के लिये पट्टे जारी किए गए लेकिन पट्टों में जो ज़मीन दिखाई गई, वास्तव में उनको नहीं दी गई। अनेक मामलों में ग्रामीण ग्रीब लोगों को आवंटित भूमि के मामले में अधिकार के दस्तावेज़ में उसके अनुरूप परिवर्तन नहीं किए गए। यह भी अनुभव रहा है कि सीलिंग के बाद प्राप्त भूमि की वजह से ग्रामीण ग्रीबों को तत्कालीन जर्मांदारों ने मुकदमेबाजी में घसीट लिया। वे ग्रीब अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। अतिरिक्त सीलिंग भूमि के आवंटियों को तंग भी किया जाता है और अपनी ज़मीन को जोतने से रोक दिया जाता है। समय-समय पर राज्यों को यह सुनिश्चित करने की सलाह दी जाती है कि सीलिंग से प्राप्त अतिरिक्त भूमि के आवंटियों को उनकी ज़मीन से वंचित न किया जाए लेकिन स्थिति में बहुत मामूली सुधार

हुआ है।

ज़मीन का उपयोग

सीलिंग कानून के अंतर्गत जो ज़मीन आवंटित की जाती है वह प्रायः खराब किस्म की होती है और उससे अच्छी उपज लेने के लिये उसमें भारी निवेश और क्रम लगाने की आवश्यकता होती है। गांवों के ग्रीब लोगों के पास इसके लिये इतने संसाधन नहीं होते हैं। केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना के अंतर्गत सीलिंग के बाद प्राप्त भूमि के आवंटियों के लिये 2,500 रुपये प्रति हेक्टेयर की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई गई। लेकिन देखा गया है कि इस योजना के अंतर्गत प्राप्त धन को लेने के लिये राज्य आगे नहीं बढ़ रहे हैं क्योंकि योजना के अंतर्गत उहें भी 50 प्रतिशत रकम अपने पास से लगानी पड़ती है। इसलिये इस योजना से बहुत सारे आवंटियों को लाभ नहीं पहुंच पाया है।

हमारी न्यायिक प्रणाली में काग़ज़ी गवाहियों पर बहुत ज्यादा निर्भरता रहती है जिसके परिणामस्वरूप यह सिद्ध करना बहुत कठिन हो जाता है कि कौन-सा बेनामी लेन-देन ऐसा है जिसमें इरादा अच्छा नहीं रहा है। सभी ज़मीन के बारे में ज़ोर इस बात पर आ रहा है कि जो ज़मीन की जुताई करने वाला है उसी व्यक्ति के अधिकार को माना जाए। ऐसी स्थिति में बेनामी लेन-देन के प्रभावों से बचने का व्यावहारिक तरीका शायद यह सिद्ध करना हो सकता है कि वास्तव में उस पर खेती करने वाला व्यक्ति कौन है? यह कार्य दस्तावेज़ी सबूतों के आधार पर नहीं किया जा सकता बल्कि खोतों में जाकर सही जांच-पड़ताल करने से ही पता चल सकता है। यहां इस मामले में भी कई व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके लिये केवल प्रशासनिक तंत्र ही पर्याप्त नहीं है। भले ही कोई न्यायिक अधिकारी क्यों न हो उसे भी यह निश्चित करना मुश्किल हो जाता है कि वास्तव में ज़मीन पर खेती करने वाला कौन व्यक्ति है। इतना ही नहीं उपयुक्त अदालत या न्यायाधीकरण में इस तथ्य को सिद्ध करना भी ज़रूरी होता है। काग़ज़ी प्रमाण

के अभाव में यह केवल मौखिक साक्ष्य या गवाहों के द्वारा ही की जा सकती है। ग्रामीण समाज में जिस प्रकार की व्यवस्था है, वहां काश्तकारों या बटाइदारों के लिये केवल गवाहियों या साक्ष्यों के आधार पर ज़मीन पर अधिकार के अपने दावे को सिद्ध करना बहुत मुश्किल काम हो जाता है, विशेषकर जब वह अत्यधिक प्रभावशाली व साधनसंपन्न भू-स्वामियों से चारों ओर से घिर जाता है।

आवास अधिकार

ऐसे अनेक भूमिहीन लोग हैं जिनके पास सिर छिपाने को अपना धर या छत नहीं है। वे या तो अन्य लोगों की ज़मीन पर निर्मित मकान में रहते हैं या ज़मीन के मालिकों द्वारा उपलब्ध कराए गए धर में रहते हैं जिसके बदले में उन्हें अनेक प्रकार की बेगार करनी पड़ती है। इनमें से कुछ लोगों के पास तो मकान बनाने के लिये ज़मीन तक नहीं होती। कुछ के पास यदि ज़मीन का टुकड़ा है तो उस पर झोपड़ी बनाने के लिये कोई साधन भी नहीं है। एक योजना है जिसके अंतर्गत भूमिहीन ग्रामीण ग्रीब लोगों को विकसित आवास स्थल आवंटित किए जाते हैं जो या तो सरकारी भूमि पर होते हैं या इस उद्देश्य के लिये अधिगृहीत भूमि पर होते हैं। कुछ राज्यों ने ऐसे लोगों की सुरक्षा के लिये कानूनी प्रावधान किए हैं जो अन्य लोगों की ज़मीन में अपने मकान बनाकर गुजर-बसर कर रहे हैं। परंतु सभी राज्यों ने ऐसे सुरक्षात्मक कानून नहीं बनाए हैं।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों के काफी हिस्से में ज़मीन के प्रलेख नहीं हैं और ज़मीन के अधिकार तथा हितों के बारे में प्रलेख तैयार करने के लिये अभी तक कोई संगठित प्रबंध नहीं किए गए हैं। इन इलाकों में भूमि प्रबंध प्रणाली में काश्त और खेती करने के व्यापक प्रबंध हैं जो विभिन्न जनजातियों, उप-जनजातियों तथा कबीलों की प्रथाओं और रीति-रिवाजों के आधार पर बने कानूनों पर निर्भर हैं। किसी प्रकार का सर्वेक्षण करने तथा बंदोबस्त करने के किसी प्रयास का इन इलाकों में रहने वाले लोग ज़ोरदार

विरोध करते हैं। इन इलाकों के रहने वाले आदिम निवासी तथा उनके नेता इस बात का ख़तरा महसूस करने लगते हैं कि यदि उनकी ज़मीन का सर्वे किया गया और कोई बंदोबस्त किया गया तो उनके अधिकारों का क्षण या हास हो जाएगा।

जोतों की चकबंदी

भूमि के बिखरे हुए जोतों की चकबंदी गांव स्तर पर बेहतर विकास योजना तथा कृषि में कुशलता और अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिये हालांकि आवश्यक है लेकिन वास्तव में पुनर्वितरण का उपाय नहीं है। यह वर्तमान अधिकारों के आधार पर ज़मीन को महज सुव्यवस्थित करना है। लेकिन अधिकतर राज्यों ने इस मामले में कोई उत्साह नहीं दिखाया है। कुछ राज्यों ने इसे स्वैच्छिक रूप प्रदान किया है और इसके लिये कोई कानून नहीं बनाया है। या पहले से बने कानून को परे रखा हुआ है।

केवल पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में इस कार्यक्रम ने पर्याप्त प्रगति की है।

उड़ीसा, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि में भी चकबंदी का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया गया है लेकिन अभी तक केवल 1471 लाख एकड़ ज़मीन की चकबंदी की जा सकती है जो कि कुल कृषि भूमि का मात्र एक छोटा हिस्सा है। ज़मीन पर बढ़ते हुए भारी दबाव तथा कृषि क्षेत्र के बाहर वैकल्पिक रोज़गार के अवसरों की कमी के बावजूद इस कार्यक्रम में बहुत प्रगति नहीं हुई है। आमतौर पर यह आशंका की जाती है कि चकबंदी मामले में ज्यादा प्रभावशाली और बड़े ज़मीदारों का ही आमतौर पर पक्षपात किया जाता है। इसलिये छोटे भू-स्वामी यह महसूस करते हैं कि उनके साथ उचित न्याय नहीं हो पाएगा।

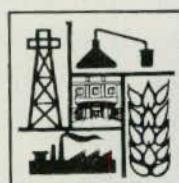
भूमि सुधारों पर अमल करने के मामले में पुलिस और निचले स्तर पर राजस्व तंत्र भी

नकारात्मक रवैया अपनाए रहता है। यह प्रायः भूमि सुधारों के लाभभोगियों की सुरक्षा करने की बजाय ज़मीदारों के प्रति पक्षपात करता है।

मुकदमेबाजी और गांव के धनी लोगों द्वारा कानूनी प्रक्रियाओं को अपने ढंग से चला लेने की समस्या भूमि सुधारों पर अमल करने के मामले में एक गंभीर रुकावट रही है। न्यायिक तथा राजस्व प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन किए जाने चाहिए जिससे अधिकतर मामलों को ग्राम अथवा पंचायत स्तर पर तेज़ी से निपटा लिया जाए और साधारण तरीके से अधिक से अधिक न्याय उपलब्ध हो सके।

यह बात स्पष्ट है कि ग्रामीण ग्रामीण लोगों के संगठनों, स्वयंसेवी एजेंसियों तथा अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं से सहयोग और सक्रिय सहायता लिये बिना भूमि सुधारों के कार्यान्वयन के मामले में महत्वपूर्ण सफलता हासिल नहीं हो सकती। □

(योजना 15 अगस्त, 1990 अंक से)



योजना

फरवरी 2007 अंक

नक्सलवाद

पर केंद्रित

इस अंक के लेखकों में शामिल हैं छत्तीसगढ़ सरकार के सलाहकार के.पी.एस. गिल; सीमा सुरक्षा बल के पूर्व महानिदेशक प्रकाश सिंह और सुरक्षा मामलों के विशेषज्ञ राहुल भोंसले आदि।

अंक का मूल्य होगा सात रुपये मात्र। पाठक कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराएं।

सामाजिक परिवर्तन में आंतरिक्षा टेक्नोलॉजी की भूमिका

○ यू. आर. राव

डॉक्टर साराभाई ने कहा है, "यदि हमें राष्ट्रीय स्तर पर तथा राष्ट्रों के समुदाय में सार्थक भूमिका निभानी है तो हमें मानव तथा समाज की वास्तविक समस्याओं के प्रति विकसित प्रौद्योगिकियों के अनुप्रयोग के मामले में किसी से फीछे नहीं रहना चाहिए"

भारत अंतरिक्ष कार्यक्रम बहुत योजनाबद्ध तरीके के बनाया गया है और इसके उद्देश्यों को अच्छी तरह परिभाषित किया गया है। अब यह देश में संचार क्रांति की पहल करके पर्याप्त लाभ उपलब्ध कराने के साथ-साथ राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, निगरानी तथा प्रबंध के लिये महत्वपूर्ण निवेश उपलब्ध कराने लगा है। मौसम के बारे में और सही भविष्यवाणी तथा बेहतर संचार की सुविधाओं से संपन्न देश अब उपयुक्त समय पर बचाव उपाय कर सकता है और इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं से कारगर रूप से निवाट सकता है। देशभर में अनुप्रयोगों पर आधारित अंतरिक्ष कार्यक्रम के संचालन के साथ स्पष्ट दृष्टिकोण और पूर्ण आत्मनिर्भरता हासिल करने पर विशेष ज़ोर दिए जाने के कारण अंतरिक्ष में वर्तमान और भविष्य के योजनाबद्ध विकासों के फलस्वरूप देश, निस्संदेह प्रमुख राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी से बहुत अधिक लाभ उठा सकेगा।

उल्लेखनीय प्रभाव

अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी की सबसे उल्लेखनीय

विशेषता यह है कि यह अंतरिक्ष के बिंदु से व्यापक क्षेत्रों में योजनाबद्ध, विश्लेषणात्मक, तीव्र तथा बार-बार जानकारी उपलब्ध कराने में सक्षम है और हमारे राष्ट्रीय संसाधनों तथा पर्यावरण टेक्नोलॉजी का प्रबंध करती है। अंतरिक्ष ने समय और दूरी की विशालता को एकदम कम कर दिया है तथा समूचे विश्व को एक गांव जैसी सीमा में ला दिया है। आज देश के दूरदराज इलाकों में भी तकाल संचार की सुविधा उपलब्ध है। भारत जैसे विकासशील देश, जो विशाल जनसंख्या के घनत्व, कम कृषि उत्पादन, बन क्षेत्र की अंधाधुंध कमी, बढ़ती हुई बंजर भूमि, वर्षा पर बहुत ज्यादा निर्भरता, बड़े पैमाने पर निरक्षरता, बार-बार प्राकृतिक विपर्तियों का आना तथा संचार और परिवहन ढांचे की ख़राब स्थिति के बोझ में दबे पड़े हैं, अपने नागरिकों को कम से कम समय में बेहतर रहन-सहन उपलब्ध कराने के लिये अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी के मदद से ही भारी उछाल ले सकते हैं।

सामान्य शुरुआत

हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रमों की सामान्य रूप से 1963 में शुरुआत हुई लेकिन प्रमुख राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये

तेज़ी से इन कार्यक्रमों को लागू करने के फैसले से धीरे-धीरे मज़बूत प्रौद्योगिकी आधार कायम हुआ है और राष्ट्रीय विकास से संबद्ध वास्तविक कार्यों में इनका उपयोग किया गया है। अंतरिक्ष विभाग के छह प्रमुख केंद्र हैं: गकेट तथा प्रणोदन टेक्नोलॉजी के विकास के लिये त्रिवेंद्रम में विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र और द्रव प्रणोदन प्रणाली केंद्र, उपग्रहों के विकास के लिये बंगलौर में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन भू-उपग्रह केंद्र, उपग्रह छोड़ने के लिये मद्रास के निकट श्रीहरिकोटा में एसएचएआर केंद्र, अहमदाबाद में अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिये हैदराबाद में राष्ट्रीय सुदूर संवेदनशील एजेंसी। इन केंद्रों में 16,000 कर्मचारी कार्यरत हैं।

संचार क्रांति

जनसंचार के लिये उपग्रह माध्यम की विशिष्ट क्षमता को ध्यान में रखते हुए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने ग्रामीण शिक्षा के लिये इस माध्यम का उपयोग करने के लिये 1975 में उपग्रह शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम (एसआईटीई) चलाया। सन् 1981

में 'एप्पल' नामक प्रायोगिक संचार उपग्रह का सफल प्रक्षेपण और ढाई वर्षों से भी अधिक समय तक इसका संचालन भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के कार्यक्रम में एक प्रमुख उपलब्धि है। सन् 1983 में इन्सैट-1 बी के प्रक्षेपण के साथ संचालनात्मक राष्ट्रव्यापी संचार सेवाएं शुरू हुई जिसने 1989 तक सेवाएं उपलब्ध कराई। सन् 1988 में छोड़े गए इन्सैट-1 सी ने लगभग 2 वर्षों तक आंशिक सेवाएं उपलब्ध कराई। इस वर्ष इन्सैट-1 डी छोड़ा गया जिसकी निर्धारित कार्य-क्षमता 8 वर्षों से अधिक की है और इससे राष्ट्र को निर्बाध सेवा सुनिश्चित हुई।

हमारी आवश्यकता के अनुरूप फोर्ड-एयरोस्पेस ने अद्भुत बहुउद्देशीय इन्सैट-1 उपग्रह प्रणाली के जिस ढांचे की संरचना की, उसने अकेले ही देश में संचार क्रांति की शुरुआत कर दी। समुद्र में सुदूरवर्ती द्वीपों सहित समूचे देश के लिये 60 ट्रॉक मार्गों पर 4300 से अधिक दो-तरफा 'स्पीच सर्किट' विश्वसनीय संचार सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान 53000 'टेरिस्ट्रियल लिंक', में 90,000 'रूट' किलोमीटर जोड़ने के अलावा अब सही व्यापारिक टर्मिनल, आपात संचार टर्मिनल, राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क, प्रतिकृति संप्रेषण और उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिये उपग्रह पर आधारित ग्रामीण टेलीग्राफी नेटवर्क भी 'इन्सैट' के जरिये संचालित होते हैं।

पूर्व चेतावनी

'इन्सैट' द्वारा हर आधे घंटे पर लिये गए मौसम विज्ञान संबंधी चित्रों और दुर्गम क्षेत्रों में रखे गए मानवविहीन यंत्रों से स्वतः मौसम संबंधी आंकड़ों के संग्रह से हमारी मौसम भविष्यवाणी की क्षमता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। देश के पूर्वी समुद्र तट के किनारे-किनारे दैवी विपत्ति की चेतावनी देने वाली 100 विशेष स्थानीय प्रणालियों की स्थापना से अब तूफानों तथा तेज समुद्री हवाओं के बारे में अग्रिम चेतावनी मिल जाती है। इन्सैट प्रणाली का सबसे रोचक प्रभाव

टेलीविजन के विस्तार पर पड़ा। देश में 500 से अधिक टेलीविजन केंद्रों और 40,000 से अधिक सीधे अभिग्रहण करने वाले सेटों के संचालन से सुदूरवर्ती द्वीपों समेत देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या तक दूरदर्शन के कार्यक्रम देखे जाने लगे हैं। स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये प्रतिदिन छह घंटे तक शैक्षणिक कार्यक्रम दिखाए जाते हैं। देश के सभी 102 रेडियो स्टेशनों को इन्सैट के माध्यम से अब राष्ट्रीय नेटवर्क के रूप में सुसंबद्ध कर दिया गया है।

ग्रामसैट

उपग्रह के जरिये ग्रामीण प्रौद्योगिकी के विकासात्मक और सतत शिक्षा उपलब्ध कराकर ही निरक्षरता के उन्मूलन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। तभी भारत की आत्मा स्वरूप विशाल ग्रामीण जनसंख्या देश के विकास में सार्थक रूप से सहभागी बन सकती है। अंतरिक्ष विभाग ने गांवों के लिये समर्पित उपग्रहों की परिकल्पना की है जिन्हें 'ग्रामसैटों' की संज्ञा दी गई है। ये उस स्वन को पूरा कर सकते हैं जिसके तहत अपनी इच्छा से किसी भी भाषा में कार्यक्रमों को समूचे देश के लोगों के लिये सुलभ बनाया जा सकता है। समय पर उपायों को तत्काल लागू करने तथा मुसीबत में पड़े किसी जहाज या विमान की शीघ्र सूचना उपलब्ध कराने के लिये बंगलौर और लखनऊ में उपकरण लगाए जा चुके हैं और तलाश तथा बचाव क्षमता का संचालन कार्य शुरू हो गया है। इन्सैट-2 के इस सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत समस्त संचार सुविधाओं की सहायता के लिये एक अन्य कार्य किया जा रहा है, इससे रेलगाड़ियों, ट्रकों तथा अन्य वाहनों के आवागमन पर लगातार निगरानी रखी जा सकती है।

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंध

'लैंडसैट' तथा एनओएए उपग्रहों से आंकड़ों के हवाई सर्वेक्षण तथा अभिग्रहण के साथ-साथ अंतरिक्ष सुदूर संवेदनशील कार्यकलापों का विकास एक बड़े कदम के

रूप में 1979 में उठाया गया। इसके साथ ही प्रायोगिक सुदूर संवेदनशील भास्कर-I का सफल प्रक्षेपण किया गया, फिर 1981 में भारस्कर-II छोड़ा गया ताकि अंतरिक्ष सुदूर संवेदनशील के क्षेत्र में अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त किया जा सके। सन् 1988 से सुदूर संवेदनशील उपग्रह कार्यक्रम का संचालन शुरू हो गया। आईआरएस-I ने 3,00,000 से अधिक चित्र उपलब्ध कराए हैं, जिनमें कम से कम देश का 45 बार चित्र प्रस्तुत किया गया। यह हमारे राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन प्रबंध के प्रयासों की पृष्ठभूमि बना और इससे उपग्रह प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पूर्ण आत्मनिर्भरता कायम करने के प्रयासों का आधार तैयार हुआ है।

उपग्रह सुदूर संवेदन का पहला अनुप्रयोग हमारी बन संपदा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये किया गया। इससे यह रहस्योद्घाटन हुआ कि केवल दस वर्षों के अंदर ही देश में वर्नों का क्षेत्रफल 14 प्रतिशत से घटकर 11 प्रतिशत हो गया। एक प्रकार से समूचे केरल राज्य के क्षेत्रफल से दुगुने के बराबर वर्नों का हास हुआ। बन विभाग अब अंतरिक्ष से प्राप्त चित्रों का इस्तेमाल करके वर्नों के प्राकृतिक संपदा के बारे में दो वर्षों में एक बार नियमित रूप से निगरानी करता है। अंतरिक्ष से मिले चित्रों से अब बाढ़ग्रस्त इलाकों, बाढ़ से हुई क्षति, बर्फ पिघलने सहित जल संसाधनों, मिट्टी के खारापन, जल-विभाजन विशेषताओं, खनिज संसाधनों तथा मछली की बहुलता वाले समुद्री क्षेत्रों की पहचान आसानी से कर ली जाती है।

एक कृषिप्रधान देश के लिये, जिसकी विशाल जनसंख्या सन् 2000 ई. तक एक अरब होने वाली है तथा जिसके पास प्रतिव्यक्ति 0.3 हेक्टेयर से भी कम भूमि है, मिट्टी, जल, समुद्र तथा कृषि संसाधनों के प्रबंध के लिये महत्वपूर्ण निवेश उपलब्ध कराकर खाद्य बढ़ाने के लिये अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक है।

भविष्य का कार्यक्रम

भारतीय अंतरिक्ष सुदूर संवेदन का भविष्य का कार्यक्रम विशेष रूप से देश की उपर्युक्त आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये तैयार किया गया है। इसमें अनेक सुदूर संवेदनशील उपग्रहों का इस्तेमाल किया जाता है। जून 1999 में आईआरएस-1-सी तथा आईआरएस-1-डी किस्म के उपग्रह, कुछ और संशोधनों के साथ छोड़े जाएंगे, जिससे इस दशक के अंत तक सुदूर संवेदनशील व्यवस्था निर्बाध रूप से उपलब्ध कराई जाती रहेगी। एसएल किस्म के रडार के संचालन तथा एएसए रडार भी सभी सुविधाओं से युक्त स्थापित किए जा चुके हैं। माइक्रोवेव रिमोट सेंसिंग उपग्रह यानी ईआरएस के आंकड़ों के अभिग्रहण से हमारी क्षमता में एक नया आयाम जुड़ेगा, जिससे हम धने बादल छाए रहने पर भी चित्रों को प्राप्त कर सकेंगे। हाल ही में तिरुपति के पास एमएसटी. (मेसाफीयर स्ट्रेटोस्फीयर और आयनोस्फीयर) किस्म के रडार की भूमि पर लगाई जाने वाली प्रणालियों की स्थापना की गई है और लिडर (एलआईडीएआर) प्रणाली हमारे मध्य वातावरण की गतिशीलता के बारे में महत्वपूर्ण सूचना देकर इन प्रयासों में योगदान करेगा। इन्सैट प्रक्षेपित करने के लिये देश के पास बहुत सुदृढ़ आधार तैयार हो जाएगा और स्थायी विकास हासिल करने के लिये महत्वपूर्ण निवेश के लिये जानकारी उपलब्ध होगी।

उपग्रह प्रक्षेपण टेक्नोलॉजी

1980 में एसएलवी-3 के सफल संचालन के फलस्वरूप भारत उपग्रह का प्रक्षेपण करने की क्षमता वाला विश्व का छठा देश बन गया। एसएलवी के बाद उसका परिवर्द्धित रूप एसएलवी विकसित किया गया जो 150 किग्रा. वजन वाले उपग्रह को भी कक्षा में छोड़ने में सक्षम होता है। पोलर सैटेलाइट लांच व्हीकल (पीएसएलवी) का भी विकास किया गया जो 1,000 किग्रा. के सुदूर संवेदनशाल उपग्रहों को ध्रुवीय कक्षा में भेजने में सक्षम है। हालांकि पहले दो एसएलवी

छोड़ने का काम सफल नहीं हो सका, लेकिन प्रौद्योगिकी की दृष्टि से ये बहुत महत्वपूर्ण हैं और इन्होंने भविष्य के वाहनों के लिये डिजाइन तैयार करने के लिये महत्वपूर्ण आंकड़े उपलब्ध कराए। 275 टन भार के चार चरणों वाले पीएसएलवी के पहले चरण में 125 टन का ठोस रॉकेट बूस्टर छोड़ा है और दूसरे चरण के लिये 'एरियान' प्रूखंला का विकास तरल इंजन है, तीसरे चरण में 7 टन का ठोस मोटर और चौथे तथा अंतिम चरण में 1.5 टन तरल इंजन का विकास शामिल है। अगले वर्ष पीएसएलवी का सफल संचालन वास्तव में संचालनात्मक राकेट वाहन के विकास में एक प्रमुख उल्लेखनीय घटना होगी।

तीन वर्ष पूर्व तरल ऑक्सीजन और तरल हाइड्रोजन का इस्तेमाल करके 'क्रायोजेनिक इंजन' के विकास की शुरुआत से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन को इस प्रमुख क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हुआ जो 2.5 टन वर्ग के उपग्रहों को 'जियो-सिन्क्रोनस' लांच व्हीकल अर्थात् जीएसएलवी का विकास कर लेने का प्रावधान है तथा इसे बहुत लाभकारी, प्रभावकारी तथ विश्वसनीय तरीके से करने की योजना है।

अंतरिक्ष उद्योग का विकास

वास्तविक आत्मनिर्भरता तभी प्राप्त की जा सकती है जब स्वदेशी उद्योग में उच्च टेक्नोलॉजी को अच्छी तरह आत्मसात कर लिया जाए और वह अंतरिक्ष कार्यक्रम में सक्रिय साझीदार हो जाए। पिछले दस वर्षों के दौरान भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने जो निष्ठापूर्ण तथा तत्परतापूर्ण प्रयास किए हैं, उनके अच्छे परिणाम हमारे सामने आए हैं। 400 से अधिक भारतीय उद्योग इस समय अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी का ढांचा तैयार करने तथा उसके विकास में योगदान कर रहे हैं और हमारे अंतरिक्ष बजट का 50 प्रतिशत से अधिक का कार्य पूरा कर रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन से 170 से अधिक प्रौद्योगिकियों को उद्योगों को हस्तांतरित किया जा चुका है। इस सहभागिता के कारण यह

संभव हुआ है कि भारतीय उद्योगों ने चुनौती का मुकाबला किया है और अंतरिक्ष वाहन प्रणाली की डिजाइन तैयार करने तथा इन्हें जटिल काम को पूरा करने के लिये आवश्यक निर्माण करने जैसे-'लांच पैड' को पूरा करने, परीक्षण की सुविधाओं, प्रेरक चैंबर, प्रणोदकों के उत्पादन, नियंत्रक हिस्से-पुर्जे, रॉकेट मोटर तथा परिष्कृत इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियां आदि में योगदान किया है। भविष्य के अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी कार्यक्रम में सफलता मिलने से न केवल औद्योगिक क्षमता के सामान्य स्तर में वृद्धि और नये उत्पादों के विकास में सहायता मिलेगी बल्कि प्रबंध ढांचे, विश्वसनीयता स्तर, गुणवत्ता के प्रति जागरूकता और समयबद्ध कार्यकलाओं के क्षेत्र में नयी संस्कृति का विकास भी होगा जिससे अनगिनत लाभ मिलेंगे।

निष्कर्ष

संचार, टेलीविजन के प्रसार, शिक्षा, मौसम संबंधी पूर्वानुमानों तथा राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंध में देश की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की योजनाबद्ध भविष्य की रूपरेखा सुनियोजित तथा समेकित प्रयास है। यह हमारे दर्शन के अनुरूप है। जैसा कि डाक्टर साराभाई ने कहा है, "यदि हमें राष्ट्रीय स्तर पर तथा राष्ट्रों के समुदाय में सार्थक भूमिका निभानी है तो हमें मानव तथा समाज की वास्तविक समस्याओं के प्रति विकसित प्रौद्योगिकियों के अनुप्रयोग के मामले में किसी से पीछे नहीं रहना चाहिए।" सूक्ष्म गुरुत्वाकर्षण अनुसंधान, हवा में श्वास लेने की टेक्नोलॉजी, पुनर्प्रवेश प्रणालियां तथा राष्ट्र के लाभ के लिये अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी के नये अनुप्रयोगों को इस्तेमाल में लाया जा रहा है। यह हमारा स्वप्न है कि योजनाबद्ध भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम निश्चय ही हमारे समाज में परिवर्तन लाएगा और विशेषकर, हमारे ग्रामीण समाज के रहन-सहन में पर्याप्त सुधार लाने में मदद देगा।

□

(लेखक प्रसिद्ध अंतरिक्ष विज्ञानी हैं तथा इस्मो के अध्यक्ष रह चुके हैं; 26 जनवरी, 1991 अंक से)

फिल्म और सामाजिक विकास

○ अनिल सारी

“भारत में चलचित्र, सबसे पहले 7 जुलाई, 1896 को प्रदर्शित किया गया। यह आयातित चलचित्र था। भारत में सबसे पहले लघु फिल्मों का छायांकन 1879 में विदेशी छाया चित्रकारों ने किया। 1899 में एक भारतीय लघु फिल्म बनाने का प्रयास किया। भारत में पहले कथानक का निर्माण 1912 में हुआ और 1931 में पहली बोलने वाली पहली फिल्म तैयार हुई।”

फीरोज रंगूनवाला
(भारतीय सिनेमा के पचहत्तर वर्ष से)

रिकॉर्ड संबंधी पुस्तकों से ज्ञात होता है कि शुरू में जिन भारतीयों ने लघु फिल्मों का छायांकन किया उनके नाम थे कोकोनट फेयर, द रैसलर्ज, स्प्लैंडिड न्यू व्यूज ऑफ बाम्ब और ताकूत प्रोसेशन। हरिश्चंद्र एस भट्टाडेकर (जो सबे दादा के नाम से लोकप्रिय थे) और एफ.बी. थानावाल ने भारत में पहली बार वृत्तचित्र इकाइयां स्थापित कीं। उनके प्रारंभिक वृत्तचित्रों के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि उनमें मनोरंजन और भव्यता पर ज़ोर दिया गया था। जो कि भारतीय सिनेमा के साथ परंपरागत ढंग से जुड़े थे। लेकिन इन प्रारंभिक वृत्तचित्रों में एक वृत्तचित्र मोहनदास करमचंद गांधी के संबंध में भी था। बाद के वर्षों में बोलने वाली मजबूर में कई गीत ऐसे थे जो गांधीजी की निर्मम हत्या से प्रेरित थे। मद्रास की एक कंपनी डाक्युमेंट्री फिल्म्स ने 1948 में महात्मा गांधी शीर्षक से कथा फिल्म बनाई और पटेल इंडिया ने लंबे वृत्तचित्र गांधीजी का संकलन किया। स्वतंत्रता

आंदोलन संबंधी न्यूजरील में इसका भरपूर उपयोग किया गया।

प्रारंभिक फिल्मों में एक फिल्म थी कांग्रेस गर्ल जिसका निर्माण मद्रास नेशनल थियेटर ने किया था। अंग्रेजों ने इस फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया था। यह भी इतिहास और भारतीय सिनेमा की विरासत का एक हिस्सा है हालांकि भारतीय रजतपट पर बेतुके, छिठोरेपन और धिसीपिटी बदले की भावना से भरपूर फिल्मों की भरमार रही है लेकिन फिल्म भी फिल्म निर्माताओं ने अपने संस्कारों के कारण फिल्मों में भाँडे और बेतुके मनोरंजन के बीच पारंपरिक रीति-रिवाजों और सामाजिक सुधारों को भी स्थान दिया है।

वास्तविकता से परिपूर्ण पहली फिल्म

मूक फिल्मों में 1925 में बाबूराम पेंटर ने फिल्म बनाई सबकारी पाश जिसका अंग्रेजी में नाम था - इंडियन शाइलॉक। यह उन प्रारंभिक फिल्मों में से एक थी जिनमें वी. शांताराम ने मुख्य भूमिका निभाई। इसे हम अपनी पहली कला फिल्म कह सकते हैं। इसमें भारतीय गुरीब का अत्यंत वास्तविक चित्रण था जिसमें गांवों में कर्ज़े की समस्या, सामंती दमन, निर्धन किसानों और ऐसी कई अन्य समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया गया था। जिसके खिलाफ भारतीय अर्थशास्त्री और समाज सुधारक अपना अभियान चलाए हुए थे।

इसी दौरान पी.सी. बुरआ ने, जिन्हें बाद में देवदास के लिये काफी ख्याति मिली, एक फिल्म बनाई, जिसका नाम था फार्मर्ज़ डॉटर। बारह वर्षों बाद अर्देशिर ईरानी ने इसी नाम से

फिल्म बनाई किसान कन्या (1937)।

भारतीय कथा फिल्मों ने अपने प्रारंभिक वर्षों से ही भारतीय जीवन में शहरी और देहाती पहलू पर विशेष ध्यान दिया। यह बड़ा ही जीवंत और पारंपरिक पहलू था। इसमें नब्बे के दशक के मध्य में कुछ परिवर्तन आया और लगता है कि सारा ध्यान शहरी कथानकों की ओर ही दिया जाने लगा है। मदर इंडिया गंगा-जमुना, मुगल-ए-आजम और शोले हिंदी की सिनेमा की चार ऐसी लोकप्रिय बड़ी फिल्में हैं जिनकी लंबे समय तक दर्शकों में मांग रही हैं। इन चार फिल्मों में से केवल मुगल-ए-आजम ही ऐसी फिल्म है जो ग्रामीण अंचल की पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं है।

आधुनिक तकनीक की देन, सिनेमा उद्योग पूरी तरह से शहरी उद्यम है। लेकिन इसका बाज़ार और दर्शक शहरी और ग्रामीण दोनों ही हैं और वास्तविक लोकप्रिय फिल्मों में शहरी और देहाती संस्कृति की एक रूपता देखने को मिलती है। यहां तक कि बाक्स ऑफिस पर हिट नवीनतम फिल्मों, जैसे हम आपके हैं कौन, करन-अर्जुन और मैंने प्यार किया में या तो कहानी ग्रामीण पृष्ठभूमि की है या उनमें उन सामाजिक नियम-कानूनों को सम्मिलित किया गया है जो भारतीय शहरों और देहातों में समान रूप से पाए जाते हैं।

सुधारवादी विचारों का चित्रण

शहरी भावुकता और भारतीय फिल्म उद्योग के अधिकांश निर्देशकों, लेखकों तथा तकनीशियनों की पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण, लोकप्रिय भारतीय फिल्मों में वह

सामाजिक दर्शन या विचारधारा देखने को मिलती है जिसकी शहरी प्रबुद्ध वर्ग में प्रधानता है। परिणामस्वरूप कई फ़िल्म निर्माताओं ने समाज सुधार आंदोलनों से प्रेरित होकर, अपनी फ़िल्मों के जरिये आम आदमी को सुधारवादी विचारधारा से अवगत कराया। इस संबंध में बी.शांताराम की फ़िल्मों का उल्लेख ज़रूरी है। दुनिया न माने, दहेज, पड़ोसी और दो अंखें बारह हाथ उनकी चार चर्चित फ़िल्में सुधारवादी और शिक्षात्मक थीं। बांबे टाकीज की अछूत कन्या (1936) भी एक ऐसी फ़िल्म थी। कुछ ही समय बाद रणजीत स्टूडियो ने इसी विषय पर फ़िल्म बनाई अछूत। इसमें सुप्रसिद्ध अभिनेत्री गौहर ने काम किया। इस फ़िल्म में दलितों के छुआचूत के संघर्ष को चित्रित किया गया।

1930 से 1940 के दशक में फ़िल्मों में समाज सुधार और शैलीगीत मनोरंजन के सम्मिश्रण को खूब सफलता मिली। गांवों से पलायन की पृष्ठभूमि पर तैयार फ़िल्म स्ट्रीट सिंगर ने कुंदनलाल सहगल को अमर कर दिया। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर बनी एक अन्य फ़िल्म मेला ने एक अन्य महान कलाकार को जन्म दिया और वे थे - दिलीप कुमार। दिलीप कुमार देहाती भारतीय के व्यक्तित्व को बड़े ही सहजता से जीते थे। 1950 के दशक के मध्य तक बी.आर. चोपड़ा ने नया दौर बनाई। तब दिलीप कुमार हिंदी फ़िल्मों के न केवल सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रशंसनीय कलाकार थे अपितु तेजी से हो रहे शहरीकरण के बीच ग्रामीण भारत के नायक भी थे।

आधुनिक युग में, तीस के दशक से लेकर साठ के दशक तक भारतीय सिनेमा का मुख्य विषय सामाजिक समस्याएं ही रहीं। कुछ महत्वपूर्ण फ़िल्में - महबूब की औरत और मदर इंडिया, के.ए. अब्बास की धरती के लाल, बिमलराय की कई फ़िल्मों में से दो बीघा ज़मीन और सुजाता, राजकपूर की गंगा-जमुना और सुनील दत्त की मुझे जीने

दो में भारत की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया गया। नारी की बदलती छवि

भारतीय कथा फ़िल्मों में सामाजिक सुधार की धार बड़े ही सहज ढंग से प्रवाहित हुई। चूंकि सभी कथा फ़िल्मों में पुरुष और महिला के संबंधों को प्रमुखता दी गई थी अतः हिंदी कथा फ़िल्मों में नारी चरित्रों को विशेष महत्व मिला और फ़िल्मों में बीसर्वी सदी की नारी की बदलती छवि प्रतिबिंबित हुई। एशिया के अन्य देशों की भाँति भारत में भी 20वीं सदी के दौरान नारी ने अवांछित दकियानूसों ढर्ने के बंधन को तोड़ा। कई ऐसे उदाहरण हैं जब भारत की लोकप्रिय नायिकाएं बीसर्वी सदी की नारी की प्रतिनिधि बन गईं। लगातार कई फ़िल्मों में दहेज और बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों, नारी-शिक्षा, कामकाजी महिला की गरिमा, सामाजिक सुधार आंदोलन आदि की प्रधानता रही।

मूक फ़िल्मों के युग में भी धीरेन गांगुली ने लेडी टीचर बनाई। इसके अलावा अन्य फ़िल्मों मैरिज मार्किट, टेलिफोन गर्ल और टाइपिस्ट गर्ल में भी कामकाजी महिला की गरिमा को चित्रित किया गया। 1935 में डा. मधुरिका में एक लेडी डाक्टर के जीवन को चित्रित किया गया। बैरिस्टर्स वाइफ में गौहर ने मुख्य भूमिका निभाई। कारदार शर्मा की शारदा और शांता राम की दुनिया न माने में बाल विवाह की प्रथा पर आधात किया गया। ये फ़िल्में काफी लोकप्रिय हुईं।

1970 का दशक वह था जब एक्शन फ़िल्मों का ज़ोर रहा। फिर भी फ़िल्मी समाजशास्त्रियों के लिये यह एक बौद्धिक अपराध होगा यदि वे इस ओर ध्यान नहीं देंगे कि सत्तर के दशक के दौरान समकालीन नारीत्व का नये रूप में चित्रांकन हुआ हिंदी सिनेमा में यह शबाना आजमी और स्मिता पाटिल की भी दशक था। इन दो अभिनेत्रियों ने समकालीन नारी चरित्रों को ऐसे जिया कि भारतीय फ़िल्म की शैली बदल गई। छोटे

बजट की तथाकथित कला फ़िल्मों जैसे - श्याम बेनेगल की अंकुर और मथन से शबाना और स्मिता जल्दी ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख प्रतिनिधि बन गईं और अस्सी के दशक में तो इन्होंने हिंदी सिनेमा के नारी चरित्रों को बहुत ही प्रभावित किया। यहां तक कि स्वप्न सुंदरी हेमा मालिनी ने भी परंपरा तोड़ी और खुशबू किनारा जैसी लीक से हटकर बनी फ़िल्म में काम किया। राखी ने 27 डाउन और राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त तपस्या में नारी चरित्र के लिये एक नया और अलग स्वरूप स्थापित किया। रेखा और फिर श्रीदेवी ने भी समय-समय पर स्वयं को सशक्त अभिनेत्री के रूप में स्थापित किया। इनमें रेखा की घर, उमराव जान तथा श्रीदेवी की सदमा और सौतैन फ़िल्मों का उल्लेख किया जा सकता है।

सत्तर के दशक में व्यावसायिक फ़िल्मों की अभिनेत्रियों को वह मान और सम्मान मिला जो किसी ज़माने में समाज सुधारकों और प्रबुद्ध व्यक्तियों को मिलता था। जया बच्चन को ऐसी ही उपलब्धि हासिल थी। अभिमान, परिचय, मिली, कोशिश जैसी फ़िल्मों में जया बच्चन ने ऐसे किरदार निभाए जिन्हें आम जनता ने बहुत ही सराहा।

जया ने अपने फ़िल्मी जीवन में जितनी तरह के चरित्र अभिनीत किए, उनके लिये तो अलग से समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है।

सत्तर और अस्सी के दशक की इन प्रतिभा संपन्न अभिनेत्रियों ने अपने से पूर्व की महान अभिनेत्रियों की दो पीढ़ियों का अनुसरण किया। एक पीढ़ी वह थी जिसमें गीता बाली, नरगिस, मीना कुमारी और मधुबाला आदि और दूसरी पीढ़ी वह थी जिसमें नूतन, वहीदा रहमान, शर्मिला टाकुर के नाम लिये जा सकते हैं। ये सभी अभिनेत्रियां सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण फ़िल्मों में काम करके अमर हो चुकी हैं। उनकी फ़िल्में, भारतीय सिनेमा के मुकुट में जड़े बेहतरीन जवाहरत हैं।

1947 में स्वतंत्रता के बाद अभिनेत्रियों और नारी चरित्रों का भारतीय सिनेमा में बड़ा योगदान रहा है और इसे किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम आंका नहीं जा सकता है। प्रतिभाशाली अभिनेत्रियों की इन तीन पीढ़ियों को पिछले 60 वर्षों के दौरान भारतीय नारीत्व के इतिहास के तीन अध्यायों का प्रतिनिधि माना जा सकता है। यह भारतीय समाज में नारी के बदलते रूप को स्पष्ट प्रतिबिंबित करता है।

भारतीय सिनेमा, विशेषकर हिंदी फिल्मों का एक बड़ा ही रोचक पहलू यह है कि इन्होंने सामाजिक बुराइयों को कभी भी सकारात्मक रूप में नहीं दिखाया। वास्तव में यही कारण है कि लोकप्रिय सिनेमा भारतीयों के लिये संस्कृति का प्रतीक बन गया है। क्योंकि भारतीय दर्शक सिनेमा में अपने जीवन और उससे जुड़ी आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिबिंब देखना चाहता है।

जब समाज दिशाविहिन हो रहा हो तो सिनेमा पर भी इसका प्रभाव देखने को मिलता है। ऐसे समय में फिल्म निर्माण केवल मनोरंजन से भरपूर फिल्में बनाने तक सीमित हो जाते हैं। जब-जब समाज में परिवर्तन हुए तब-तब भारतीय सिनेमा ने इन विचारों को फिल्मों के जरिये देशभर में प्रचारित किया। दूसरी ओर, जब-जब सामाजिक परिवर्तनों में ठहराव आया, तो सिनेमा ने भी सामाजिक विचारों को त्याग कर विशुद्ध मनोरंजन वाली फिल्में बनाई।

लेकिन, यदि सर्वाधिक सफल फिल्मों की सूची तैयार की जाए तो हमें पता चलता है कि वही फिल्में सबसे ज्यादा सफल हुई हैं जिनमें लोकप्रिय मनोरंजन के साथ-साथ, समाज-सुधार और मानवीय विकास की आकांक्षाओं का सही मेल रहा। उपन्यास की भाँति फिल्म भी सत्य उजागर करने के लिये झूठ बोलती है। लोकप्रिय सिनेमा की संकर शैली है जिसकी शुरुआत तो पारंपरिक लोककथाओं से हुई किंतु आज इसमें पॉप का तत्व भी शामिल है।

इस संबंध में एक सादृश्य यह है कि जहां आधुनिक विकास योजनाएं, आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में नयी तकनीकें शुरू करना चाहती हैं, वहीं लोकप्रिय भारतीय फिल्में, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े व्यक्ति को नयी तकनीक से भलीभांति परिचित करवाने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार सिनेमा, तकनीकी और आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में भारतीय संवेदनाओं को बड़े ही सुंदर ढंग से पिरोकर भारतीय दर्शकों के लिये फिल्म तैयार करता है। चूंकि सिनेमा स्वयं तकनीक की देन है अतः यह इस बात के लिये हमेशा सजग रहता है कि नयी तकनीक का मानवीय रिश्तों और आकांक्षाओं पर असर पड़े। इसके लिये फिल्म बेशक वास्तविकता से परे ही क्यों न होती जाए, लेकिन सामाजिक विकास की गति से यह अपना रिश्ता कभी नहीं तोड़ पाती। सामाजिक संघर्षों और उपलब्धियों ने कई फिल्मों को प्रेरित किया क्योंकि हमारा सिनेमा सामाजिक घटनाक्रम का आईना है। □

(लेखक मूर्धन्य फिल्म समीक्षक थे। अगस्त 1915 अंक से)

DESTINATION IAS ACADEMY

राजनीति विज्ञान

द्वारा प्रो० एम.पी. जैन
एवं कैलाश मिश्र

सामान्य अध्ययन

द्वारा कैलाश मिश्र
एवं अन्य

मुख्य संपादक : ट्रेण्ड एनैलिसिस

- भारतीय अर्थव्यवस्था
- भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
- बदलते परिदृश्य में भारत की विदेश नीति

304, A-12-13, Ansal Building
Commercial Complex,
Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Ph.: 011-42875227, 9868080491

SNEWS : 09811124003

YH/1/7/11

योजना, जनवरी 2007

अवमूल्यन भारतीय मुद्रा का

○ एन.पी. माहेश्वरी

वि

श्व की अन्य प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले गत दिनों भारतीय रुपये का भारी अवमूल्यन कर दिया गया है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा बाज़ार में चार दुर्लभ मुद्राओं, अमरीकी डॉलर, ब्रिटिश पौंड, जर्मन मार्क और जापानी येन के मुकाबले भारतीय रुपया लगभग 20 प्रतिशत तक सस्ता कर दिया गया। यद्यपि वित्तमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने इसे भारतीय रिजर्व बैंक का समय-समय पर अन्य विदेशी मुद्राओं के साथ रुपये के मूल्य समायोजन को एक सामान्य कार्यवाही बताया। लेकिन यह सर्वविदित है कि जिस दिन अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकारियों को नये ऋण की धनराशि और शर्तें तय करने के लिये नयी दिल्ली आना था उसी दिन सुबह अवमूल्यन की घोषणा किया जाना संयोग मात्र नहीं है। उल्लेखनीय है कि जून, 91 में हुए संसदीय चुनाव के दौरान भाजपा के आर्थिक मामलों के प्रवक्ता ने विश्व बैंक की एक गोपनीय रिपोर्ट के हवाले से रहस्योदधारण किया था कि भारत सरकार से रुपये का 22 प्रतिशत अवमूल्यन करने को कहा गया है और जिस बात की आशंका थी वह हो ही गई। भारतीय रुपये का तीन दिनों के भीतर क्रमशः एक व तीन जुलाई, 91 को दो बार में भारी अवमूल्यन किया गया।

अवमूल्यन के उत्तरदायी कारण

भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन के लिये प्रमुख रूप से प्रतिकूल भुगतान संतुलन की गंभीर स्थिति उत्तरदायी है और प्रतिकूल भुगतान संतुलन के लिये निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते हैं:

भारत द्वारा लिये गए विदेशी ऋण का बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है यह 1980 में 20 अरब डॉलर से बढ़कर 1989 में 62 अरब

डॉलर तक हो गया है और इस समय हम पर करीब 75 अरब डॉलर का ऋण है। 1984 में हमें 1.5 अरब डॉलर का ब्याज भुगतान करना पड़ा था पर अब इस वर्ष यह 4.6 अरब डॉलर तक पहुंच गया है। मोटे तौर पर इस वर्ष ब्याज और मूल्य के रूप में हमें लगभग 7 अरब 30 करोड़ डॉलर चुकाने होंगे। एक जुलाई के पहले की विनियम दर के आधार पर यह भारत के 1991-92 के कुल माल नियांत का लगभग 47 प्रतिशत होता लेकिन अब मौजूदा विनियम दर पर 58 प्रतिशत होगा। ऋण आज हमारी विकास प्रक्रिया का अधिन्द अंग है। परंतु ऋण का उत्पादक कार्यों में उपयोग न करके सस्ती लोकप्रियता दिलाने वाली नीतियों में विनियोजन करना धातक है। हमारे बढ़ते विदेशी कर्ज़ और विदेशों में साख कम हो जाने का यही कारण है।

प्रतिकूल भुगतान संतुलन का मूल कारण विदेशी व्यापार घाटा है जो लगातार बढ़ता जा रहा है। पिछले दशक में नियांत वृद्धि तो हुई पर इतनी नहीं हुई कि कुल आयात पर व्यय की गई राशि को पूरा कर पाती। अतः घाटा होता रहा और भुगतान संतुलन बिगड़ता रहा। 1990-91 के दौरान विदेशी व्यापार घाटा 10,643 करोड़ रुपये तक पहुंच गया जबकि पिछले वर्ष यह घाटा मात्र 7,730 करोड़ रुपये था। वर्ष 1990-91 में भारत का नियांत 32,427 करोड़ रुपये था आयात प्रविधि का अभाव, अधिक कीमत तथा दूसरे देशों के प्रतिबंधों के कारण नियांत में अधिक वृद्धि संभव नहीं है, फलस्वरूप आयात-नियांत का अंतर बढ़ता जा रहा है।

उच्च वर्ग या उच्च-मध्यम वर्ग के 20 प्रतिशत लोगों की आवश्यकता पूर्ति हेतु माल, प्रौद्योगिकी एवं सेवाओं के आयात ने भी

अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक बोझ डाला है। देश में नवधनाद्य वर्ग की वैभव व नुमाइश की प्रवृत्ति में वृद्धि के कारण भुगतान संतुलन की समस्या बढ़ी है। विदेशी मुद्रा में ऋण लेकर नियांत बढ़ाना तो ठीक था, लेकिन आंतरिक उपभोग के लिये ऐसा करना अनुचित है, उदाहरणार्थ - सार्वजनिक परिवहन की कीमत पर टू-व्हीलर व फोर व्हीलर के उत्पादन हेतु विभिन्न देशों से अनुबंध किए गए जिनसे एक तो तेल के आयात में वृद्धि हुई, दूसरी ओर तकनीक के आयात के नाम पर विदेशी विनियम भार बढ़ गया।

भुगतान संतुलन के बिगड़ने का एक महत्वपूर्ण कारण पेट्रोलियम पदार्थों का आयात बिल 7,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 1990-91 में 11,400 करोड़ रुपये हो जाना भी है। कच्चे तेल के उत्पादन में वर्ष 1990-91 में असम आंदोलन के कारण 3.1 प्रतिशत की कमी आई जबकि 1989-90 में इसमें 6.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। इस कमी का विदेशी मुद्रा की स्थिति पर गहरा असर पड़ा। साथ ही, खाड़ी संकट के दौरान हमें अधिक कच्चे तेल का आयात करना पड़ा। इसके कारण कच्चे तेल के आयात पर ही 10,820 करोड़ रुपये खर्च करने पड़े जबकि बजट में केवल 6,400 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी, इस प्रकार आयातित तेल पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। जहां पांच वर्ष पूर्व आवश्यकता का 70 प्रतिशत तेल उत्पादन देश में होता था वहां अब मात्र 64 प्रतिशत उत्पादन होता है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार सन् 2000 तक विदेशी तेल पर निर्भरता बढ़कर 51 प्रतिशत हो जाएगी।

नियांत संवर्द्धन हेतु 1976-77 से नियांत पर राजकीय सहायता देना प्रारंभ किया गया,

इस वर्ष कुल निर्यात में राजकीय सहायता का अंश 8.1 प्रतिशत था जो अब बढ़कर 39 प्रतिशत तक पहुंच गया है। निर्यात सब्सिडी पर 1976-77 में जहाँ 269 करोड़ की राशि व्यय की गई थी वहाँ वर्ष 1990-91 में 22,000 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई, लेकिन इतनी भारी धनराशि की राजकीय सहायता के बाद भी भुगतान संतुलन में सुधार नहीं हुआ।

प्रतिवर्ष करीब 2,500 करोड़ रुपये विदेशी मुद्रा अप्रवासी भारतीयों द्वारा भारत में जमा की जाती है। प्रतिकूल भुगतान संतुलन के कारणों में एक कारण यह भी है कि पिछले दो वर्षों में अप्रवासी भारतीयों से विदेशी मुद्रा आय में 500 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की कमी आई है। वर्ष 1975-78 के दौरान खाड़ी देशों से अप्रवासी भारतीयों द्वारा भेजी गई विदेशी राशियाँ 97 प्रतिशत घाटे की पूर्ति में इन राशियों का अंशदान घटकर मात्र 32 प्रतिशत रह गया परंतु खाड़ी युद्ध के बाद तो आय का यह स्रोत लगभग सूख ही गया है।

एक बड़ा तर्क अवमूल्यन से निर्यात बढ़ाने और आयात घटाने का है, पर भारतीय विदेशी व्यापार के स्वरूप को देखते हुए यह तर्क पूर्ण नहीं लगता। हमारा आयात मुख्य रूप से, खाद्य तेल, पेट्रोलियम, रासायनिक खाद जैसी बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं का है जिसमें अधिक कमी नहीं की जा सकती। जबकि निर्यात मुख्यतः कच्चे माल, चमड़े का सामान, जूट, कपड़े, हीरे-जवाहरत जैसी वस्तुओं का है, जिनकी लोचदार मांग होने के साथ-साथ विभिन्न कारणों यथा - दूसरे देशों से प्रतिस्पर्धा, निम्न गुणवत्ता, अधिक लागत तथा कोटा आदि प्रतिबंधों के कारण निर्यात में अधिक वृद्धि संभव नहीं है, फलस्वरूप आयात-निर्यात का अंतर बढ़ाता जा रहा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत की विदेशी भुगतान संतुलन की स्थिति अत्यंत नाजुक है। जून 91 के मध्य तक भारत के पास केवल 2,500 करोड़ रुपये मूल्य के बराबर विदेशी विनियम बचा था, इस रकम में जापान से मिली 600 करोड़ रुपये की मदद और मई में भारत का सोना गिरवी रखकर वसूली गई 400 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा भी शामिल है। अतः भुगतान संतुलन की इस विकट

परिस्थिति में ही सरकार को चार खेमों में कुल 46.91 मीट्रिक टन सोना विदेश भेजने का कठिन निर्णय लेना पड़ा। उपर्युक्त परिस्थितियों में मुद्राकोष से विदेशी ऋण लेने की अनिवार्यता व मुद्राकोष द्वारा भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन हेतु सरकार पर लगातार बनाए गए दबाव के कारण ही अंततः सरकार को भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन का निर्णय लेना पड़ा।

तात्कालिक प्रभाव

अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि हमारा आयात बिल व विदेशी ऋण का भार स्वतः ही 20 प्रतिशत बढ़ गया है। भारत के विदेशी ऋण में 310 अरब रुपये की वृद्धि होकर अब यह 1,620 अरब रुपये हो गया है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के मुकाबले विदेशी ऋण का अनुपात 38 प्रतिशत से बढ़कर 47 प्रतिशत हो गया है। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय माल के 20 प्रतिशत सस्ता होने के कारण निर्यात में वृद्धि की बात कही जा रही है। लेकिन अब हमें उतनी ही विदेशी मुद्रा कमाने के लिये पहले की अपेक्षा 20 प्रतिशत अधिक निर्यात करना पड़ेगा, जबकि हमारे विदेशी व्यापार में एक बड़ा घाटा प्रतिवर्ष रह जाता है। विदेशी मुद्रा की तुलना में रुपये को सस्ता करने का अर्थ तो सीधे घाटे को 20 प्रतिशत बढ़ा लेना है यदि यह घाटा 10,000 करोड़ रुपये से अधिक है तो 20 प्रतिशत अवमूल्यन यूं ही इसे 12 हजार करोड़ रुपये से अधिक कर देगा।

प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने संभावना व्यक्त की है कि हाल ही में हुए रुपये के अवमूल्यन का दबाव कीमतों पर पड़ेगा और इसके परिणामस्वरूप कुछ समय में ही मुद्रास्फीतिक दबाव परिलक्षित होने लगेगी। ऊर्जा सचिव एस.राजगोपाल ने बताया कि रुपये के अवमूल्यन से केवल केंद्रीय क्षेत्र की बिजली परियोजनाओं की लागत में ही 35 अरब रुपये की अतिरिक्त वृद्धि हुई है। ठिहरी बांध परियोजना पर एक हजार करोड़ रुपये अधिक व्यय होने का अनुमान है। पेट्रोलियम मंत्रालय के सूत्रों के अनुसार तेल आयात में ही देश पर लगभग 2,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त भार पड़ेगा। एयर इंडिया को 200 करोड़ रुपये से अधिक का नुकसान हो जाएगा। भारतीय

जहाज़रानी निगम का 15 जहाज़ खरीदने का प्रस्ताव था, एक जहाज़ की अनुमानित कीमत 1,400 करोड़ रुपये थी और अब अवमूल्यन के बाद इसकी कीमत 2,000 करोड़ रुपये होने की संभावना है। अतः इस प्रस्ताव की पुनः समीक्षा की जा रही है।

प्रतिक्रियाएं

यद्यपि अवमूल्यन पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों, विद्वानों, उद्योपतियों व प्रवासी भारतीयों ने मिली-जुली प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं परंतु अधिकांश का मत है कि अवमूल्यन के प्रथम प्रभाव के रूप में कई वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाएंगी। डी.टी. लकड़ावाला ने सचेत किया है कि यदि मुद्रास्फीतिकारी दबावों पर अंकुश नहीं लगाया गया तो स्वदेशी उत्पादन की लागत बढ़ जाएगी। जेएनयू के प्रो. प्रभात पटनायक का कहना है कि ताज़ा समायोजन का बोझ कुछ वर्गों को तो उठाना ही पड़ेगा। भारतीय रिज़र्व बैंक के पूर्व गवर्नर आर.एन. मल्होत्रा का मत है कि अवमूल्यन से ऊर्जा व निवेश की लागत बढ़ जाएगी। श्री डी.एच. पाई पंडिकर मानते हैं कि अवमूल्यन के मौजूदा दौर से मुद्रास्फीति का सीमित प्रभाव ही होगा। दूसरी ओर भारतीय विदेशी मुद्रा व्यापारी संघ के अध्यक्ष अनंत कृष्णन, इंजीनियरिंग निर्यात संवर्धन परिषद के पूर्व अध्यक्ष एम.सी.शाह, भारतीय चाय संघ व बंगाल चैंबर ऑफ कॉर्मस के अध्यक्ष अभिजीत सेन, इंडियन जूट मिल एसोसिएशन के उपाध्यक्ष अरुण लोहिया, दुर्बै में प्रवासी भारतीय उद्योगपति एम.आर.छपाड़िया तथा उद्योग, बैंकों और व्यापारिक संगठनों ने रुपये के इस अवमूल्यन का स्वागत किया है और आशा प्रकट की है कि इससे निर्यात बढ़ाने में मदद मिलेगी। लेकिन भूतपूर्व केंद्रीय वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने आशंका प्रकट की है कि रुपये का भारी परिमाण में अवमूल्यन कर देने से निर्यात की दृष्टि से जो लाभ सोचे जा रहे हैं, अंतरराष्ट्रीय मंडियों की प्रतियोगिता को ध्यान में रखते हुए ज़रूरी नहीं, पूरे हों।

दुर्लभ विदेशी मुद्रा के गंभीर संकट को सुधारने के लिये निर्यातों को बढ़ाया जाए, आयातों को केवल अत्यंत आवश्यक वस्तुओं (शेषांश पृष्ठ 84 पर)

रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता

○ श्याम सुंदर सिंह चौहान रविकांत

भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया चल रही है। विदेशी व्यापार, निवेश एवं विनियम-दर नीतियों में व्यापक रूप से उदारीकरण किया जा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि बाह्य क्षेत्र में आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण की प्रक्रिया आंतरिक क्षेत्र में अपनाई गई नीतियों से कहीं अधिक तेज़ एवं प्रभावी रही है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो आर्थिक प्रणाली की कुछ नीतिगत कठोरताएं आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया की सफलता को संदिध बना देती।

वर्ष 1990-91 में उत्पन्न भुगतान संतुलन के संकट व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में पैदा हुई परिस्थितियों के संदर्भ में भारत में व्यापक स्तर पर आर्थिक सुधारों एवं उदारीकरण की नीति अपनाई गई, जिसके तहत औद्योगिक नीति, कर ढांचे, व्यापार नीति तथा विदेशी विनियम नीतियों में व्यापक स्तर पर सुधार एवं परिवर्तन किए गए। जुलाई 1991 में देश के नियांतों की प्रतिस्पर्धा बढ़ाव करने और सामान्यतः व्यापार तथा चालू खाते के घाटे में कमी लाने के लिये रुपये की विनियम दर का अधोमुखी समयोजन बांधीय समझा गया। इसके तहत विश्व की प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले भारतीय रुपये का लगभग 20 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। बाज़ार नियंत्रित शक्तियों पर आधारित अधिक वास्तविक विनियम दर नीति अपनाने की दिशा में नयी सरकार का यह पहला ठोस प्रयास था।

पूर्ण परिवर्तनीयता के परिणाम

एकल विनियम दर प्रणाली लागू किए जाने से पूर्व फरवरी 1993 में रुपये का विनियम मूल्य 33.53 रुपये प्रति अमरीकी डॉलर के रिकार्ड स्तर तक नीचे गिर गया था। इस तरह से जून 1991 से फरवरी 1993 की अवधि में रुपये के मूल्य में लगभग 36 प्रतिशत की गिरावट आई।

लेकिन वर्ष 1993-94 के बजट में एकल विनियम दर प्रणाली लागू कर दिए जाने के साथ ही, विशेषज्ञों के सभी पूर्वानुमानों को ध्वस्त करते हुए, 2 जुलाई, 1993 से रुपये का मूल्य 31.37 रुपये प्रति डॉलर के स्तर पर स्थिर रहा है।

कुछ विशेषज्ञों के विचार से रुपये की विनियम दर को इस स्तर पर बनाए रखने के लिये रिज़र्व बैंक को विदेशी विनियम बाज़ार में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करके लगभग 70 लाख डॉलर के बराबर विदेशी मुद्राओं की खरीद करनी पड़ी है।

एकल विनियम दर प्रणाली लागू किए जाने; व्यापार नीतियों एवं औद्योगिक नीतियों में उदारीकरण किए जाने के बाद से भारत के भुगतान की स्थिति में भारी सुधार हुआ है।

विदेशी विनियम बाज़ार के क्षेत्र में समानांतर कालाबाज़ार 'हवाला' की गतिविधियां बहुत बड़ी सीमा तक समाप्त हो जाने का श्रेय निश्चित रूप से इस क्षेत्र के सुधार कार्यक्रमों, विशेष रूप से रुपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाने को जाता है। देश में विदेशी मुद्रा के आरक्षित भंडार में अप्रैल 1994 के अंत में 19 अरब डॉलर से भी अधिक मूल्य की विदेशी मुद्राएं जमा र्थीं जिनके सहारे 11 माह तक के आयात बिलों का भुगतान किया जा सकता है जबकि जून 1991 में विदेशी मुद्रा के आरक्षित भंडार में मात्र 1.1 अरब डॉलर ही शेष थे।

इस प्रकार भुगतान संतुलन के चालू खाते का घाटा अब ऐसे स्तर पर है, जिसे विदेशी सहायता, वाणिज्यिक उदार तथा विदेशी निवेश के सामान्य अंतर्वाह से वित्तपेणित किया जा सकता है। गत दो वर्षों के दौरान भुगतान संतुलन के संबंध में जिस असाधारण सीमा तक अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की सहायता लेनी पड़ी, उसकी अब आवश्यकता ही नहीं रह गई है।

विदेशी मुद्रा के तेज़ी से बढ़ते अंतर्वाह तथा आरक्षित भंडारों की अति सुदृढ़ स्थिति के संदर्भ में भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक को

यह तय करने में कठिनाई हो सकती है कि भारतीय रुपये की विनियम दर को बाज़ारी शक्तियों द्वारा निर्धारित होने देने के लिये खुला छोड़ दिया जाए या पूर्व की भाँति विदेशी विनियम बाज़ार में हस्तक्षेप करके रिज़र्व बैंक उसकी दर में होने वाले सुधारवादी परिवर्तन को रोके।

निष्कर्ष

विश्व बाज़ार में भारत को अधिकाधिक प्रतिस्पर्धी बनाए जाने के लिये यह आवश्यक है कि विदेशी विनियम दर निर्धारण के मामले में अधिक खुलेपन की नीति अपनाते हुए बाज़ारी शक्तियों को क्रियाशील होने दिया जाए। इस दिशा में पूर्ण परिवर्तनीयता की नीति उचित ही है। लेकिन जैसा कि इसी प्रकार की नीति अपनाने वाले अन्य देशों के साथ हुआ है, पूर्ण परिवर्तनीयता लागू करते समय देश के केंद्रीय बैंक को हस्तक्षेप करने का मार्ग खुला अवश्य छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि पूर्ण परिवर्तनीयता के साथ कुछ मूलभूत आशंकाएं भी निहित हैं। उदाहरण के तौर पर यदि विश्व की अन्य मुद्राओं की तुलना में रुपया मजबूत होता है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव नियांतों की प्रतिस्पर्धात्मकता पर पड़ेगा। इसके साथ-साथ विदेशी विनियम, का बाहरी प्रवाह भी बढ़ जाने का खतरा बना रहेगा। भारतीय प्रतिभूतियों का क्रय करते रहने में विदेशी संस्थागत निवेशकों की रुचि उसी सीमा तक रहेगी जहां तक उन्हें इसके लिये कम मात्रा में विदेशी मुद्रा चुकानी होगी। दूसरी ओर यदि रुपये के विनियम मूल्य को कमज़ोर रखते हुए मुक्त भाव से विदेशी विनियम देश में आने दिया जाता है तो स्फीतिकारी शक्तियों के और अधिक सक्रिय होने का खतरा बना रहेगा। ऐसी दशा में पूर्ण परिवर्तनीयता की नीति पर चलते हुए भारतीय रिज़र्व बैंक को अधिक सजग पहरेदार की भूमिका निभानी होगी। □

(30 सितंबर, 94 अंक से)

सूचना प्रौद्योगिकी और इसके प्रयोग

○ शेफाली एस. दास

सूचना प्रौद्योगिकी एक बहुत अवधारणा प्रबंध संबंधी सभी पहलू शामिल हैं। कंप्यूटर हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और इंटरनेट सूचना प्रणालियों का आधार हैं, जिनका डिजाइन तैयार करने, उन्हें विकसित करने और उनके संचालन या प्रबंध का काम सूचना प्रौद्योगिकी व्यवसायियों द्वारा किया जाता है।

रेलवे और विमान आरक्षण, बैंकिंग, बीमा, टेलीफोन और बिजली के बिल तैयार करने आदि क्षेत्रों में कंप्यूटरों का इस्तेमाल पहले ही बड़े सार्थक ढंग से हो रहा है, जिससे थकाने वाले कार्य की नीरसता कम हो गई है और उत्पादकता एवं कार्यकुशलता में बढ़ोतारी हुई है। मौसम संबंधी पूर्वानुमान, रेडियो, खगोलविद्या, आणविक जीवविज्ञान, हवाई गतिशीलता आदि क्षेत्रों में भी अधिक तीव्र, परिशुद्ध और तथ्यपरक नीति हासिल करने के लिये कंप्यूटरों का इस्तेमाल किया जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन, कार्यालय के वातावरण को आधुनिक बनाने, अपराधों का पता लगाने, दूरचिकित्सा (टेलिमेडिसिन), आदि अन्य ऐसे क्षेत्र हैं जहां सूचना प्रौद्योगिकी अधिक प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकती है।

दफ्तरों में कंप्यूटर प्रणालियां स्थापित करने के शुरुआती दौर में ऐसी भ्रांतियां थीं कि इनसे रोज़गार के अवसरों में कमी आएगी। किंतु अब यह सिद्ध हो चुका है कि कार्यालयों के आधुनिकीकरण से अपेक्षित जनशक्ति में कमी आने की बजाय इससे काम की गुणवत्ता में सुधार आता है, उत्पादन बढ़ता है और समय की बचत होती है। कुछ मामलों में तो कंप्यूटरीकरण में रोज़गार के नये अवसर भी पैदा हुए हैं। उदाहरण के तौर पर डेटा एंट्री

ऑपरेटरों का एक नया वर्ग उभर आया है। इन सब फायदों को देखते हुए भारत में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के प्रयासों को बल मिला है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति की शुरुआत कुछ मंद रही क्योंकि हमारे यहां जड़ता बहुत अधिक थी और मज़दूर संघों तथा प्रबंध समितियों को इस बारे में कुछ भ्रांतियां थीं। किंतु कंप्यूटर नीति 1984, इलेक्ट्रॉनिक नीति 1985 और सॉफ्टवेयर नीति 1986 से इन समस्याओं पर काबू पाने में मदद मिली। उद्योग और अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण के साथ भारत अब सूचना प्रौद्योगिकी का केंद्र बिंदु बन गया है। सूचना प्रौद्योगिकी कार्यदल के गठन से इस क्षेत्र में हो रही क्रांति में तेज़ी आई है।

प्रारंभिक वर्षों में कंप्यूटरों का उपयोग मुख्य रूप से वैज्ञानिक गणनाओं के लिये किया जाता था। नौवें दशक के अंत तक सूचना प्रौद्योगिकी संस्कृति महानगरों से बाहर, जिलास्तर तक प्रसारित हो गई। भारतीय हार्डवेयर विनिर्माताओं ने बढ़ती मांग की चुनौती का सामना किया और ऐसे पीसी यानी निजी कंप्यूटरों का उत्पादन स्थानीय आधार पर किया, जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार बाज़ार में प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। इससे कंप्यूटर सस्ते हो गए और उन्हें न केवल दफ्तरों में बल्कि घरों में रखना भी संभव हो गया है।

कंप्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के अलावा सूचना प्रौद्योगिकी का एक अन्य महत्वपूर्ण घटक है 'कंप्यूटर संचार नेटवर्क'। सूचना प्रौद्योगिकी का सफल अनुप्रयोग एक विश्वसनीय संचार नेटवर्क पर निर्भर करता है। देश के कोने-कोने को जोड़ने के लिये 'निकेट', 'इंडोनेट', 'एरनेट' 'आई-नेट' जैसे

राष्ट्रव्यापी कंप्यूटर संचार नेटवर्क स्थापित किए गए हैं। इन नेटवर्कों का इस्तेमाल रेलवे आरक्षण प्रणाली, विमान आरक्षण प्रणाली, बैंकिंग व्यवस्था और संसद व राज्य विधानसभा चुनावों के सीधे प्रसारण के लिये व्यापक रूप में किया जा रहा है। विकास संबंधी अंकड़ों का आधार तैयार करने में भी नेटवर्क का विशेष योगदान है। भारत सरकार ने सूचना विज्ञान संस्कृति को बढ़ावा देने और सूचना प्रौद्योगिकी के लिये सभी स्तरों पर आवश्यक अत्यधुनिक विकल्प उपलब्ध कराने के लिये राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र की स्थापना की, जो सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रमुख संगठन है।

इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन

सूचना प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख अनुप्रयोग नागरिकों को बेहतर सेवा उपलब्ध कराने के लिये इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन अथवा ईजी है। ईजी के माध्यम से सरकार और नागरिकों के बीच कंप्यूटर नेटवर्क के जरिये सुरक्षित, विश्वसनीय और नियंत्रित संपर्क कायम किया जा सकता है। ईजी सिर्फ एक नागरिक सेवा ही नहीं बल्कि टेक्नोलॉजी, अभियांत्रिकी और नेतृत्व की नयी शैली का मिला-जुला रूप है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति, विशेषकर इंटरनेट के विकास और उसके बढ़ते उपयोग से अधिकतर मुद्दों का समाधान संभव हो गया है। अब श्री-टीचर क्लाइंट सर्वर टेक्नोलॉजी यानी तीन स्तरीय उपभोक्ता सेवक प्रौद्योगिकी द्वारा एक बैंक एंड सर्वर' पर समान डाटाबेस (अंकड़ा आधार) उपलब्ध कराया जा सकता है, जिसके साथ विश्वभर में किसी भी स्थान से 'फ्रंट एंड' (अग्रणी) उपभोक्ता संपर्क कायम कर सकते हैं। इन दो स्तरों के बीच मध्यम स्तर पर उपभोक्ताओं के सवालों को प्रोसेस किया जा सकता है और बैंक एंड

पर समान डाटाबेस से सवालों के जवाब दिए जा सकते हैं। सुरक्षा और गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिये डाटाबेस में विभिन्न स्तरों पर सुरक्षा उपाय किए जा सकते हैं।

भौगोलिक सूचना प्रणाली

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) विभिन्न स्रोतों से मिलने वाले स्थानिक आंकड़ों के एकीकरण के लिये कंप्यूटर आधारित उपकरणों और पद्धतियों का मिलाजुला रूप है। यह आंकड़ों के विश्लेषण, प्रतिरूपण और प्रदर्शन का वातावरण उपलब्ध कराती है। जीआईएस विभिन्न स्वरूप की सूचनाओं जैसे वर्ण संख्यात्मक आंकड़ों, कागज पर बने मानचित्रों और दूरसंचेती चित्रों का मिलान करने के लिये उपयुक्त प्रणाली है।

भूमि संबंधी रिकार्ड

भूमि संबंधी रिकार्डों का कंप्यूटरीकरण सूचना प्रौद्योगिकी का सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण अनुप्रयोग है। भूमि रिकार्ड प्रणाली का असर आधी से अधिक भारतीय आबादी पर पड़ता है। अतः वर्तमान रिकार्ड प्रणाली में किया

जाने वाला कोई भी परिवर्तन सुरक्षित और शत-प्रतिशत अशुद्धि मुक्त होना चाहिए। भूमि रिकार्ड अब राजस्व वसूली का दस्तावेज़ मात्र नहीं है बल्कि अब उनका इस्तेमाल आयोजना और प्रबंधन के लिये अधिक किया जाने लगा है। भूमि रिकार्डों में स्वामित्व, भूमि के वर्गीकरण, खेती पद्धति, काश्तकारों आदि का व्यूरा होता है।

स्मार्ट होम

यह एक भावी अवधारणा है जिसमें घर के सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को नेटवर्क से जोड़ा जा सकता है और एक ही कनेक्शन से उन तक पहुंच कायम की जा सकती है ताकि बहु-कार्य क्षमता का दोहन किया जा सके। अब वे दिन दूर नहीं जब घर पहुंचते हुए मार्ग से ही एयरकंडीशनिंग/हीटिंग प्रणालियां चालू की जा सकेंगी और माइक्रोवेव में रखे भोजन को रिमोट के जरिये गर्म किया जा सकेगा ताकि दिनभर की थकान के बाद व्यक्ति घर में वातानुकूलित विलासिता का उपभोग कर सके।

कंप्यूटर केंद्रों, व्यापार केंद्रों और

फैसिलिटेशन बूथों का संचालन कंप्यूटर की जानकारी रखने वाले स्थानीय युवक-युवतियों द्वारा किया जा रहा है, जिससे रोज़गार के अवसर पैदा हुए हैं। फैसिलिटेशन बूथों से राजस्व प्राप्ति की उम्मीद है जिससे वे कुछ वर्षों में आत्मनिर्भर हो जाएंगे।

यह स्वीकार्य तथ्य है कि ज्ञान एक शक्ति है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में सूचना का प्रभाव खेती से लेकर अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी तक सर्वव्यापी है। अन्य प्रकार के निवेशों से भिन्न, जिनमें आमतौर पर पूँजी की बहुलता होती है, बौद्धिक शक्ति का इस्तेमाल जीवन में गुणवत्ता लाने के लिये क्रांतिकारी साबित हुआ है। भारत में तो बौद्धिक शक्ति की कमी है और न ही जनशक्ति की। अतः भारत में सूचना शक्ति और सूचना प्रौद्योगिकी उपकरणों का इस्तेमाल सामाजिक-आर्थिक विकास के अधिकतम लाभ उठाने के लिये किया जाना चाहिए। □

(लेखिका नवी दिल्ली में तकनीकी निदेशक हैं;
जनवरी 2000 अंक से)

उत्कृष्ट परम्पराओं के 14 वर्ष

IAS/PCS

**GENERAL STUDIES. ESSAY INTERVIEW
& PUBLIC ADMINISTRATION BY THE RENOWNED CONSULTANT**

Mr. R.C. SINHA

NEW BATCHES START IN JANUARY 2007 ● G.S. Essay ● Public Admin.

Contact Director: AIR CONDITIONED CLASSROOM

Centre for Excellence

8-B, Elgin Road, Opposite Mishra Bhawan, Civil Lines, Allahabad.

Note- Membership through Entrance Test only Mob. 09415284868

YH/1/7/07

वाचदों का सच

○ ज्यां द्रेज़

रोज़गार गारंटी अधिनियम को भारत में सामाजिक नीति की वृहत्तर संकल्पना के एक तत्व के रूप में देखा जा सकता है। इस संकल्पना में सामाजिक व्यय में बढ़े पैमाने पर बढ़ोतरी तथा उसकी संरचना में क्रांतिकारी सुधार दोनों शामिल हैं।

रोज़गार गारंटी अधिनियम का विचार
नया नहीं है, लेकिन एक के बाद एक अनहोनी घटनाओं की मृश्खला ने इसे अंधकार से निकाल कर राजनीतिक कार्यक्रम के शीर्ष पर बिठा दिया है। साझा न्यूनतम कार्यक्रम के पहले अनुच्छेद में कहा गया है, “संप्रग सरकार तत्काल एक राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी अधिनियम बनाएगी। आरंभ में यह सार्वजनिक परिसंपत्ति तैयार करने वाले कार्यक्रमों को आरंभ कर प्रत्येक ग्रामीण-शहरी निर्धन तथा निम्न-मध्यम परिवार के कम-से-कम एक सक्षम व्यक्ति को प्रतिवर्ष कम से कम 100 दिनों का रोज़गार प्रदान करने की कानूनी गारंटी देगा।”

जुलाई 2004 में संबद्ध नागरिकों ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम का प्रारूप तैयार कर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद को भेजा। महीनेभर के भीतर ही परिषद ने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में किए गए संकल्प के अनुरूप इस प्रारूप में ज़रूरी संशोधन कर उसे सरकार के पास विचार के लिये तत्काल भेज दिया।

प्रस्तावित अधिनियम अस्थायी आधार पर शारीरिक श्रम करने के इच्छुक किसी भी ग्रामीण को न्यूनतम निर्धारित मज़दूरी पर रोज़गार की वैधानिक गारंटी देता है। काम के लिये आवेदन करने वाला कोई भी वयस्क 15 दिनों के भीतर सार्वजनिक कार्य में रोज़गार पाने का हक्कदार होगा। ऐसा न हो पाने पर उसे रोज़गार भत्ता दिया जाएगा। राष्ट्रीय सलाहकार

परिषद द्वारा तैयार किए गए अधिनियम के प्रारूप में आरंभ में प्रत्येक घर पर 100 दिनों की रोज़गार गारंटी की सीमा निर्धारित की गई है जिसे आगे चलकर बढ़ाया अथवा समाप्त किया जा सकता है।

रोज़गार गारंटी अधिनियम की आलोचना प्रायः इसके दूरगामी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक महत्व को न समझ पाने के कारण की जाती है। ग्रामीण परिवारों को ग्रीष्मी और भूख से रक्षा करने की दिशा में यह अधिनियम दूर तक जाएगा। वस्तुतः एक सर्वांगीण रोज़गार गारंटी अधिनियम से भारत के अधिकांश ग्रामीण ग्रीष्म परिवार ग्रीष्मी रेखा से ऊपर निकल पाएंगे। दूसरे, इससे ग्रामीण-शहरी पलायन में नाटकीय रूप से कमी आएगी। गांवों में यदि काम उपलब्ध हो तो अधिकतर ग्रामीण परिवार खाली दिनों में शहरों की ओर जाना छोड़ देंगे। तीसरे, रोज़गार गारंटी अधिनियम के तहत रोज़गार पाने वालों का एक बड़ा हिस्सा महिलाएं होंगी। सुनिश्चित रोज़गार से उन्हें थोड़ी आर्थिक आज़ादी मिलेगी। इस तरह, रोज़गार गारंटी महिला सशक्तीकरण का एक प्रमुख स्रोत बनेगा। चौथे, रोज़गार गारंटी अधिनियम गांवों में उपयोगी परिसंपत्तियां खड़ी करने का एक अवसर है। इसमें विशेष रूप से पर्यावरण रक्षा के क्षेत्र में वाटरशेड विकास, भूमि को उर्वर बनाने, भू-क्षरण रोकने, तालाबों के

जीर्णोद्धार, बन संरक्षण तथा संबद्ध गतिविधियों जैसे श्रमोन्मुखी सार्वजनिक कार्य करने की बड़ी संभावना है। पांचवें, सुनिश्चित रोज़गार से गांवों में शक्ति-संतुलन बदलने तथा अधिक समता-आधारित सामाजिक व्यवस्था स्थापित होने की संभावना है। आखिर में, रोज़गार गारंटी अधिनियम के रूप में ग्राम पंचायतों तथा ग्राम सभाओं सहित पंचायतीराज संस्थाओं को सक्रिय तथा सशक्त बनाने का एक विशिष्ट अवसर सामने आया है। इससे इन संस्थाओं को एक नया मकसद और उसे पूरा करने के लिये वित्तीय संसाधन हासिल होगा।

रोज़गार गारंटी की आर्थिक व्यवहार्यता की जांच इसके अपने संदर्भ में किए जाने की ज़रूरत है, किसी खर्चीली परियोजना से तुलना कर नहीं। इस विषय पर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा तैयार की गई टिप्पणी में रोज़गार गारंटी की लागत को वर्ष 2005-06 में सकल घरेलू उत्पाद (सघड) के 0.5 प्रतिशत से वर्ष 2008-09 में बढ़कर एक प्रतिशत हो जाने की संभावना व्यक्त की गई है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि धीरे-धीरे इस कार्यक्रम को चार वर्ष की अवधि में 150 जिलों से आरंभ कर पूरे देश में लागू कर दिया जाएगा।

सघड के एक प्रतिशत की अनुमानित लागत वित्तीय लागत है। वास्तविक लागत इससे काफी कम होगी। उदाहरणार्थ, किसी श्रमिक को सार्वजनिक कार्य में रोज़गार देने की वित्तीय

लागत उसकी संवैधानिक न्यूनतम मज़दूरी होगी, लेकिन श्रमिक के अन्यथा बेरोज़गार होने की स्थिति में इसकी वास्तविक लागत (जाने वाले वास्तविक संसाधन) उतनी अधिक नहीं होगी। यदि रोज़गार गारंटी की वास्तविक लागत सघड का एक प्रतिशत हो भी, तो भी चिंता की कोई बात नहीं है।

रोज़गार गारंटी की वित्त व्यवस्था से जुड़ी चुनौती को इस तथ्य के आलोक में देखे जाने की ज़रूरत है कि भारत का कर-सघड अनुपात अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में काफी कम है। केंद्र और राज्य दोनों को मिलाकर यह लगभग 15 प्रतिशत है जबकि ओईसीडी देशों में यह 37 प्रतिशत है। हाल के वर्षों में भारत का कर-सघड अनुपात कम हुआ है। उदाहरण के लिये, सघड से केंद्रीय करों का अनुपात 2003-04 में केवल 9.3 प्रतिशत था जबकि 1987-88 में यह 10.6 प्रतिशत था। दूसरी बातों के अलावा ये कुछ ऐसे संकेतक हैं जो बताते हैं कि रोज़गार गारंटी और उससे जुड़े सामाजिक कार्यक्रमों के लिये वित्त जुटाने के लिये भारत के सघड-कर अनुपात को बढ़ाए जाने की अभी काफी गुंजाइश है।

कर राजस्व बढ़ाने की दिशा में वित्त मंत्रालय में हाल ही में जमा किए गए केलकर-2 रिपोर्ट में उपयोगी संकेत हैं। हालांकि समान कर निर्धारित करने तथा कर की दरें कम कर राजस्व बढ़ाने में इसकी गहरी आस्था जैसे पक्षों पर प्रश्न किए जा सकते हैं।

पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले उपभोग अधिकार का सार्वभौम अधिकार (काम करने में असमर्थ लोगों के लिये सीधी राहत सहित) दिया जाए। इस दृष्टिकोण ने सूखा राहत के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से बेहतर काम किया है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि यदि संकटपूर्ण समय में बड़े पैमाने पर रोज़गार सृजन न किया जाता तो विगत पचास वर्षों में भारत में अनेक दुर्भिक्ष आए होते। महाराष्ट्र की रोज़गार गारंटी स्कीम ने रोज़गार-आधारित सामाजिक सुरक्षा की स्थाई प्रणाली लागू किए जाने की संभावना जता दी है।

‘अमीर पर कर’ लगाने का सिद्धांत इस पैकेज़ का निर्देशक सिद्धांत हो सकता है।

तीन भय

प्रस्तावित रोज़गार गारंटी अधिनियम को भारत में सामाजिक नीति की वृहत्तर संकल्पना के रूप में देखना बड़ा महत्वाकांक्षी लग सकता है। इस संकल्पना में सामाजिक व्यय में बड़े पैमाने पर बढ़ोतरी तथा उसकी संरचना में क्रांतिकारी सुधार, दोनों शामिल हैं।

भारत में सरकार का सामाजिक व्यय बमुश्किल सघड का 6 प्रतिशत है जबकि अमेरिका में यह 17 प्रतिशत, इंग्लैंड में 26 प्रतिशत तथा स्वीडन में 36 प्रतिशत है। इसके अलावा, जो भी राशि खर्च की जाती है उसका प्रभाव बहुत थोड़ा होता है। इसके बावजूद, चाहे स्वास्थ्य रक्षा कर क्षेत्र हो अथवा प्राथमिक शिक्षा, बाल पोषण या सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र, प्रभावकारी, कम लागत वाले हस्तक्षेपों की कमी नहीं है। आज समय की मांग है कि सामाजिक व्यय बढ़ाया जाए, साथ ही इस व्यय को उन हस्तक्षेपों पर केंद्रित किया जाए जो प्रभावी हों।

रोज़गार गारंटी अधिनियम इस दृष्टिकोण में एकदम फिट बैठता है। ग्रामीण परिवारों को आर्थिक असुरक्षा से बचाने का एकमात्र सुझात तरीका यह है कि मांग पर राहतकारी रोज़गार का सार्वभौम अधिकार (काम करने में असमर्थ लोगों के लिये सीधी राहत सहित) दिया जाए। इस दृष्टिकोण ने सूखा राहत के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से बेहतर काम किया है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि यदि संकटपूर्ण समय में बड़े पैमाने पर रोज़गार सृजन न किया जाता तो विगत पचास वर्षों में भारत में अनेक दुर्भिक्ष आए होते। महाराष्ट्र की रोज़गार गारंटी स्कीम ने रोज़गार-आधारित सामाजिक सुरक्षा की स्थाई प्रणाली लागू किए जाने की संभावना जता दी है।

रोज़गार गारंटी अधिनियम से जुड़े तीन प्रकार के भय का निराकरण ज़रूरी है। पहला यह कि व्यापक भ्रष्टाचार की वजह से धन की बर्बादी होगी। इस संदर्भ में राजीव गांधी की इस उक्ति का प्रायः हवाला दिया जाता है कि ग्रामीण उन्मूलन कार्यक्रमों पर खर्च किए जाने वाले प्रत्येक एक रुपये में से मात्र 15 पैसे ही

वस्तुतः उन लोगों तक पहुंच पाते हैं। लेकिन यह एक तथ्य है कि इस बहुप्रचारित आंकड़े को कभी भी प्रमाणित नहीं किया गया। इसके अलावा, यह भी महत्वपूर्ण है कि अलग-अलग कार्यक्रमों पर किए जाने वाले सार्वजनिक व्यय के संदर्भ में इसका प्रभाव काफी सीमा तक अलग-अलग होता है। निश्चित रूप से अनेक कार्यक्रमों के ऐसे भी उल्लेखनीय उदाहरण हैं जिनके अंतर्गत बेहतर काम किया गया है। इनमें राहत कार्य शामिल हैं।

दूसरा भय यह है कि रोज़गार गारंटी अधिनियम से वित्तीय दिवालियेपन की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, रोज़गार गारंटी की लागत 2005-06 में सघड के 0.5 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में जैसे-जैसे समूचे देश में इसे लागू किया जाएगा। हालांकि यह अनुमान तुलनात्मक रूप से आदर्श स्थितियों पर आधारित है जिनमें अधिनियम अपने वायदे पर खरा उतरेगा। यदि ऐसा हुआ, तो सघड का एक प्रतिशत अधिकांश ग्रामीण परिवारों की भयंकर ग्रीष्मी रक्षा करने के लिये दिया जाने वाला तर्कसंगत मूल्य होगा।

तीसरा भय यह है कि सरकार अंतहीन विवादों में उलझ जाएगी, क्योंकि पीड़ित मज़दूर स्थानीय प्राधिकारियों को अदालत में ले जाएगे। एक बार फिर यह व्यावहारिक अनुभव के विपरीत है। क्या महाराष्ट्र में ऐसा हुआ? क्या ऐसा न्यूनतम मज़दूरी कानूनों के संदर्भ में हुआ जबकि न केवल निजी क्षेत्र में, बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी इसका निर्लज्ज उल्लंघन किया गया? क्या यह सूचना का अधिकार कानून के साथ हुआ जिसका उल्लंघन ज्यादा आसान है? क्या यह प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाए जाने पर हुआ? कतई नहीं। सच्चाई यह है कि आम भारतीय नागरिक अनेक कारणों से कोट-कच्चरी से डरते हैं और वे उनसे भरसक दूर रहना चाहेंगे, उनके आसपास भी फटकना नहीं चाहेंगे। कुछ जनरुचि मामले दायर हो सकते हैं, लेकिन वह भी बुरी बात नहीं होगी।

रोज़गार गारंटी अधिनियम का मुख्य उद्देश्य

आवाम को काम के अपने संवैधानिक अधिकार के बुनियादी पहलू के बारे में सरकार से दावा करने के योग्य बनाना है। ऐसा हो, इसके लिये ज़रूरी है कि अधिनियम उन्हें प्रभावी तथा टिकाऊ अधिकार दे। इसका लक्ष्य वंचितों को शक्ति देना तथा संबद्ध अधिकारियों द्वारा कर्तव्य पालन में किसी प्रकार की लापरवाही के विरुद्ध व्यापक उपाय करना है।

सलाहकार परिषद के प्रारूप की एक विशेषता यह थी कि यह सार्वभौमिकता और आत्मचयन के दोहरे सिद्धांत पर आधारित था। इसमें सभी परिवार आवेदन कर सकते थे और अधिनियम को पांच वर्ष के भीतर समूचे ग्रामीण भारत में लागू किया जाना था। प्रात्रता आधार को अनावश्यक माना गया था, क्योंकि न्यूनतम मज़दूरी पर अनियमित शारीरिक श्रम करने की इच्छा अपने-आप में ज़रूरत का द्योतक है। आत्मचयन प्रणाली की प्रभावशीलता राहत कार्यों में भारत के सुदीर्घ अनुभव पर आधारित है।

इसी त्वरा में विधेयक रोज़गार गारंटी और बेरोज़गारी भत्ता, दोनों को 'निर्धन परिवारों'

तक सीमित करने की अनुमति देता है। यह तटस्थ प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में यह बेहद ख़तरनाक है। 'निर्धन परिवारों' की पहचान कैसे की जाएगी? विधेयक में निर्धन परिवारों की परिभाषा संबद्ध वित्तीय वर्ष के दौरान ग्रामीण रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के रूप में दी गई है। लेकिन यह महज पुनरुक्ति जैसा है, इसमें कोई व्यावहारिक दिशानिर्देश नहीं है। व्यवहार में राज्य सरकारों द्वारा रोज़गार गारंटी कार्यक्रमों को बीपीएल कार्डधारियों तक सीमित करने की पूरी संभावना है। लेकिन बीपीएल सूची को बेहद अविश्वसनीय माना जाता है और इस सीमा की वजह से अनेक निर्धन परिवार कार्यक्रम का लाभ पाने से वंचित रह जाएंगे। इससे ग्रामीण परिवारों को आर्थिक असुरक्षा से बचाने का रोज़गार गारंटी का मुख्य प्रयोजन परास्त हो जाएगा। इसके अलावा इस दृष्टिकोण से ग्रामीण रेखा से नीचे तथा उसके ऊपर जीवनयापन करने वाले परिवारों के बीच घातक सामाजिक विभाजन और बढ़ेगा।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी विधेयक, 2004 श्रमिकों को राज्य की सदाशयता के भरोसे छोड़ देता है। निश्चित रूप से कोई

हितैषी सरकार इस विधायिका का सदुपयोग ग्रामीण ग्रामीणों को बड़े पैमाने पर काम के अवसर प्रदान करने के लिये कर सकती है। साथ ही, इस अधिनियम के अंतर्गत सरकार किसी भी समय अपने स्वैच्छिक अधिकारों का प्रयोग इस पूरी परियोजना को समाप्त करने के लिये कर सकती है। इस संदर्भ में सरकार की सदाशयता पर यकीन करना अनुभव पर उम्मीद की जीत होगी।

कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रभावशाली रोज़गार गारंटी अधिनियम के लिये संघर्ष को छोड़ देना चाहिए। सिद्धांततः इस विधेयक में अब भी संशोधन किया जा सकता है और संसद के बजट सत्र में इसे पारित किया जा सकता है। लेकिन संपूर्ण रोज़गार गारंटी अधिनियम की लोकप्रिय मांग की पुरज़ोर अभिव्यक्ति के बगैर ऐसा होने की संभावना नहीं है। श्रमिक आंदोलन तथा काम के अधिकार के लिये समर्पित सभी संगठनों के सम्मुख यह एक रोचक चुनौती है। □

(लेखक दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स के अर्थशास्त्र विभाग में मानद प्रोफेसर हैं)

(अप्रैल 2005 अंक से)

(पृष्ठ 78 का शोधांश)

के आयात तक सीमित किया जाए, पेट्रोलियम पदार्थों की खपत में मितव्ययित बरती जाए तथा पेट्रोलियम पदार्थों का देश में ही उत्पादन बढ़ाने के लिये युद्ध स्तर पर कार्ययोजना तैयार की जाए जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का संरक्षण संभव हो।

हमारे शासकों ने अभी तक आय से अधिक व्यय किया है। यदि हमारे शासक वर्ग ने फिजूलखर्चों व अनुत्पादक व्यय करने की पुरानी प्रवृत्ति का परित्याग नहीं किया तो मुद्रा कोष से मिलने वाला ऋण सिर्फ रोग के लक्षणों का इलाज बनकर रह जाएगा। वास्तविक रोग बना रहेगा। अतः बाह्य एवं आंतरिक ऋणों का अत्यंत मितव्ययिता के साथ उत्पादक कार्यों में ही उपयोग किया जाए।

राष्ट्र के निर्माण में ग्रामीण जनता का त्याग-तपस्या ही काफी नहीं है, आर्थिक संकट के इस दौर में त्याग का समुचित वितरण करने

के लिये 100 से अधिक बड़ी निगमित कंपनियों को प्रत्यक्षकर के दायरे में लाया जाना ज़रूरी है जो अभी तक कोई कर नहीं देती हैं।

यह भी बहुत आशाजनक नहीं है कि सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद की वर्तमान दशा में विदेशी पर्यटकों के भरोसे अर्थव्यवस्था का मौजूदा संकट ठीक हो जाए। अतः विदेशी पर्यटकों के स्वतंत्र पर अर्थव्यवस्था की पूरी शक्ति लगाने का कोई औचित्य नहीं है।

दुर्लभ मुद्रा का संकट अब इतना गहरा हो चुका है कि सभी राजनीतिक दल, विरोधी विचारधाराओं के बावजूद यह मानने लगे हैं कि आर्थिक असंतुलन को दूर करने के लिये कठोर निर्णय लेने पड़ेंगे। अतः वर्तमान दुर्लभ मुद्रा संकट से उबरने के लिये हमें तत्काल अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष में विदेशी ऋण लेने की ज़रूरत है। लेकिन साहूकार महाजन के अंदाज

में बैंक कोष की नवी मांग है कि रुपये का 12 प्रतिशत और अवमूल्यन किया जाए, इस प्रकार एक ही वर्ष में लगभग 30 प्रतिशत अवमूल्यन हो जाएगा, साथ ही बैंक कोष ने खाद, बीज, अन आदि पर सब्सिडी खत्म करने, नवी या ऊंची दरों से कर लगाकर आंतरिक बजट घोटे को पाटने और पश्चिमी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत में कार्य करने की छूट देने व उन्मुक्त आयात करने की शर्त लगाई है लेकिन पिछला अनुभव यह बताता है कि खुला आयात करने और विदेशी भुगतान का बोझ बढ़ाते जाने से न तो अपेक्षित उत्पादन बढ़ता है और न निर्यात में ही समुचित वृद्धि होती है, जबकि निर्यात मुख्यतः परंपरागत कच्चे माल का होता है। अतः इस विसंगति को दूर करने के लिये गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। □

(लेखक डा. पी.द.ब. हिमालयन राज, स्ना. महाविद्यालय कोटद्वारा, गढ़वाल से संबद्ध हैं; 15 नवंबर, 1991 अंक से)

पानी और ज़मीन दोनों पर चलने वाली साईकिल

ज्ञान समाज के निर्माण का एक प्रमुख अवयव नवीन खोज या नवाचार होता है। ज्ञान समाज हमें विकसित समाज की ओर अग्रसर करता है। साधारण से लगने वाले ये नवाचार ग्रामीण भारत में जीवन सरल बनाते हैं

मेहम्मद सैदुल्लाह मोतीहारी जिला (बिहार) के जटवा-जेटेवा (पूर्वी चंपारण) नामक छोटे-से गांव में पला-बढ़ा। सैदुल्लाह ने गजपुरा में रामसिंह छोतीनी में दसवीं कक्षा तक अध्ययन किया परंतु व्यक्तिगत कारणों से वह अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर सका। उसका विवाह 1960 में नूरजहां से हुआ और उसके तीन बच्चे- दो पुत्रियां और एक पुत्र हैं। उसकी आयु 60 वर्ष है और वह एक श्रद्धावान मुसलमान है। आत्मसम्मान और आत्मविकास उसके दो सिद्धांत हैं और वह अत्यधिक दयालु व्यक्ति है जो आर्थिक कष्ट में पड़े अपने दोस्तों की अक्सर सहायता करता है।

“आविष्कारक का मस्तिष्क स्वतंत्र होना चाहिए, शर्तों से बंधा हुआ नहीं”- यही वह विश्वास है जिसने जल और ज़मीन दोनों पर चलने वाली साईकिल, छोटे ट्रैक्टर, चाभी से चालित टेबुल पंखा, चारा काटने वाले से संचालित छोटा जल पंप, स्प्रिंग युक्त (झटका सहने वाली) साईकिल जैसे तथा अन्य बहुउपयोगी उत्पादों के विकास हेतु मोहम्मद सैदुल्लाह की उत्कंठा को साकार किया है।

इन चारों के अलावा सैदुल्लाह के दिमाग में दो और विचार पलते हैं। इनमें से एक है, छोटे

विद्युत पावरहाउस का विकास करना। इससे कम से कम दो पंखों और दो बल्बों के लायक बिजली पैदा होगी। इसे विकसित करने की लागत 50,000 रुपये होगी। दूसरा विचार एक हेलीकॉप्टर के विकास का है जिसकी लागत 25 लाख रुपये होगी। उसके अधिकांश नयी खोजों में ‘नूर’ नाम शामिल है। यह उसकी स्वर्गीया पत्ती जिसका नाम ‘नूरजहां’ था, की स्मृति को जीवित रखने के लिये है। इस प्रकार हमारे पास ‘नूर साईकिल’, ‘नूरराहत बिजली पावर हाउस’, ‘नूर वाटर पंप’ आदि हैं।

मोहम्मद सैदुल्लाह अपनी पुत्री के साथ पूर्वी चंपारण (मोतीहारी) के मठिया डीह गांव में रहता है। दुर्भाग्यवश नयी खोजों के प्रति उसके असीम प्यार के लिये उसे व्यक्तिगत कीमत चुकानी पड़ी है, क्योंकि उसका बेटा उससे अलग रहने लगा है और वह ज़मीन और पैसों की मांग

कर रहा है। परंतु सैदुल्लाह ने अपनी सभी 40 एकड़ ज़मीन अपनी नयी खोजों के लिये और अपनी उदारता के कारण बेच दिया है।

उत्पत्ति

बिहार बाढ़ से प्रभावित राज्य है। 1975 में चंपारण में भयंकर बाढ़ आई थी जो लगभग तीन सप्ताह तक रही और सैदुल्लाह को खाद्य-सामग्रियां प्राप्त करने हेतु नदी पार करना था। नदी पार करने हेतु उसे नाव का प्रयोग करना था और शहर में उसे साईकिल का प्रयोग करना था। तब उसे ख्याल आया कि अगर वह कोई ऐसी साईकिल बना सके जो पानी में तैरता हो और ज़मीन पर भी चलता हो, तो इससे पैसे की बचत होगी। इस तीन सप्ताह के अंदर ही उसने ऐसी साईकिल का विकास किया। ज़मीन और पानी दोनों में चलने वाली इस साईकिल का प्रयोग करते हुए उसने पहले जाधाट से महेंद्रधाट तक (पटना) गंगा नदी पार की। तैरनेवाली इस साईकिल के निर्माण पर प्रारंभ में उसने रु. 6,000 खर्च किए। परंतु अब उसका कहना है कि वह उसे रु. 3,000 में बना सकने में सक्षम हो जाएगा।

नयी खोज

ज़मीन और पानी दोनों पर चलने वाली साईकिल के साथ दो





CHIEF MINISTER
JAMMU AND KASHMIR

Mufti Mohammad Sayeed

संदेश

मुझे यह जानकर खुशी हो रही है कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार जम्मू-कश्मीर सरकार के सूचना मंत्रालय के साथ मिलकर अपने माहनामा 'योजना' में 'झरोखा जम्मू-कश्मीर का' का नाम से एक खास फीचर निकाल रही है। मुझे यकीन है कि 'झरोखा जम्मू-कश्मीर का' हमारी रियासत में तिजारत के मौकों और और इक्तिसादी सरगर्मियों की संभावनाओं के बारे में जागरूकता पैदा करेगा।

रियासत के ज़मीनी हालात में काफी बेहतरी आई है। रियासत में किया जाने वाला हर सरमायाकारी आखिरकार अमन और शांति की बहाली के लिये सरमायाकारी होगा।

मुझे उम्मीद है कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय व जम्मू-कश्मीर सरकार की इस मोश्तरका कोशिश से रियासत में सनअंतों और कारोबार में सरमायाकारी के लिये जबरदस्त इमकानात होंगे।

श्रीनगर

7 जून, 2005

(मुफ्ती मोहम्मद सईद)

जुलाई 2005 अंक से योजना में झरोखा जम्मू-कश्मीर का नामक संबंध आरंभ किया गया। उस अक्सर जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन मुख्यमंत्री द्वारा भेजा गया संदेश

अतिरिक्त अटैचमेंट जुड़ा होता है जो इसे पानी और ज़मीन दोनों पर चलने में सक्षम बनाता है। पहले अटैचमेंट में चार आयताकार पानी पर तैरनेवाला डॉंगा लगा होता है जो पानी में चलते समय साईकिल को सहारा देता है। ये आयताकार तैरनेवाले डॉंगे दो जोड़ियों में होते हैं और प्रत्येक जोड़ी एक टुकड़े की सहायता से अगले और पिछले पहिए के दोनों तरफ जुड़े होते हैं। इन डॉंगों को ज़मीन पर चलते समय मोड़ा जा सकता है। ये तैरनेवाले डॉंगे हल्के वजन के होते हैं और इसलिये साईकिल सवार कोई अतिरिक्त बोझ नहीं महसूस करता। दूसरे अटैचमेंट में पंखे के ब्लेड होते हैं जो पिछले पहिए की तीलियों (स्पोक्स) से

त्रिज्याकार रूप में जुड़े होते हैं। जब साईकिल सवार पानी में साईकिल की पैडलों को चलाता है तो पिछले पहिए से जुड़े ये पंखे पानी को पीछे की ओर ठेलते हैं और इस तरह साईकिल आगे बढ़ती है। ये ब्लेड इस तरह लगे होते हैं कि इसे पीछे की ओर भी चलाया जा सकता है।

लाभ

इसके लाभ स्पष्ट हैं। ग्रामीण क्षेत्र की जनता को अब नदी पार करने हेतु अत्यधिक भीड़ वाले कुछ नावों पर ही निर्भर रहना आवश्यक नहीं है। नदी पार करने का काम अपनी सुविधानुसार भी किया जा सकता है। चूंकि यह साईकिल ज़मीन और पानी दोनों पर चलती है, नदी पार करने हेतु नाव किराए

पर लेने और आगे ज़मीन पर यातायात संबंधी समय के साथ ही धन की भी बचत होती है। आगे इसका प्रयोग एम्यूज़मेंट पार्क या बच्चों के पार्क में, ज़ील के आसपास रहनेवाले लोगों तक खाद्य सामग्रियां भेजने में, पानी के खरपतवारों को हटाने में अथवा सामान या नसरी के पौधों आदि के दोनेवाले बेड़े को खींचने में हो सकता है। एनआईएफ ने माइक्रो वैंचर इन्नोवेशन फंड से ज़मीन और पानी पर चलने वाली साईकिल के बाज़ार शोध हेतु इसके आदर्श रूप के अन्य नयी खोजों के विकास के लिये सैदुल्लाह को 33,750 रु. की राशि की स्वीकृति दी है। □

(अप्रैल 2005 अंक से)

श्रीनगर में छात्रों के साथ राष्ट्रपति की बातचीत

Hमारे बच्चों के सपने हैं। उनका सपना है कि वे एक खुश, खुशहाल और सुरक्षित देश में रहें। हम उनके सपनों के नये भारत का निर्माण कैसे करें? इन सपनों को साकार बनाने के लिये कुछ अनूठे गुण होने ज़रूरी हैं।

राष्ट्रपति का संदेश

प्रिय बच्चों, आप शिक्षा प्राप्त करने के काम में लगे हैं। शिक्षा से क्या मिलेगा? 'जब शिक्षा उद्देश्यपूर्ण होती है तो रचनात्मकता बढ़ती है। जब रचनात्मकता बढ़ती है तो चिंतन करने की शुरुआत होती है। जब चिंतन करने की शुरुआत होती है तो ज्ञान का प्रकाश फैलता है। जब ज्ञान का प्रकाश फैलता है तो अर्थव्यवस्था फलती-फूलती है।

कुछ भी असंभव नहीं

मानव उड़ान मानव मन की रचनात्मकता की उड़ान के अलावा और कुछ नहीं है। उत्कृष्टता की प्राप्ति तक उसे अनेक तरह से संघर्ष करना पड़ता है। एक जाने-माने वैज्ञानिक ने जो लंदन की रौयल सोसायटी के अध्यक्ष भी थे, 1895 में कहा था 'कोई भी चीज जो हवा से भारी हो, उड़ नहीं सकती, उसे उड़ाया नहीं जा सकता।' एक दशक के अंदर ही, राइट बंधुओं ने साबित कर दिया कि आदमी उड़ सकता है, भले ही इस काम में काफी जोखिम और ख़र्च आए।

1969 में चंद्रमा मिशन के पूरे होने पर प्रसिद्ध राकेट डिजाइनर, बोन ब्राउन ने 1975 में कहा था - 'अगर मुझे अधिकार मिले तो मैं असंभव शब्द हटा दूँ।' ये वही ब्राउन थे जिन्होंने मानवरहित अंतरिक्ष यान भेजने वाला सैटर्ट-5 राकेट बनाया जिसके कारण चंद्रमा पर मानव का पदार्पण संभव हुआ।

युवकों को इन उदाहरणों से सीख लेनी चाहिए और हर चीज संभव बनाने के लिये काम करना चाहिए।

बच्चों के लिये छह सूत्री शपथ

1. मैं पूरी निष्ठा के साथ शिक्षा ग्रहण करूँगा और उत्कृष्टता प्राप्त करूँगा।
2. मैं कम से कम 5 पौधे लगाऊंगा और लगातार देखरेख करके उनकी वृद्धि सुनिश्चित करूँगा।
3. मैं सभी मुसीबतज़्दा लोगों के कष्ट दूर करने के लिये लगातार प्रयास करूँगा।
4. मैं एक प्रबुद्ध नागरिक बनाने के लिये काम करूँगा और अपने परिवार को सही राह दिखाऊंगा।
5. मैं मानसिक एवं शारीरिक रूप से विकलांग लोगों का सदैव मित्र बनूँगा और उन्हें हम सभी की तरह सामान्य जीवन बिताने में मदद के लिये कड़ी मेहनत करूँगा।
6. हम भारत के बच्चे वादा करते हैं कि हम अपने देश को एक विकसित राष्ट्र बनाने के लिये ईमानदारी के साथ कठोर परिश्रम करेंगे।

प्रश्नोत्तर का दौर

प्रश्न: महोदय, क्या आप इतिहास में एक महान वैज्ञानिक, भारत के राष्ट्रपति अथवा एक महान शिक्षक के रूप में याद किया जाना पसंद करेंगे?

- हुमैरा, तिबेतन पब्लिक स्कूल, श्रीनगर उत्तर - मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे एक अच्छे इंसान के रूप में याद करें।

प्रश्न: राष्ट्रपति महोदय, आपको मालूम ही है कि आज के बच्चों के पास समय की बहुत कमी है। शायद ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं थी। किताबों की अधिकता, साथियों के दबाव और माता-पिता की उम्मीदों को देखते हुए समय प्रबंधन के बारे में आप हमें क्या सलाह देंगे?

- मीर फहीम रसूल, एस.पी. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, श्रीनगर

उत्तर : आपको अपना उद्देश्य तय करना होगा। फिर लगातार उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये

कड़ी मेहनत करनी होगी। अगर आपको अपने विषय से लगाव पैदा हो जाता है तो आप में गहरी रुचि पैदा हो जाएगी जिससे आप अपने समय का बेहतर प्रबंधन करने लगेंगे। किसी प्रकार के दबाव को प्रभावित न करने दो। अपने फैसले खुद करो। समस्याओं के स्वामी बन कर समस्याओं को जीत लो और कामयाबी हासिल करो।

प्रश्न: महोदय, अपने देश में विज्ञान की पढ़ाई तो अधिक की जाती है, लेकिन उस पर अमल कम किया जाता है। इसे बदलने के लिये आप क्या सुझाव देंगे?

- इश्तियाक़ अहमद डार,

बीएचएसएस, अनंतनाग

उत्तर: विज्ञान को कृषि, उद्योग, औषधि उद्योग, अंतरिक्ष आदि क्षेत्रों में तथा दिन-प्रतिदिन के जीवन में लागू किया जा रहा है। लेकिन, विज्ञान पर अमल से पहले इसे समझना ज़रूरी है, अतः पढ़ाई भी ज़रूरी है।

प्रश्न: महामहिम, हजारों बच्चे बालश्रम में लगे हैं। भारत के राष्ट्रपति होने के नाते क्या आपको नहीं लगता कि उनके साथ भी बेहतर व्यवहार होना चाहिए?

- आशीष कुमार, बीएचएसएस,

राजपुरा, पुलवामा

उत्तर : मैंने एक विधेयक को स्वीकृति दी है जिसमें 5-14 वर्ष की आयु वाले सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था है। साथ ही, उद्योगों को निर्देश जारी किए जा रहे हैं कि वे बच्चों को मज़दूरी में न लगाएं। अनेक राज्यों में दोपहर के भोजन की योजना लागू की गई है ताकि बच्चों को कुपोषण से बचाया जा सके। देश के बच्चों को बालश्रम की बुराई से बचाने के लिये सामाजिक स्तर पर सामूहिक प्रयासों की ज़रूरत है। □

(श्रीनगर में स्कूली बच्चों के साथ राष्ट्रपति की बातचीत के आधार पर संकलित)

SUBODH JHA CIVIL ACADEMY

हिन्दी माध्यम के लिए समर्पित एकमात्र संस्थान

मार्ग दर्शन एवं ज्ञान सिर्फ गुरु ज्ञे न कि शिक्षक ले

क्या आप जानते हैं?

- * शिक्षक तथा गुरु में अंतर है!
- * सफलता गुरु के निर्देश में प्राप्त किये जाते हैं।
- * वैचारिकी, मौलिकता, आत्मविश्वास सिर्फ गुरु विकसित करता है शिक्षक सिर्फ पढ़ाता है।
- * असफल छात्र-परिवर्तित शिक्षक पढ़ाना नहीं जानते तथा क्या पढ़ाना है बिल्कुल ही नहीं जानते!
- * शिक्षक भी छात्र को बेवकूफ बनाते हैं तथा धोखा देते हैं।
- * सफल छात्रों के एक ही फोटो तथा नाम अनेक संस्थान में छापते हैं।
- * धोखा तथा अविश्वसनीयता दिल्ली की विशेषता है।
- * अतः आप सावधान रहें।

कार्य प्रणाली एवं योजना

- मेन्स तथा प्रिलिम्स की पृथक कक्षाएं
- कक्षा आरेख चित्र में माध्यम से
- सभी टॉपिक के क्लास नोट्स (अध्यापन एवं लेखन)
- प्रिंटेंड मेटेरियल पूर्णतः परिवर्धित एवं परिमार्जित
- प्रारंभिक परीक्षा के वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का अभ्यास
- मुख्यर्जी मॉडल में उत्तर लेखन शैली का विकास
- 40 टेस्ट यूनिट के अनुसार

पत्राचार कोर्स

**समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र,
लोक प्रशासन, सामान्य अध्ययन,
राजनीति विज्ञान एवं भूगोल
में उपलब्ध**

समाजशास्त्र को दिल्ली में चर्चित बनाने वाले, हिन्दी माध्यम में इसे स्थापित करने वाले, सिद्धांतों की जटिलता को सरल बनाने वाले विद्यात विशेषज्ञ



SUBODH JHA

(B.Sc., M.A., LL.B., NET, SRF)

नियमित कक्षा कार्यक्रम

समाजशास्त्र द्वारा SUBODH JHA

दर्शनशास्त्र द्वारा डॉ० उपेन्द्र कुमार

लोक प्रशासन द्वारा महिषाल चारण हिलोड़ी

सामान्य अध्ययन विशेषज्ञों के समूह द्वारा

समसामयिक सामाजिक राष्ट्रीय मुद्रे - सुबोध ज्ञा

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तथा संबंध इतिहास - अखर मलिक

राजव्यवस्था - महिषाल चारण हिलोड़ी

भूगोल - प्रवीण चौबे

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी - दुर्गेश कुमार (B.Tech.)

संख्यीकीय एवं तार्किक योग्यता - दुर्गेश कुमार

फ्री कैरियर काउन्सलिंग

ADD- A-14 घंडारी हाउस (बेसमेंट), निकट चावला रेस्टोरेंट, मुख्यर्जी नगर दिल्ली- 9
Ph.: 011-65462132, 09873337566, 09350260167

YH/1/7/04

योजना, जनवरी 2007

शीर्ष लोक सेवा में प्रतिस्पर्धा ज़रूरी

○ अरविंद पनगढ़िया

वि

गत दो दशकों के दौरान भारत में एकाधिकार समाप्त करने की दिशा में सुधारों ने लंबी यात्रा तय की है। उदाहरण के लिये निजी क्षेत्र में न केवल एंबेसडर और फीएट का मोटर वाहनों के मामले में एकाधिकार दूटा है, बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र का दूरसंचार के संदर्भ में एकाधिकार समाप्त हुआ है। इसके परिणाम आश्चर्य से कम नहीं हैं। 1950 के कारों के मॉडल से यहां के मोटर वाहन उद्योग ने सीधे इकीसर्वी सदी में छलांग लगाई है। पिछले वर्ष तो 1.20 लाख से भी अधिक कारों का निर्यात किया गया। दूरसंचार के क्षेत्र में भी पहले टेलीफोन प्रायः खराब पड़े रहते थे, गलत नंबर पर जा मिलते थे और उनके लिये भी वर्षों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उनकी जगह आज अति उन्नत सेलुलर फोन मांग पर उपलब्ध हैं तथा 2 करोड़ सेट प्रतिवर्ष की उच्च गति से प्रगति कर रहे हैं।

बावजूद इनके भारत से एकाधिकार अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। एकाधिकार वाले क्षेत्रों में भारतीय प्रशासनिक सेवा का एकाधिकार सबसे ऊपर है जो केंद्र तथा राज्य सरकारों में लोक सेवा के सभी शीर्ष पदों को नियंत्रित करता है। इस सेवा को स्वतंत्रता मिलने के तुरंत बाद अखिल भारतीय सेवाओं के एक अंग के रूप में गठित किया गया था। भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय बन सेवा जैसी सेवाएं भी अखिल भारतीय सेवाओं में शामिल थीं। उस समय एक ऐसी स्वतंत्र लोक सेवा की ज़रूरत थी जिसमें प्रतिभाशाली लड़के-लड़कियों को नियुक्त कर देशभर में समान सार्वजनिक संस्थानों की रचना की जा सके। लेकिन अब वह उद्देश्य काफी हद तक पूरा हो चुका है, नीति-निर्माण का काम अब

अति विशेषतायुक्त हो चुका है, और यह सेवा अब एक ऐसी लॉबी में बदल चुकी है जो अपने संकीर्ण हितों की रक्षा में लिप्त रहती है। अब समय आ गया है कि इसे बाहरी प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिये कहा जाए।

प्रोनंति सुनिश्चित करने के लिये इस सेवा ने केंद्र तथा राज्यों के लगभग सभी उच्चस्तरीय पदों को अपने कब्जे में ले लिया है। अपने लिये इन पदों को आरक्षित करने हेतु आमतौर पर वरिष्ठ पदों को 'संवर्ग' पद में बदल दिया जाता है। एक बार ऐसा हो जाने के बाद केवल आईएएस अधिकारी ही उस पद पर नियुक्त किया जा सकता है। इस प्रावधान का मूल उद्देश्य इस सेवा को राष्ट्रीय स्तर पर समान सार्वजनिक संस्थान गठित करने के कार्यभार को बिना रोकटोक पूरा करने हेतु सशक्त बनाना था। लेकिन समय बीतने के साथ-साथ अपने अधिकारियों की संख्या में विस्तार, सुनिश्चित प्रोनंति तथा वरिष्ठ पदों पर एकाधिकार बनाए रखना इस सेवा का बुनियादी उद्देश्य बन गया।

यदि कोई पद 'संवर्ग' पद न भी हो और उसके लिये पैनल बनाना भी हो तो भी यह सेवा सुनिश्चित करती है कि उसके लिये केवल सदस्य अधिकारी ही पैनल में शामिल किए जाएं और इस तरह उक्त पद पर कब्जा कर लेती है। केंद्र के अधिकतर सचिव तथा अतिरिक्त सचिव स्तर के पदों के साथ यही हो रहा है। गैर आईएएस व्यक्तियों को इन पदों के लिये पैनल में लिया जाना दुर्लभ है। इसने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक तथा केंद्र और राज्य स्तर के अन्य वित्तीय संस्थानों के अनेक शीर्ष पदों पर भी अपना कब्जा जमा लिया है।

इससे पूर्व कि मैं शीर्ष पदों को आईएएस से बाहर के लोगों के लिये खोलने की वकालत

करूं, संक्षेप में हाल की दो घटनाओं का उल्लेख करना चाहूँगा। पहला, दुर्भाग्यपूर्ण रूप से राज्यों में संवर्ग पदों के अविवेकपूर्ण विस्तार से इस सेवा में ही हास आरंभ हो गया है। लेखन सामग्री तथा स्टांप के निदेशक जैसे अर्थहीन पदों को संवर्ग पद में बदलने से सेवा की प्रतिष्ठा का क्षरण हुआ है।

आईएएस अधिकारियों के स्थानीय तथा केंद्र के पदों पर वैकल्पिक रूप से काम करने की मूल संकल्पना लगभग बिला गई है। केंद्र में अब मध्यम तथा कनिष्ठ पदों पर आयकर, सीमाशुल्क तथा आर्थिक सेवाओं जैसी अधिक विशेषज्ञतायुक्त सेवाओं के अधिकारी नियुक्त होने लगे हैं और केवल शीर्ष पद ही आईएएस अधिकारियों को मिल पा रहे हैं। इसका अभिप्राय यह कि अब आईएएस अधिकारियों का केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही वास्तव में केंद्र में काम कर रहा है।

शीर्ष पदों में प्रतिस्पर्धा लाएं

अपनी अंतर्चना से ही आईएएस विशेषता प्राप्त कौशल की बजाय सामान्य कौशल को प्रोत्साहित करता है। कम उम्र में प्रतियोगी परीक्षा के द्वारा प्रवेश की प्रणाली, जिसमें बीच में प्रवेश का कोई प्रावधान नहीं है, सामान्य बौद्धिक उपलब्धि को ही कैरियर में सफलता की कुंजी बना देता है। इस सेवा की आंतरिक संरचना वास्तविक विशेषता प्राप्त कौशल हासिल करने के सर्वथा विरुद्ध है।

सामान्य कौशल पर बल देने का औचित्य तब था जब अर्थव्यवस्था तुलनात्मक रूप से छोटी थी और प्रशासन-कार्य आसान था। लेकिन आज अर्थव्यवस्था कई गुना बढ़ चुकी है तथा वैश्वीकरण में तीव्र प्रगति हो रही है। अब प्रशासन-कार्य, खासकर राष्ट्रीयस्तर पर,

काफी अधिक दुरुह हो गया है। उदाहरणार्थ, वित्त मंत्रालय को अब अन्य चीजों के अलावा बड़ी-बड़ी इकाइयों, परियोजनाओं के व्यापक वर्ग के लिये नीतियां निर्धारित करनी होती हैं, वित्त तथा पूँजी बाज़ार के क्रियाकलाप पर नज़र रखनी होती है, केंद्र-राज्य वित्तीय संबंध को समन्वित करना होता है तथा सरकार की विनिवेश नीतियों को लागू करना होता है। इनमें से प्रत्येक कार्य उच्च विशेषज्ञता युक्त गतिविधि है जिनके लिये अर्थशास्त्र में शोध के अनेक उपक्षेत्रों को कवर करना पड़ता है। वाणिज्य मंत्रालय द्वारा संपादित कार्यों में भी ऐसी ही दुरुहता है।

सेवा का बचाव करने वाले लोग, जो अनिवार्यतः इस सेवा से ही संबद्ध होते हैं, यह भी तर्क देते हैं कि अब आईएएस अधिकारी भी विशेषज्ञ ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकते हैं तथा करने भी लगे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रक्रिया आरंभ हो गई है और यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है। विभाग में विशेषज्ञ अधिकारियों की मौजूदगी से शीर्ष स्तर पर उनको प्रस्तावित तथा निर्धारित करने से पूर्व उनकी उपयोगी और आवश्यक जांच की जा सकती है। लेकिन समस्या का यह समुचित उत्तर नहीं है। ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि नीति-निर्माण के लिये नौकरशाही के शीर्ष पर विभिन्न तकनीकी क्षेत्रों में जिस गहरे ज्ञान की अपेक्षा होती है वह अधिक से अधिक एक-दो वर्षों के अल्प- कालिक कार्यक्रम से नहीं अर्जित की जा सकती है।

विशेषज्ञ ज्ञान का अभाव शीर्ष पदों पर आईएएस के एकाधिकार को समाप्त करने का मात्र एक कारण है। परिवर्तन का एक दूसरा और संभवतः अधिक महत्वपूर्ण कारण भी है। किसी भी दूसरी जगह की तरह शीर्ष नौकरशाही में भी उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिये स्पर्धा का दबाव बनाना अनिवार्य है।

इस तरह की आलोचनाएं सुनने पर अनेक आईएएस अधिकारी प्रतिक्रियास्वरूप हस्तक्षेप के लिये राजनीतिज्ञों को दोष देने लगते हैं। निश्चित रूप से राजनीतिक लोग हस्तक्षेप करते हैं, लेकिन यह तर्क दो कारणों से बेमानी है।

पहला, राजनीतिज्ञ और नौकरशाह के बीच प्रायः इस बात को लेकर टकराव होता है कि शक्ति नियंत्रण कौन करे। जनतांत्रिक व्यवस्था में अंततः राजनीतिज्ञ ही जनता के प्रति जवाबदेह होता है, इसलिये अधिक छूट उसे ही मिलनी चाहिए। आखिरकार उसे हर पांच वर्ष पर चुनाव का सामना करना होता है जिसमें उसे कभी भी हटाया जा सकता है।

दूसरे, ज़रूरी शक्ति संघर्ष में कई बार नौकरशाह चालाकी करता है और राजनीतिज्ञ को पीड़ादायक नियामक बंधनों से बांध देता है जिनके बारे में निश्चय ही नौकरशाह की जानकारी अधिक होती है। राजनीतिज्ञ इस तथ्य से अवगत होते हैं और प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ राजनीतिज्ञ तबादले के अपने इकलौते अस्त्र का प्रयोग कर अवज्ञाकारी अधिकारी को ऐसी जगह भेज देते हैं जो उसके ग्रेड के अनुरूप तो होता है लेकिन अन्यथा उसे अशक्त बना देता है। राजस्थान के संभवतः सबसे ऊर्जावान मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी अपने मित्रों को कहा करते थे कि तुरंत और कुशलतापूर्वक अपना काम करा लेने में उनकी सफलता का राज दो 'क' के फार्मूले में छुपा हुआ था- इस तथ्य की जानकारी कि 'क्या' किया जाना चाहिए और उसे 'कौन' कर सकता है। यदि कोई अधिकारी उनके मार्ग में नियामक अवरोध पैदा करने की कोशिश करता था तो वे उसे तत्काल बाहर कर रास्ता दिखा देते और उसकी जगह ऐसे अधिकारी को ला बिटाते थे जो अवरोधों को छलांग कर पार करना जानता हो।

आगे का रास्ता

न्यूजीलैंड और इंग्लैंड भारत जैसी राजनीतिक व्यवस्था और लोक सेवा वाले दो ऐसे देश हैं जिन्होंने लोक सेवा में सुधार का प्रयास किया है। इन दोनों ही देशों में पारंपरिक रूप से इन अधिकारियों को पद से हटाया जाना तथा बीच में प्रवेश बेहद मुश्किल और अस्वाभाविक था। न्यूजीलैंड ने 1980 के आखिर में एकमुश्त सुधार किया। यहां एकाधिकार वाली समान रूपी लोक सेवा को अलग-अलग विभागों और सरकारी उद्यमों में तोड़ दिया गया। प्रत्येक निगम में एक निश्चित अवधि के लिये संविदा आधार पर एक मुख्य कार्यकारी को नियुक्त कर दिया गया। उसकी संविदा का नवीकरण किया जा सकता था। मुख्य कार्यकारी को उसकी इकाई के सभी कर्मचारियों का कानूनी नियोक्ता बना दिया गया तथा उसे उन्हें नियुक्त करने, हटाने, वेतन तय करने और अनुशासन कायम रखने की जिम्मेदारी सौंप दी गई। इसी तरह, उसे संभावित उत्पादन के बारे में अपने मंत्री के साथ निष्पादन समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिये कहा गया।

इंग्लैंड का सुधार इतना आमूल-चूल परिवर्तन वाला नहीं था। यहां लोक सेवा को समाप्त नहीं किया गया। भारत में लोक सेवा के न्यूजीलैंड जैसे आमूल-चूल परिवर्तनकारी सुधार की उम्मीद करना अवास्तविक होगा। लेकिन शीर्ष पदों पर कुछ परिवर्तन का प्रयोग किए जाने की महती आवश्यकता है। न्यूनतम सुधार यह हो सकता है कि केंद्र तथा राज्य सरकारों में स्थित सचिव स्तरीय तथा उसके समकक्ष सभी पदों को (कानून-व्यवस्था बनाए रखने तथा बुनियादी प्रशासन को छोड़ा जा सकता है) निश्चित अवधि, परिवर्तनीय वेतन और सुप्रस्तु संविदाकारी दायित्वों से युक्त पदों में परिवर्तित कर दिया जाए।

इसके बाद इन पदों को सेवा-पूर्व निर्दिष्ट योग्यताओं को पूरा करने वाले लोगों और बाहरी लोगों, दोनों के लिये खोला जा सकता है। इस तरह के परिवर्तन से शैक्षिक, व्यापारिक तथा वित्तीय क्षेत्रों के प्रतिभाशाली लोग शीर्ष सरकारी पदों पर आ पाएंगे। इससे नीति-निर्माण कार्य में ऊर्जस्विता का संचार होगा।

केंद्र तथा राज्यों के संयुक्त सचिव तथा उसके ऊपर के सभी पदों को प्रतिस्पर्धा के लिये खोल देना चाहिए। इसका मुख्य लाभ यह होगा कि इससे सर्वाधिक प्रतिभाशाली युवा स्त्री-पुरुषों की सरकार और बाहरी रोजगार में आवाजाही बढ़ेगी। जिस तरह सरदार पटेल के काल में अधिकारियों के लिये केंद्र

(शेषांश पृष्ठ 93 पर)

सूचना के अधिकार की लड़ाई

○ अरुणा राय

शंकर सिंह

निखिल डे

सूचना का अधिकार सत्ता में समान भागीदारी की मांग है। साथ ही, यह किसी के भी द्वारा सत्ता के निरंकुश इस्तेमाल पर अंकुश भी लगाता है। जनतांत्रिक व्यवस्था में इसकी वैधता से सशक्तीकरण और परिवर्तन के लिये संघर्ष को अपने क्षितिज और व्यापक करने का अवसर मिलता है।

मध्य राजस्थान के ब्यावर शहर में स्थित चांग गेट कई मायनों में नगर का हृदय स्थल रहा है। ब्यावर के मुख्य मार्ग तथा शहर के एक प्राचीन द्वार के बीच स्थित खुले मैदान को अनेक राजनीतिक जमावड़े तथा भावात्मक और ऐतिहासिक क्षणों के लिये प्रयुक्त किया जाता रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं की बैठकों से लेकर राजस्थान में साम्यवादी गतिविधियों के संस्थापक स्वामी कुमारानंद की सक्रियता का यह साक्षी रहा है। उनकी प्रतिमा अब यहां प्रेरणा स्रोत के रूप में उपस्थित है। अब यह मैदान राजनीतिक सभाओं, हड्डतालों तथा जलापूर्ति जैसे लोकप्रिय मुद्दों को लेकर जनजागरण अभियानों का केंद्र बन गया है। 13 अक्टूबर, 2005 के दिन यह आज़ादी के बाद की एक ऐतिहासिक घटना का साक्षी बना। उस दिन ब्यावर और उसके आसपास के लोग यहां सूचना का अधिकार अधिनियम बनने और लागू होने के उपलक्ष्य में जमा हुए थे।

यह मांग सबसे पहले कुछ समय पूर्व आसपास के गांवों में ही उठी। ब्यावरवासियों को यह समझने में थोड़ी देर लगी कि

आंदोलनकारियों की मांग शासन व्यवस्था में सहभागिता का प्रभावी उपकरण बन सकता है। आमतौर पर कहा जाता है कि ग्रामीणों को स्वतंत्रता और जनतंत्र जैसी चीजों से क्या मतलब, उन्हें तो केवल भोजन चाहिए। फ़र्क केवल यह है कि ग्रामीब इस सच्चाई को औरों से बेहतर तरीके से जानते हैं। साथ ही, उन्हें यह भी मालूम है कि उन्हें एक ऐसे मंच की ज़रूरत है जहां से वे इन बुनियादी ज़रूरतों के अभाव का विरोध कर सकें। वस्तुतः निर्धन लोग ही प्रजातंत्र, चाहे वह कितना ही भदेस क्यों न हो, का असली महत्व जानते हैं। उन्हें मालूम है कि शताब्दियों से उनके पास जितनी ताक़त थी उससे कहीं ज्यादा राजनीतिक शक्ति उन्हें पांच वर्षों में एक बार मतदान के अधिकार से मिलती है। इन्हीं लोगों ने संविधान में उल्लिखित एक-एक स्वतंत्रता के लिये लड़ाई लड़ी है। उन्हें ज्ञात है कि अभिजनों की आवाज़ किसी भी व्यवस्था में सुनी जाएगी। लेकिन ग्रामीब और वंचितों को अपने दुखड़े सुनाने का हक् केवल प्रजातंत्र में ही मिल सकता है।

जन प्रतिक्रिया

न्यूनतम मज़दूरी की एक छोटी-सी मांग

सूचना का अधिकार आंदोलन का आधार बनी। अप्रैल 1996 में ब्यावर में जब यह आंदोलन आरंभ हुआ उर्ही दिनों देश में संसदीय चुनाव प्रचार आरंभ हो गया था। इस चुनाव प्रचार के दौरान ब्यावर में जनतंत्र पर बहस हुई तथा उसे पुनर्परिभाषित किया गया। धरने में शामिल लोगों को यह बात धीरे-धीरे समझ में आने लगी कि सवाल करने और उनके जवाब मांगने के अधिकार का सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से इस्तेमाल कर वे नियंत्रण अभिजन से लेकर आमजन के हाथों में सौंप सकते हैं। शासन में भागीदारी की दिशा में यह पहला कदम था। इसमें दलितों और वंचितों की आजीविका के अधिकार तथा जनतांत्रिक व्यवस्था में स्वशासन के अधिकार की पुष्टि निहित थी।

स्वशासन की दिशा में पहला कदम

1996 के ब्यावर धरने के फलस्वरूप तात्कालिक रूप से यह मांग प्रबल हुई की नागरिकों को स्थानीय स्वशासी निकायों के दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति उपलब्ध कराने के लिये पंचायतीराज अधिनियम में संशोधन किया जाए। इसमें खासतौर पर खर्च संबंधी

बिल और शासन के समस्त क्षेत्रों को सूचना का अधिकार देने के लिये एक व्यापक अधिनियम बनाने की मांग भी की गई।

लेकिन सरकारी दस्तावेज़ों तक पहुंचने के जनता के प्रयासों को काफी विरोध झेलना पड़ा। उदाहरण के लिये, पंचायतीराज कानून में संशोधन में लगभग दो वर्ष लग गए। किंतु प्रतिरोध का सकारात्मक असर ही हुआ। अधिकाधिक लोगों को ऐसे वैधानिक अधिकार की ज़रूरत और उसकी संभावना समझ में आने लगी।

राजस्थान को सूचना का अधिकार कानून पारित करने में कुछ वर्ष और लग गए। उस कानून में भी अनेक कमियां थीं और एक तरह से वह दंतहीन था। इसके बावजूद कानून का पारित होना भर ही अपने में जनता की विजय थी।

सूचना के अधिकार का एक दूसरा पहलू भी था जिससे इसका नैसर्गिक विकास संभव हुआ। वस्तुतः विभिन्न सरकारी दस्तावेज़ों तक पहुंच के अधिकार में अनेक जनतांत्रिक सिद्धांतों की शक्ति निहित थी। इसके साथ-साथ एक ऐसे मंच की तलाश भी जारी थी जिससे इसकी व्यवहार्यता को प्रदर्शित किया जा सके और स्वशासन के प्रकल्पों को सांस्थानिक स्वरूप प्रदान किया जा सके।

ऐसे ही एक समाधान के रूप में जन सुनवाई का उदय हुआ। इसमें मंच खुला होता है जहां कोई भी व्यक्ति आकर परीक्ष्य विषय पर अपनी राय ज़ाहिर कर सकता है। इसी खूबी ने इसे आंदोलन से ज्यादा स्वीकार्य बना दिया। जन सुनवाइयों में सूचना का विश्लेषण कर अनेक कुकूल्यों का खुलासा किया गया। इससे शोधितों में अपनी व्यथा सार्वजनिक करने का साहस आया। दस्तावेज़ों के ब्यौरों में उनके प्रमाण उपलब्ध थे। जन सुनवाइयों का बहुआयामी असर हुआ और सूचना के अधिकार की बदौलत शक्ति संतुलन में परिवर्तन आया।

क्रियान्वयन

विभिन्न राज्यों द्वारा पारित सूचना के अधिकार में अनेक खामियां थीं जिनकी वजह

से उनका क्रियान्वयन कठिन था। लेकिन उन राज्यों में इनके प्रयोग को लेकर कार्यकर्ताओं के नवोन्मेष और प्रतिबद्धता के कारण आंदोलन में तेजी आई। उदाहरण के लिये, राजस्थान का कानून हालांकि भारत में ऐसा पहला कानून है, लेकिन इसमें दंड का प्रावधान नहीं है। आशय यह कि दोषी अधिकारियों के खिलाफ लोक सेवा आचरण विनियम के तहत ही कार्यवाही की जा सकती है।

सूचना के अधिकार का एक दूसरा पहलू भी है। यह सूचना के प्रयोक्ता को भी पारदर्शिता तथा जवाबदेही का समान मानक अपनाने के लिये बाध्य करता है।

आंदोलन तथा सूचना का अधिकार

सूचना का अधिकार आंदोलन ने हमेशा यह स्वीकार किया कि उसकी ताक़त अन्य आंदोलनों के साथ उसके घनिष्ठ संबंध में निहित है। इस परस्पर सहकारी रिश्ते से ही इसे रचनात्मकता और ताक़त मिलेगी। अब अनेक नागरिक संगठन अपने संघर्ष में सूचना के अधिकार को हथियार के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। उदाहरण के लिये, राजस्थान के महिला आंदोलन ने इसका प्रयोग महिलाओं के खिलाफ अत्याचार के मामलों में हुई प्रगति जानने के लिये किया। उन्होंने मांग की कि पीड़ित महिलाओं को उनके मामलों में हुई प्रगति तथा विभिन्न चिकित्सकीय-कानूनी और फोरेंसिक रिपोर्टों की जानकारी दी जाए। देशभर में अनेक नागरिक स्वातंत्र्य और मानवाधिकार समूह भी अब पुलिस और जेल प्रशासन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिये सूचना का अधिकार सिद्धांत का प्रयोग कर रहे हैं। अधिकतर मामलों में अब भी निर्धारित समय सीमा अथवा अपेक्षित तरीके से सूचना नहीं उपलब्ध कराई जा रही है। कुछ प्रकरण तो ऐसे भी हैं जहां सूचना एकदम उपलब्ध नहीं कराई जा रही। लेकिन अब लोगों को मांगी गई सूचना देने से एकदम इंकार कर देना लगभग असंभव हो गया है। ज्यों-ज्यों विभिन्न आंदोलनकारी समूह अपने प्रश्नों को और धारदार बनाते जाएंगे, त्यों-त्यों व्यवस्था उन्हें सूचनाएं देने के लिये विवश

होगी। जनतंत्र को अपने लिये अधिक अर्थपूर्ण बनाने हेतु लोगों द्वारा अधिक जानकारियां मांगकर जनतांत्रिक ढांचों को परिवर्तित करने की प्रक्रिया बढ़ती ही जाएगी। राष्ट्रीय अधिनियम के कठोर प्रावधानों की बदौलत अब शासन के उन हिस्सों तक पहुंच पाना भी संभव हो सकेगा जो अब तक सर्वथा अगम्य थे।

महाराष्ट्र में अन्ना हजारे के नेतृत्व में चले आंदोलन के फलस्वरूप वहां देश का सर्वोत्तम राज्य स्तरीय अधिनियम पारित हुआ। राष्ट्रीय अधिनियम के अनेक मुद्दों पर इसे ही मॉडल बनाया गया। केंद्रीय अधिनियम के प्रभावी हो जाने के बाद अब अनेक राज्य अपने-अपने कानून वापस ले रहे हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि केंद्रीय अधिनियम को स्वरूप प्रदान करने में प्रत्येक राज्य के अनुभवों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अब तक के परिणाम

भारतभर में सूचना के अधिकार अधियान का प्रभाव उसके तात्कालिक परिप्रेक्ष्य से काफी दूर तक प्रक्षेपित हुआ है। जन सुनवाइयों, सामाजिक लेखा परीक्षण द्वारा सूचना के अधिकार को सांस्थानिक स्वरूप मिलने, कुछ मामलों में शानदार कार्रवाई होने और इस तथ्य के आलोक में कि सूचना के अधिकार से कोई भी व्यक्ति भविष्य में किसी भी प्राधिकारी के (कु)कृत्यों की जांच स्वयं प्रपत्रों की जांच करके कर सकता है, मौजूदा भ्रष्टाचार के माहौल पर नाटकीय और विस्मयकारी असर हुआ है।

इस आंदोलन से विकास तंत्र और उसकी प्राथमिकताओं की यथार्थ परख को भी बल मिला। पहली मर्तबा ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज से जुड़ी नीतिगत बेड़ियों को समाप्त करने के मकसद से निबटाया जा रहा है।

‘परिवर्तन’ नामक संस्था की मधु भादुड़ी सरीखे लोगों ने एक नये आंदोलन को जन्म दे दिया है। मधु भादुड़ी ने दिल्ली जलबोर्ड द्वारा संशोधन से जुड़ी जानकारी हासिल करने के लिये आवेदन दिया। एक आरंभिक प्रश्न के

फलस्वरूप 400 पृष्ठों के दस्तावेज़ की प्रति हासिल की गई जिसमें पेयजल प्रबंधन के निजीकरण के लिये विश्व बैंक द्वारा बेहद भोथड़े तरीके से दिल्ली सरकार पर दबाव डाले जाने का रहस्योदयाटन हुआ। सूचना के अधिकार से व्यक्तिगत शिकायतों के निबटारे में मदद तो मिलती ही है, इससे वृहत्तर परिवर्तन तभी संभव है जब एक अकेला प्रश्न पूरे समुदाय का प्रश्न बन जाए और इस तरह जन आंदोलन का हिस्सा बने।

अभियान की चुनौतियां और विभ्रम

अब तक यह अभियान अनेक विवादास्पद मुद्दों पर ध्यान खींच चुका है। इनमें से कुछ नैतिक विभ्रम पैदा करने वाले हैं। जैसे-जैसे पारदर्शी शासनतंत्र को समाज अंगीकार करता जाएगा, अन्य मामले बहस का मुद्दा बनते रहेंगे। इनमें से कुछ पारदर्शी शासनतंत्र का लक्ष्य हासिल करने के लिये प्राथमिकताओं के पुनर्निर्धारण से जुड़े होंगे। पहली चुनौती यह है कि मौजूदा कानून और इसके क्रियान्वयन में व्याप्त कमियों को कैसे दूर किया जाए।

(पृष्ठ 90 का शेषांश)

और राज्य में आते-जाते रहना महत्वपूर्ण था, उसी तरह आज उनके लिये सरकारी और गैरसरकारी दोनों क्षेत्रों की भीतरी जानकारी महत्वपूर्ण है।

वर्तमान में सेवा में बीच में प्रवेश की कोई गुंजाइश न होने की वजह से शीर्ष लोक सेवा में जाने का फैसला कम उम्र में ही लेना पड़ता है। यदि वरिष्ठ पदों पर बीच में प्रवेश की सुविधा हो तो व्यक्ति अपने कैरियर के आरंभिक वर्षों में सरकार के बाहर का पद ले सकता है और आगे चलकर सरकार में प्रवेश पा सकता है।

यह समझना आवश्यक है कि लोक सेवा के क्षेत्र में सुधार इस अर्थ में टुकड़ों में नहीं हो सकता। इससे सुधारों की बदनामी होगी। यह सेवा एकाधिकारी के रूप में कार्य करती है और इसके लिये इक्का-दुक्का बाहरी लोगों को उपेक्षित कर देना तुलनात्मक रूप से आसान होगा।

जिन राज्यों में राज्य स्तरीय कानून मौजूद रहेगा, वहां यह चुनौती होगी कि उनका उपयोग वैधानिक स्थिति में सुधार के लिये हो, न कि उन्हें कुंदं तथा दिग्भ्रमित करने के अवसर के रूप में। इसका एक अनुपूरक यह हो सकता है कि सूचनाएं हासिल कर लेने तथा उन्हें संबद्ध अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत कर देने के उपरां भी उनकी निष्क्रियता बनी रहने पर प्रतिरोध किया जाए। इसके लिये औपचारिक न्याय की प्रक्रिया को जनता के प्रति जवाबदेह बनाना होगा अथवा उसे बदल डालना होगा क्योंकि अब तक इसे घुमा-फिरा कर ताक़तवरों की रक्षा और परिवर्तनकामियों के दमन के लिये इस्तेमाल किया जाता रहा है।

सूचना का अधिकार आंदोलन से लोगों में सहभागी जनतंत्र के लिये ज़रूरी संस्कृति, संस्थान और सिद्धांत निर्मित करने के लिये प्रयास करने की उम्मीद जगी है। सूचना का अधिकार अंततः सत्ता में समान भागीदारी की मांग है। साथ ही, यह किसी के भी द्वारा सत्ता के निरंकुश इस्तेमाल पर अंकुश भी लगाता

है। जनतांत्रिक व्यवस्था में इसकी वैधता से सशक्तीकरण और परिवर्तन के लिये संघर्ष को अपने क्षितिज और व्यापक करने की संभावना बनती है। अधिकार के प्रयोक्ता को भी जवाबदेह बनाने की इसकी क्षमता से उक्त वैधता और सशक्त होती है। एक अभियान के रूप में यह मुद्दा सैद्धांतिक, नैतिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से जैसे-जैसे बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे इसकी नयी परतें खुलेंगी और नये सवाल खड़े किए जाएंगे। यही इसकी संभावना है और यही इसकी चुनौती भी। दिल्ली में पेयजल के मुद्दे पर सूचना का उपयोग मध्यवर्ग के साथ नये संबंध बनाने के लिये हुआ। सूचना के प्रयोग की नवीन संभावनाएं उत्पन्न हो रही हैं। आने वाले दिनों में इसका रचनात्मक उपयोग कर दायरा व्यापक करते रहना ही अभियान की सबसे बड़ी चुनौती होगी। □

(लेखकत्रयी में सुश्री अरुणा राय
मजदूर किसान शक्ति संगठन की अध्यक्ष है।
शंकर सिंह और निखिल डे
भी इसी संगठन से संबद्ध हैं;
जनवरी 2006 अंक से)

बाहरी लोगों के प्रवेश के साथ-साथ दो और कदम उठाना भी ज़रूरी होगा। पहला, आईएएस अधिकारियों के पास उपयुक्त योग्यता होने के कारण यदि इन पदों को बाहरी लोगों के लिये न भी खोला जाए तो भी केंद्र में संयुक्त सचिव तथा इससे ऊपर के पदधारियों तथा राज्यों में सचिव तथा उसके ऊपर के पदधारियों के कर्तव्यों और योग्यताओं को ठीक-ठीक एवं सुस्पष्ट रूप से परिभाषित कर लेना तथा सार्वजनिक रूप से उसकी सूचना दे देना अपेक्षित होगा। इससे वरिष्ठ अधिकारियों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ेगा। दूसरे, गैरजिम्मेदार अधिकारियों को शीघ्रतापूर्वक सेवा से बाहर कर जल्दी-से-जल्दी इसे छोटा करने की बड़ी ज़रूरत है।

स्थानीय स्तर के प्रशासन में आईएएस अथवा अन्य लोक सेवा अधिकारी के बने रहने का कोई औचित्य नहीं है। विधायक जनता के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। जनतंत्र

में चुने हुए प्रतिनिधियों को ही प्रशासन का प्रमुख होना चाहिए। अब समय आ गया है कि जिला और प्रखंड स्तर पर यह बदलाव लाने की दिशा में विचार किया जाए।

मैंने जो कुछ सुझाव प्रस्तुत किया है वे रामबाण नहीं हैं। सरकार को सुधार प्रक्रिया आरंभ करने से पहले बड़े पैमाने पर तैयारी करनी होगी। इसके बावजूद एक बात तो तय है कि इस सेवा को बाहरी प्रतिस्पर्धा के सम्मुख खड़ा करना तथा विशेषज्ञता प्राप्त प्रतिभा को अधिक भूमिका सौंपना ज़रूरी है। यदि आप अब भी इस बात से सहमत नहीं हैं तो मेरी सलाह है कि आप इस सेवा के पक्षधरों की तलाश करें। संभावना यही है कि आपको ऐसा कोई व्यक्ति न मिले। यदि कोई मिल गया, तो वह इस सेवा का ही कोई सदस्य होगा। □

(लेखक कोलंबिया विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भगवती पीठ के प्रोफेसर हैं;
(अगस्त 2005 अंक से)

सुखदारी सफलता

○ संजय त्रिपाठी

कुछ माह पूर्व में राजस्थान के झुझुनू जिले के केसरी गांव की यात्रा पर रवाना हुआ। काम था दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क पर प्रसारित होने वाले मेरे विज्ञान कार्यक्रम 'टर्निंग प्वाइंट' के लिये एक स्टोरी कवर करना। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग से मुझे केवल एक पंक्ति की जानकारी दी गई थी कि केसरी गांव में विलोम रसार्कषण (रिवर्स ऑस्मासिस) संयंत्र 3 वर्ष से काम कर रहा है जो खारे पानी (अत्यधिक फ्लोराइड तत्व युक्त) को मीठे पानी में बदल रहा है। इस घटना को कवर करने के लिये मुझे जिस बात ने प्रेरित किया वह रिवर्स ऑस्मासिस जैसी उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी नहीं थी, बल्कि यह सच्चाई थी कि यह प्रौद्योगिकी एक ठेठ गांव में भलीभांति काम कर रही थी और वह भी पिछले तीन वर्षों से। मुझे कौतूहल तो था, पर कुछ-कुछ संदेह भी था। भारत में पिछले 10 वर्ष के वैज्ञानिक विकास का मेरा जो अनुभव था, उसे देखते हुए ठेठ मैदानी स्तर पर प्रौद्योगिकियों की प्रभावी सफलता की कोई कहानी मुझे याद नहीं आ रही थी।

मैदानी स्तर पर अपनाई जाने योग्य तमाम सफल प्रविधियों, देश के हजारों वैज्ञानिक संस्थानों में पर्याप्त वैज्ञानिक जनशक्ति की मौजूदगी; सरकार के पास विकास हेतु पर्याप्त धनराशि होने और उपयोगी प्रविधियों की आवश्यकता के बावजूद मुझे ऐसी किसी सफलता की कहानी याद नहीं आ रही थी। अतः ऐसी कौन-सी बात थी जो हमारे समाज के सबसे निचले तबके तक प्राविधिक सफलता का लाभ पहुंचा रही थी। मुझे उम्मीद थी कि 6 घंटे की यात्रा के अंत में इस प्रश्न का उत्तर मिल सकेगा।

हम जब केसरी पहुंचे, तो प्रौद्योगिकी को

सफलतापूर्वक अपनाए जाने के कारण, देश-भर के गांवों के लिये आदर्श बने होने की अपनी हैसियत से बेखबर यह गांव उत्तर भारत के एक अलसाए गांव जैसा ही लगा। गांव को यह अंदाज नहीं था कि उसने अपनी सफलता की कहानी सबको बताने के लिये टेलीविज़न का ध्यान भी आकर्षित कर रखा था। स्थानीय गैरसरकारी संगठन 'समग्र विकास संस्थान', जिसने वैज्ञानिकों की टीम और ग्रामीणों के बीच एक जीवंत संपर्क का काम किया था, अब यही काम हमारे लिये भी कर रहा था। हमने अपने काम की शुरुआत सबसे पहले संयंत्र देखने से की। आरओ (रिवर्स ऑस्मासिस) का विकास और निर्माण गुजरात के भावनगर स्थित केंद्रीय नमक और समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान (सीएमएसीआरआई) के वैज्ञानिकों ने देश में ही किया था। धनराशि की व्यवस्था विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, नयी दिल्ली ने की थी। जिस छोटे से भवन में यह संयंत्र लगा हुआ था, उसे राजस्थान सरकार ने उपलब्ध कराया था। राजस्थान सरकार ने ही विशाल जलाशय का निर्माण करने के अलावा संयंत्र के मासिक बिजली बिल के भुगतान का जिम्मा ले रखा था। परंतु असली प्रश्न अभी भी अनुत्तरित था। हमने एनजीओ के स्थानीय गाइड से पूछा - 'संयंत्र किस तरह चलाया जा रहा है?' इस प्रश्न का हमें जो उत्तर मिला, उसने हमारी घटे की यात्रा और इस समाचार को कवर करने के निर्णय को सार्थक कर दिया।

जब सभी सुविधाएं उपलब्ध थीं, तो ज़रूरत थी कि यह संयंत्र कुशलतापूर्वक चले और इसके लिये समूचा गांव सामने आ खड़ा हुआ था। रिवर्स ऑस्मासिस के बारे में कुछ न पता होने के बावजूद, वे इस संयंत्र को चलाने

की जिम्मेदारी लेने को तैयार थे। एक लंबे अरसे से फ्लोराइड के अतिरेक का अभिशाप झेलने को मज़बूर केसरी गांव वालों के मन में संयंत्र को चलाने में तकनीकी समस्या को लेकर कोई शंका नहीं थी। गांव के अनेक युवा तीस-चालीस वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते अपने खेत गंवा चुके थे। और जब हमारी मुलाकात इसी तरह के युवक पोकर राम से हुई तो हमें किसी सबूत की ज़रूरत नहीं रही। पोकर राम के मुंह में एक भी दांत नहीं था, परंतु संयंत्रों को लेकर उसको कोई मलाल नहीं था। उसे तसल्ली थी कि गांव के बच्चों को तो अब इस हालत से नहीं गुजरना पड़ेगा। इसी तरह के प्रेरक विचारों से भेरे केसरी गांव ने कार्रवाई की ओर पहला कदम बढ़ाया। पंचायत बुलाई गई और लोगों से निविदाएं मंगाई गईं। संयंत्र को चलाने और उसकी देखभाल करने के लिये जिसकी निविदा सबसे कम होगी, उसे ही संयंत्र को चलाने की जिम्मेदारी सौंपी जानी थी। जिस व्यक्ति का इस कार्य के लिये चयन किया गया, उसने संयंत्र को चलाने के लिये केवल एक हजार रुपये प्रतिमाह का प्रस्ताव रखा था। इस राशि में संयंत्र को चलाने वाले शिवराम नामक एक लड़के का वेतन भी शामिल था। हाई स्कूल पास इस लड़के का चयन गांव वालों ने ही किया था और वैज्ञानिकों ने चलाने का प्रशिक्षण दिया था। इस राशि के संग्रहण के लिये पंचायत ने गांव वालों पर कर लगाने का एक अनूठा तरीका अपनाया। कर लगाने का आधार था - पारंपरिक 'अंग' प्रणाली, जिसका अर्थ वे प्रत्येक परिवार द्वारा खर्च की जाने वाली पानी की सबसे कम मात्रा (इकाई)। परंपरा के अनुसार गांव के प्रत्येक परिवार को परिवार के प्रत्येक सदस्य और मवेशी के अनुपात में

भुगतान करना होता था और इसमें केवल एक सुखद अपवाद था कि परिवार की बेटियों को इससे मुक्त रखा गया था।

पिछले तीन वर्षों से काम ठीकठाक चल रहा है। शिवराम रोज़ना संयंत्र को चलाता है। उसे यह तो पता नहीं कि यह 'क्यों' काम करता है, परंतु उसे यह अच्छी तरह मालूम है कि यह 'कैसे' काम करता है। उसे इस संयंत्र को चलाने का प्रशिक्षण भावनगर के सीएसएमसीआरआई ने दिया है। संयंत्र की क्षमता रोज़ना 35 हजार लीटर खारे पानी को शुद्ध पानी में बदलने की है। संयंत्र को चलाने की बाबत किसी सहायता के लिये वैज्ञानिकों से संपर्क करने से लेकर दिन में बिजली की स्थिति के बारे में निकटवर्ती विद्युत मंडल से जानकारी लेते रहना शिवराम के ही जिम्मे हैं।

जैसे ही गांव में बिजली आती है, शिवराम संयंत्र को चलाने हेतु दौड़ पड़ता है। मशीन चलने की आवाज़ गूँजने लगती है। शुद्ध मीठा पानी टंकी में भरने लगता है। नालों के नीचे पानी भरने के बर्तन लगने लगते हैं। हम अस्सी वर्षीय सावन राम की 'साउंड बाइट' (प्रतिक्रिया) रिकार्ड करने के लिये उसके पास जाते हैं। साफ़ हिंदी बोलने में असमर्थ सावन राम पूरी कहानी को हिंदी और राजस्थानी की मिली-जुली भाषा में बयान करता है। 'ये पानी पीकर, जी सोरो होवे' (मैं जब यह पानी पीता हूँ, मेरी तबियत खुश हो जाती है)। जिस बर्तन में वह दिन में दो बार पानी भरकर ले जाता है, वह साफ़ और मीठे पानी से भरा हुआ है। वह कहता है कि तीन वर्ष पहले जो बात उसके लिये सपना थी, वह अब हकीकत में बदल गई है। एक और ग्रामवासी भगवती देवी हमें बताती है कि इससे पहले चाय में वह स्वाद नहीं आता था, जो अब आता है। उत्तेजना और संतोष के भाव के सरी गांव के प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर झलक रहे थे। दरअसल, उनकी प्रतिक्रियाओं से अधिक उनके चेहरे के भाव हमारे कैमरे पर ज्यादा स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। अंततः मुझे वह समाचार मिल गया था, जिसकी मुझे तलाश थी। एक ऐसी कहानी है जिसे मैंने अनेक वक्ताओं के प्रमुख भाषणों में सुना था, सेमिनारों में गंभीर चर्चा के विषय के रूप में देखा था, और अनेक अखबारों

और पत्रिकाओं में असंघय लेखों के रूप में पढ़ा था, लेकिन अब से पहले अपनी आंखों से कभी न देख पाया था।

वास्तव में वह क्या चीज़ है जिससे यह काम कर रहा है? इस अनुकरणीय सफलता के पीछे क्या है? क्या यह सीएमएमसीआरआई के वैज्ञानिकों का कौशल है या विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की आर्थिक सहायता? क्या ये राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त ढांचागत सुविधाएँ हैं, या फिर स्थानीय एनजीओ द्वारा उपलब्ध कराया गया महत्वपूर्ण संपर्क? क्या यह राज्य स्थित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग का प्रभावी समन्वयन है अथवा केसरी गांव के लोगों की सामुदायिक भागीदारी? शायद यह प्रश्न उसी तरह बेमानी है जैसे यह पूछना कि शरीर का कौन-सा अंग उसके समुचित और स्वस्थ रूप से काम करने के लिये अधिक महत्वपूर्ण है। संभवतः इसका उत्तर उस कहानी में छिपा है जो मैंने कभी अपनी शाला के नैतिकशास्त्र की कक्षा में पढ़ी थी। कहानी इस प्रकार है—“एक समय की बात है कि शरीर के सदस्य पेट से काफी नाराज़ हो गए। वे इस बात को लेकर दुखी थे कि उन्हें भोजन इकट्ठा कर पेट तक पहुंचाना होता है, जबकि पेट खुद कुछ नहीं करता सिवाय उसके द्वारा किए गए श्रम का फल खाने के।

अतः उन्होंने तय किया कि वे अब पेट के लिये भोजन नहीं लाएंगे। हाथ इसे मुंह तक नहीं ले जाएंगे। दांत चबाएंगे नहीं, गला निगलेगा नहीं। इससे पेट को खुद कुछ करने को विवश होना पड़ेगा। परंतु उनके इस (ना) काम का नतीजा यह हुआ कि उनकी जान को ही खतरा हो गया। अंततः उन्हें यह बात समझ आई कि एक-दूसरे की मदद कर के वे लोग दरअसल अपनी ही भलाई के लिये काम कर रहे हैं।”

इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि विकास संबंधी सफलता की कहानी के कई निर्देशांक (अंग) हैं और उनमें से प्रत्येक इस प्रक्रिया-नियोजन से लेकर क्रियान्वयन तक का महत्वपूर्ण अंग है। ज़मीनी स्तर पर अधिक कामयाबी न मिल पाने की बजह किसी योजना की कमी, धन का अभाव, प्रौद्योगिकी का

अभाव अथवा सामुदायिक भागीदारी की कमी नहीं है, बल्कि इन सभी में समुचित तालमेल के अभाव के कारण ही ऐसा हो रहा है। जब तक सरकारी पहल में इसके सभी अंगों का समन्वय नहीं होगा और उसको लोगों का संपूर्ण समर्थन एवं योगदान नहीं मिलेगा, प्रौद्योगिकी का समुचित लाभ हमारे समाज में निम्नतम स्तर तक नहीं पहुंच सकेगा। उसके सुखद परिणाम से हम अचित रहेंगे और केसरी गांव ने दिखा दिया है कि यह पूर्ण समर्थ और योगदान कोई मुश्किल बात नहीं है।

इस सुखद अहसास के साथ मैं वापस केसरी गांव से दिल्ली के लिये रवाना हुआ। मुझे इस बात का भान था कि मेरे पास एक ऐसी कहानी है जिसे लोगों तक पहुंचाना मेरा कर्तव्य है। □

(लेखक विज्ञान फिल्मों के निर्देशक हैं और वर्तमान में दूरदर्शन पर प्रसारित हो रहे टर्निंग प्लाइट नामक शृंखला का निर्देशन कर रहे हैं; जून 2006 अंक से)

लेखकों से अनुरोध

कृपया अपने लेख टाइप करा कर सीडी में भेजें। साथ में एक मूल टंकित प्रति हो। वापसी के लिये टिकट लगा लिफाफा अवश्य संलग्न करें। डाक टिकट लगा लिफाफा संलग्न न होने पर अस्वीकृति की दशा में रचनाएँ वापस भेजना संभव नहीं होगा। लेख पर दो से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों में ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार न करें। विशेष अवसरों के लिये लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। सभी रचनाएँ 'संपादक, योजना' के नाम प्रेषित करें।

- संपादक

कृषि का नवीकरण और कृषि जनित अमृद्धि

○ एम. एस. स्वामीनाथन

भारत में हरित क्रांति का प्रारंभ 1968 से हुआ जिसके फलस्वरूप गेहूं और चावल की उत्पादकता और उत्पादन में जबरदस्त वृद्धि हुई। पिछले 10 वर्षों में हरित क्रांति को विराम-सा लग गया प्रतीत होता है। खाद्यान उत्पादन की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से काफी नीचे चली गई है।

प्रधानमंत्री ने अगले दस वर्षों में, अर्थात् 2015 तक मौजूदा खाद्यान उत्पादन को 21 करोड़ टन से दुगुना बढ़ाकर 42 करोड़ टन करने पर जोर दिया है, जो उचित ही है। वर्ष 2015 को संयुक्त राष्ट्र के सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (यूएनएमडीजी) को हासिल करने को कसौटी का वर्ष भी निर्धारित किया गया है। इसके लिये 4 करोड़ हेक्टेयर से कम से कम 16 करोड़ टन चावल और ढाई करोड़ हेक्टेयर भूमि से 10 करोड़ टन गेहूं पैदा करने की आवश्यकता होगी। दालों, तिलहनों, मक्का, ज्वार और बाजरे का उत्पादन भी कम से कम 16 करोड़ टन तक पहुंचाना होगा। इसके साथ ही, फलों और सब्जियों के उत्पादन का हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य भी वर्ष 2015 तक बढ़ाकर 30 करोड़ टन तक ले जाना है।

कृषि नवीकरण वर्ष की कार्ययोजना के मुख्य अवयव निम्नानुसार होने चाहिए। इन सभी पर एक साथ और समेकित रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

मिट्टी की उर्वरा में सुधार

कृषि विश्वविद्यालयों, आईसीएआर और सीएसआईआर संस्थाओं, कृषि विज्ञान केंद्रों, उर्वरक कंपनियों, राज्य सरकारों के कृषि विभागों, किसान संगठनों और पंचायती राज संस्थाओं को वर्ष 2006-07 को मृदा स्वास्थ्य सुधार वर्ष के रूप में मनाना चाहिए। इसके लिये निम्नलिखित कदम उठाने की

आवश्यकता होगी :

(i) मिट्टी का परीक्षण करने वाली सभी प्रयोगशालाओं को पुनः पूर्णरूप से सुसज्जित करना होगा, ताकि प्रत्येक कृषि परिवार को मिट्टी का उर्वरा कार्ड दिया जा सके। इस कार्ड में मिट्टी की भौतिकी (मिट्टी की बनावट, मिट्टी की निचली सतह में बनने वाली सख्त पत्तें आदि), ग्रासायनिकी (मिट्टी के जैविक पदार्थ तथा वृहद एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति) और सूक्ष्म विज्ञान (केंचुओं की उपस्थिति, मिट्टी की सूक्ष्म जैविकता) के बारे में समेकित सूचना समाहित होगी। मृदा स्वास्थ्य कार्डों को सूक्ष्म पोषक तत्वों की कसर को पूरा करने सहित उर्वरकों के संतुलित उपयोग को भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

(ii) प्रचार अभियानों और प्रदर्शनों के जरिये चारा/फलियों में लगने वाले अनाज की फसलों की बारी-बारी अदला-बदली के साथ हरी खाद वाली फसलों को बढ़ावा देने की ज़रूरत है।

(iii) कृषि कार्य से संबंधित समस्त अवशेषों और कचरों की कंपोस्ट खाद बनाना, सूक्ष्म जैविक उर्वरकों एवं खेत वाले घरों की खाद के उपयोग को जहां तक संभव हो, प्रोत्साहित करना।

(iv) मिट्टी की उर्वरा को सुधारने के लिये समेकित पोषक तत्वों की आपूर्ति करना होगा। इनके उपयोग के लिये किसानों को तैयार करने में भी मदद की जानी चाहिए।

(v) मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में काम कर रहे स्टाफ को फिर से प्रशिक्षण देना होगा।

(vi) एकीकृत परती भूमि विकास और बायो ईंधन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना होगा।

(vii) कृषि दबाखाना (एप्री क्लीनिक) कार्यक्रम के पुनर्गठन और पुनर्जीवन की

आवश्यकता है। कृषि स्नातकों को ग्रामीण सेवा क्षेत्र में स्वरोजगार का कैरियर अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(viii) समस्या वाली मिट्टी और परती भूमि के स्थान पर उच्च उत्पादकता के लिये प्रजनक मिट्टी (ब्रीडिंग) का काम हाथ में लेना चाहिए।

(ix) परती भूमि विकास कार्यक्रम को बायोईंधन और औद्योगिक कच्चे माल (कागज, दफ्ती, रेयान, पैकेजिंग सामग्री आदि के उत्पादन हेतु) के साथ-साथ चारा और जलाऊ लकड़ी आदि के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

(x) पंचायतें सामुदायिक भूमि देख-रेख आंदोलन शुरू कर सकती हैं।

मिट्टी की उर्वरा के सुधार में ही बीज और पानी जैसे आदानों के निवेश से होने वाले लाभ की कुंजी छिपी हुई है। सूक्ष्म और वृहद पोषण की कमी को दूर करने की दृष्टि से शुष्क कृषि वाले क्षेत्रों पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने भी ज़ोर दिया है, दूसरी हरित क्रांति की शुरुआत शुष्क कृषि क्षेत्रों से ही होनी है।

सिंचाई जल : आपूर्तिवर्धन और मांग प्रबंधन

पानी एक सार्वजनिक वस्तु है और एक सामाजिक संसाधन। यह कोई निजी संपत्ति नहीं है। पानी की आपूर्ति का निजीकरण ख़तरों से भरा है और इससे स्थानीय समुदायों में जल के लिये युद्ध भी हो सकता है। वर्षा जल संचय और कुओं-बावड़ियों की रिचार्जिंग के जरिये पानी की आपूर्ति को अनिवार्य बना देना चाहिए। जिन क्षेत्रों में सभी किसान वर्षा जल संचय के लिये मिलकर काम करते हैं और पानी का उपयोग समान रूप से करते हैं, उन गांवों को दलहन और तिलहन गांवों

के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है।

ऋण एवं बीमा

ऋण सुधारों में निम्नलिखित उपाय शामिल होने चाहिए :

● कृषि ऋण पर व्याज की दर

अंतरराष्ट्रीय मानक के अनुसार भारत में जमादर और ऋणदर के बीच काफी बड़ा फासला है। कारोबार लागत और जोखिम लागत, दोनों को नियंत्रित कर वित्तीय प्रणाली की दक्षता और कुशलता में सुधार लाने की आवश्यकता है। जहां तक सरकार का प्रश्न है, फसल बीमा के साथ-साथ जिस गति और तरीके से ऋण की वसूली और बंदोबस्ती की कार्यवाही चलती है उसमें पर्याप्त सुधार की ज़रूरत है। इन सुधारों को मध्यम अवधि से दीर्घवधि में अंजाम दिया जा सकता है। अधिक व्याजदर का अर्थ है कि आय का अधिकांश हिस्सा व्याज के भुगतान पर खर्च करना होगा। कृषि की लाभदेयता में गिरावट और किसानों की बढ़ती मुसीबतों और भारी कर्ज़ को देखते हुए सरकार इस कृषि नवीकरण वर्ष में फसल ऋण पर व्याज की दर 4 प्रतिशत तक घटाकर किसानों को बैंक प्रणाली का समर्थन देने पर विचार कर सकती है। बारंबार सूखे से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में ऋण चक्र (किस्त अदायगी की अवधि) वार्षिक न होकर 4 या 5 वर्षों की किस्त का होना चाहिए।

● बकाया राशि पर व्याज-दर-व्याज (चक्रवृद्धि)

बकाया ऋण राशि पर सूद दर सूद को बढ़ाना केवल उन्हीं कर्जदारों पर लागू होना चाहिए जो भुगतान करने की क्षमता के बावजूद बकाये का भुगतान नहीं करते। जिन किसानों की आय में कमी हो रही है, या बाज़ार की असफलता के कारण जिन किसानों की भुगतान क्षमता में गिरावट आ गई है, उन पर चक्रवृद्धि व्याज नहीं लगाया जाना चाहिए।

● सूक्ष्म वित्त पोषण की बजाय जीविका वित्त पोषण

सूक्ष्म वित्त पोषण के स्थान पर जीवनयापन वित्त पोषण, ग्रीबों की जीविका को

दीर्घकालिक तौर पर समर्थन देने का व्यापक दृष्टिकोण है। क्योंकि अकेले सूक्ष्म वित्त पोषण से किसानों की ग्रीबी नहीं दूर होने वाली। इसमें ये वित्तीय सेवाएं (जीवन, स्वास्थ्य, फसल और पशुधन बीमा; सड़कों, बिजली, बाज़ार, दूरसंचार आदि के लिये ढांचागत वित्तीय सहायता और मानव विकास में निवेश सहित), कृषि और व्यापार विकास सेवाएं (उत्पादकता में वृद्धि, स्थानीय मूल्य योग, वैकल्पिक बाज़ार सुविधा आदि सहित) और संस्थागत विकास सेवाएं (विभिन्न उत्पादकों के संगठनों का गठन और सुदृढ़ीकरण, जैसे जल उपभोक्ता संगठनों, वन संरक्षण समितियों, ऋण और जिन्स सहकारिताओं, क्षमता विकास और ज्ञान केंद्रों के जरिये पंचायतों का सशक्तीकरण आदि) शामिल हैं।

● निर्धनताग्रस्त आदिवासी क्षेत्रों में संस्थागत ऋण की सुविधा

उड़ीसा के कालाहांडी, झारखण्ड के पलामू, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के शुष्क भूमि बाले कृषि क्षेत्रों में निर्धनता से ग्रस्त आदिवासी इलाकों तक संस्थागत ऋण सुविधाओं के विस्तार के लिये विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

● कृषि जोखिम कोष

हमारे देश में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां बार-बार या लगातार बाढ़ या सूखे का प्रकोप होता है जो किसानों की आय को खा जाता है। ये किसान बैंकों के कर्ज़ का भुगतान नहीं कर पाते और उन्हें ऋण प्रणाली से बाहर कर दिया जाता है। एक के बाद एक आने वाली प्राकृतिक आपदाओं के महेनज़र केवल उनसे कर्ज़ वसूली चक्र के पुनर्निर्धारण और पुनर्गठन से काम नहीं चलेगा। भारत सरकार को कृषि जोखिम कोष के गठन के बारे में सोचना होगा जो बार-बार के सूखे आदि की स्थिति में किसानों को राहत (पूर्ण माफी/कर्ज़ और व्याज की आंशिक माफी) पहुंचा सके। साथ ही, सूखे, बाढ़, टिड़ी दल अथवा अन्य प्रकार के दैवी प्रकोप से बचाने के

लिये भी किसानों के कर्ज़ पर ब्याज में राहत दे सके। इस कोष के गठन में केंद्र सरकार, राज्य सरकारों और बैंकों को एक पूर्ण निर्धारित फार्मूले के अनुसार योगदान देना चाहिए।

● विपत्तिग्रस्त गांवों में कर्ज़ वसूली पर रोक

अति विपत्तिग्रस्त गांवों में गैर संस्थागत साधनों से लिये गए ऋणों सहित सभी प्रकार के कर्ज़ों की वसूली पर पूरी तरह रोक लगाने की ज़रूरत है। खासकर जब तक कृषि कार्यों में युक्तिसंगत लाभ न होने लगे। कर्ज़ को सरल किश्तों में बांटकर उसकी वसूली को थोड़े समय के लिये रोका जा सकता है। इसके लिये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों/सहकारी बैंकों आदि जैसे स्थानीय बैंकों को तरलता समर्थन (नकद राशि का प्रवाह) बना रहना चाहिए।

● कम लागत की धारणीय कृषि हेतु ऋण

कम लागत वाली धारणीय कृषि और मत्स्य पालन आदि के लिये विशेष प्रकार की परियोजनाएं बनाए जाने की ज़रूरत है। पारंपरिक नस्ल के मवेशियों की देखभाल सहित व्यावहारिक रूप से संभव कृषि कार्यों के लिये संस्थागत ऋण की व्यवस्था होनी चाहिए।

● परिवार बीमा पॉलिसी

ग्रामीण निर्धन परिवारों की सहायता के लिये सरकार को एक ऐसी समेकित सूक्ष्म बीमा पॉलिसी जारी करनी चाहिए जिसमें विभिन्न प्रकार के जोखिमों को कवर किया जा सके। इन जोखिमों में, पति-पत्नी और आश्रितों की बीमारी, प्राकृतिक मृत्यु, दुर्घटना मृत्यु, पूर्ण स्थायी या स्थायी आंशिक अपंगता और निवास के नष्ट होने/नुकसान पहुंचने आदि को शामिल किया जाना चाहिए। इस तरह के अनेक ग्राहकों तक सेवा पहुंचाने के लिये पंचायतों/गैर-सरकारी संगठनों/स्व सहायता समूहों की सहायता ली जा सकती है। ग्रीबों के जीवन सुरक्षा कवच के तौर पर सरकार इनके प्रीमियम का आंशिक भुगतान अपनी ओर से कर सकती है।

(शेषांश पृष्ठ 103 पर)

भारतीय कृषि : समस्याएं एवं संभावनाएं

○ योगेन्द्र के अलघ

नवे के दशक में कृषि का विकास पिछड़ गया, अर्थव्यवस्था में ग्रामीण-शहरी हिस्से के रूप में संरचनात्मक परिवर्तन धीमा हो गया और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में असमानता बढ़ गई।

मैं पिछले कुछ अरसे से यह कहता आ रहा था और योजना की मध्यावधि समीक्षा (योजना आयोग, 2005) के साथ ही अब यह अधिकृत बयान बन गया है। खबर है कि वित्तमंत्री ने एक समझदारीभरा बयान दिया है कि “अर्थव्यवस्था ठीक-ठाक है, परंतु हमें नहीं पता कि कृषि का क्या करें”। कृषि में प्रगति के बिना समग्र विकास एक मृगतृष्णा बन कर रह गई है।

कृषि क्षेत्र की बीमारी की पहचान तो भलीभांति हो गई है, परंतु उत्तर देना वास्तव में बड़ा मुश्किल है। घिसी-पिटी बातों को बार-बार दोहराने से उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा, क्योंकि वे असफल रही हैं। नये समाधान ठीक तरह से तैयार नहीं किए गए हैं वे विवादास्पद भी हैं और उनके विकल्प भी अप्रिय हैं। क्या हम कम से कम, सही सवाल पूछ सकते हैं? निर्मांकित स्वतः स्पष्ट प्रस्ताव हम बिना प्रमाण के विचारार्थ पेश करते हैं:

- व्यापक और दीर्घकालिक आधार पर होने वाला कृषि विकास ग्रामीण विकास की पूर्व शर्त है। बाज़ार आधारित और दिनोंदिन मुक्त होती जा रही अर्थव्यवस्था में ऐसा तभी संभव हो सकेगा जब सुधार प्रक्रिया में फसल उत्पादन को लाभदायक बनाने का प्रयास किया जाएगा और यह बात केवल मुक्त अर्थव्यवस्था में ही नहीं बल्कि अति विकृत वैश्विक और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है। इन

नीतियों को विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के अनुकूल ही होना चाहिए और यदि वे किसी रणनीति के आधार पर बनाई गई हैं तो बाज़ार अर्थव्यवस्था के अनुकूल भी होना चाहिए (प्रत्येक फसल के लिये वसूली मूल्यों और सरकारी खरीद तथा व्यापारिक एजेंसियों की सुझाव देने वाली नीति, समय की बर्बादीभर है)।

- गैर-फसल आधारित कृषि भी महत्वपूर्ण है। दीर्घकालिक विकास के लिये यदि व्यावसायिक दृष्टिकोण से काम किया जाए तो पशुपालन के साथ, पेड़ों के जरिये भी उच्च विकास दर प्राप्त की जा सकती है। आदिवासियों को आदिम निर्धनता में ही रहना चाहिए और वनों को छूना भी नहीं चाहिए, ऐसे विचार बालीवुड (मुंबई फिल्मों) के लिये ही छोड़ देना चाहिए।
- भूमि एवं जल विकास नीतियां व्यापक आधार वाले कृषि विकास की पूर्व शर्त हैं। इस उद्देश्य के लिये लाभार्थी आधारित संगठन बनाना ज़रूरी है और इनको बनाए रखने के लिये वित्तीय नियम भी बनाने होंगे (सरकारी बोर्डों द्वारा पंचायतों को अनुदान देने की नीति अव्यावहारिक है, कोई भी पंचायत को उधार नहीं देगा)।
- प्रौद्योगिकीय छलांग लगाने की प्रक्रिया को सक्रियता से आगे बढ़ाने की आवश्यकता है (बीटी कॉटन, संकर धान और नये गेहूं के प्रति ब्राह्मणवादी नापसंदगी को उसी प्रकार की घृणा के साथ नकार देना चाहिए क्योंकि उच्च जातियों के पूर्वाग्रह मैदानी कामयाबियों के खिलाफ़ होते हैं)।
- बाज़ार से आहत होने वाले लोगों की देखभाल के लिये भी नीतियां बनानी ज़रूरी।

है। वैश्विक अर्थव्यवस्था की अति विकृत स्थिति में ऐसे आहतों की संख्या काफी अधिक हो सकती है। जहां तक संभव हो, विशेष रोज़गार नीतियों का एकीकरण व्यापक आधार वाले कृषि विकास प्रतिमानों से किया जाना चाहिए।

नवी व्यवस्था

विश्व व्यापार संगठन से प्रभावित नवी व्यापार आधारित कृषि के लिये नये प्रभावी उपायों की आवश्यकता है। न केवल पुरानी विश्वसनीय लागत-मूल्य गठबंधन बाली नीतियों पर निर्भरता की ज़रूरत है, बल्कि तटकरों, ऋण नीतियों, सार्वजनिक निवेश, पूरक सामुदायिक प्रयासों और वृहद तथा बाज़ार ढांचे जैसे बाज़ार के साधनों की भी आवश्यकता होगी, जिससे नवी चुनौतियों का सामना किया जा सके।

निष्कर्ष

कहानी की शिक्षा छोटी-सी है— बिना सकारात्मक आर्थिक माहौल के, कृषि का पुनर्जीवन असंभव है। इस पुनर्जीवन के लिये नीतियां हाजिर हैं, परंतु उनको स्वीकार किए जाने की ज़रूरत है। हमें सभी प्रमुख फसलों के लिये रूपरेखा तैयार करनी होगी जो विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के अनुकूल हो और हमने जो ‘इफिशियेंसी शिफ्टर्स’ तैयार किया है, उसकी आवश्यकता के अंतर को पाट सके। किसान को प्रतिस्पर्धा में उतारने के लिये उसे कुशल खेती की उत्पादन लागत के मामले में सहायता देनी होगी। □

(लेखक पूर्व केंद्रीय मंत्री और योजना आयोग के पूर्व सदस्य हैं;

1 अगस्त, 2006 अंक से)

विशालता का बोध

○ सरोज कुमार शुक्ल

मंथन

सं सार में किसी व्यक्ति का अतीत कभी व्यतीत नहीं होता, क्योंकि अतीत ही वर्तमान को जन्म देता है। समय भले ही शब्दहीन हो, मगर शब्दातीत है। जहां शब्द अपने अर्थ को देकर समाप्त होता है, वहीं से अनंत शून्य की यात्रा का श्रीगणेश होता है। यह आरभ हमें एक दिन उस उजाले तक पहुंचाता है, जो बिना सूर्य और चांद के होता है। परंपरा से सभी बंधे हैं, जीवन भी प्रकाशोन्मुखी यात्रा का बीजारंभ संस्कार है, परंपरा है, मरण भी एक परंपरा है। दोनों के बीच जो समय है, वही पूरा जीवन है। यही विशाल बोध की यात्रा है। विशालता का बोध फ़कीरी की दुनिया है इसकी साधना एक घोर तप है। इसमें तपस्या ही तात्पर्य और विशालता का बोध ही मंजिल है।

त्रिपाददर्थमुद्देत्पुरुषः त्रिपादेहा भवत्पुनः अर्थात् तीन हिस्सा तो अव्यक्त है, विराट ब्रह्मांड है जिसका तीन हिस्सा दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ़ एक हिस्सा दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता इसीलिये बड़ा आकर्षक है। वही सूत्र है जो दिखाई नहीं पड़ता है उसके साथ जोड़ने का। जब हम समग्र की बात करते हैं, सर्व की बात करते हैं तो सर्व में वह अधिक है जो दिखाई नहीं पड़ रहा है, पर है अवश्य। इस सोच का एक तात्पर्य यह भी है कि एक तरह से आपके भीतर जो निजता है जो एक छोटी क्षुद्र निजता है, वह नष्ट हो जाए। आप जब वहां प्रवेश करें तो आपकी पहले वहां आनन्दानिक मृत्यु हो जाए। चाहे वह यज्ञ हो, चाहे पूजा हो, एक प्रक्रिया होती है कि पहले अपने भीतर के संकोच को जलाकर राख कर दें और फिर नया जन्म लेकर अपने अस्तित्व की पताका फहराएं। फिर संसार में उसके बाद उसमें से जो ऊर्जा आएगी वह छोटी सीमा की ऊर्जा नहीं होगी और वह देवता का सक्षात् रूप होगा।

यदि समग्र दृष्टि से विचार करें तो पाएंगे कि 'पर' के कई अर्थ होते हैं जिसमें 'दूसरा'

और 'श्रेष्ठ' भी एक अर्थ है। यह जो दूसरा है, उस अर्थ में पराया नहीं है जिस अर्थ में आज लोग प्रयोग करते हैं। कहते हैं हम लोग परायेपन की ज़िंदगी, अज़नबी की ज़िंदगी में रहते हैं। यह वैसा पराया नहीं है। यह पराया अपनी ही परछाई है। अपना ही एक ऐसा स्वरूप है जो हमको पूर्णता प्रदान करता है, जिसके लिये जीना सार्थक होता है। कौन दूसरा करा रहा है। वह जो दूसरा है, जो पर है, जो श्रेष्ठतर है, वह हमसे करा रहा है। जब हम नदी की धारा बनते हैं तो नदी का जो वास्तविक संसार है वह ओझल नहीं होता, रहता है। उसे वैराग्य नहीं होता है, उससे विराग (विशेष राग) बना रहता है। हमको बांधने की आसक्ति यहां नहीं रहती है एक महाराग छा जाता है, जो छोटी-छोटी दीवारों को तोड़ कर उसे महाराग में परिवर्तित कर विराटता की भीनी-भीनी खुशबू की ओर ले जाता है।

जब क्षुद्रता नहीं रहती, एक विशाल दृष्टि रहती है तो संयम अपने-आप होता है क्योंकि तब लोभ नहीं होता। संबंध संसार से छूटता है और ब्रह्म से और दृढ़ हो जाता है। विशालता का बोध, उससे जब जुड़ जाता है, संसार रहते हुए भी नहीं रहता। उसका रूपांतरण हो जाता है। संसार के प्रति वस्तु है वह आत्मरूप हो जाती है। जो निरा देखनेवाला है वह वस्तु का दर्शन बन जाता है। एक-दूसरे के बिना उनकी पूरी व्याख्या नहीं होती। एक-दूसरे के कार्य में वे सहयोगी हैं। विशालता के बोध का एक सूत्र है, परस्पर आबद्धता है। कलिदास ने कहा, परस्परण सृहणीय शोभाम् यानी एक अलंकरण शरीर के अंगों की शोभा बढ़ाता है, साथ ही वही अंग उस अलंकरण की शोभा बढ़ाता है। यही समग्र भाव संपूर्ण सृष्टि के बारे में होना

चाहिए। विशालता के बोध में न दुख रहता है और न सही अर्थ में सुख। विछोह के अभाव की बंचना नहीं रहती और मिलन का संतोष भी नहीं रहता। इसीलिये जिसे आनंद कहा जाता है, जिसे समाधि की स्थिति कहते हैं, जिसे असीमितता की स्थिति कहते हैं, यही विशालता के बोध की सहज समाधि है। श्रीकृष्ण को उपदेश देने वाले घोर अंगिरस ने कहा कि तुम यह अनुभव करो कि तुम अचूत हो, तुम अक्षित हो, तुम प्राण संशित हो। तीनों शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। तुम अपने को अव्यय मानो। जो ख़र्च होने पर भी ख़र्च नहीं हुआ, जो व्यय होने पर भी व्यय नहीं हुआ, वह तुम हो। अक्षितमसि अर्थात् तुम्हारा कोई घर नहीं है। तुम्हारा कोई एक ठैर नहीं है, तुम सर्वत्र हो और कहीं नहीं हो। किसी को अपना कह सको ऐसा भी नहीं है और किसी को पराया कह सको, ऐसा भी नहीं है। सबसे अंत में है प्राणसंशितमसि। इसका अर्थ ही होता है, जीवन संशय में है पर वह अलग है। लेकिन एक दूसरा अर्थ है कि सान पर चढ़ाते हैं, तो चमक बढ़ती है। तो प्राण को निरंतर सान पर चढ़ा रहे हो, उसको धारदार कर रहे हो। अपने संपदन को ठीक तरह से समझने के लिये उसकी परीक्षा ले रहे हो। यह उपदेश श्रीकृष्ण को है और यह जीवन की पूर्णता का उपदेश है। लेकिन हम जानते हैं कि यह केवल श्रीकृष्ण के लिये नहीं है, वरन् उनके माध्यम से हमारे लिये आगामी समस्त पीढ़ियों के लिये है यह। इस पूर्णता को प्राप्त करने के बाद आदमी अपने लिये नहीं जीता। सबके लिये जीता है और ऐसे जीने में वह किसी अलग प्रकार के अहं का बोध नहीं करता। वह यही अनुभव करता है कि यह मेरा सहज स्वभाव है कोई वैशिष्ट्य नहीं है। विशालता का बोध भावों का, समग्र मंथन है, सहज होने की प्रक्रिया है, भीतरी तेज़ में ऊर्जा भरने का अचूक मंत्र है तथा अनुभवों को बांटने की कला है। □

(लेखक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग नवी दिल्ली में सहायक निदेशक हैं; 1 नवंबर 2006 अंक से)

इतिहास, उपलब्धियां और कमियां

○ एल.सी. जैन

हम उपलब्धियों के कुछ पहलुओं पर संक्षिप्त रूप से गौर कर सकते हैं। यह दस्तावेज़ इन उपलब्धियों को रेखांकित करता है साथ ही विभिन्न क्षेत्रों की उन कमियों को भी उजागर करता है जिन पर आने वाले वर्षों में ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत में आर्थिक सोच एवं योजना-निर्माण की प्रवृत्ति के उद्भव का एक लंबा इतिहास है। यह मुख्य रूप से दो कालों में विभाजित है : स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, जिसमें अंतरिम सरकार शामिल है। योजना निर्माण की प्रक्रिया में दो महान हस्तियों - गांधीजी और नेहरू का व्यापक प्रभाव था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार का पहला काम संविधान का निर्माण करना था, जिसमें राज्य के नीति-निर्देशक तत्व शामिल थे। इसके जरिये यह संदेश देना था कि योजना निर्माण समेत राज्य के सभी कार्यकलापों का संपूर्ण उद्देश्य नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण है। संविधान को अंगीकृत किए जाने के तत्काल बाद 1950 में अंतरिम सरकार द्वारा सुझाए गए लीक पर योजना आयोग का गठन किया गया। यह आयोग 56 वर्षों से कार्य कर रहा है।

उपलब्धियां एवं कमियां संसद में नेहरू

हम उपलब्धियों के कुछ पहलुओं पर संक्षिप्त रूप से गौर कर सकते हैं। यह दस्तावेज़ इन उपलब्धियों को रेखांकित करता है, साथ

ही विभिन्न क्षेत्रों की उन कमियों को भी उजागर करता है जिन पर आने वाले वर्षों में ध्यान देने की आवश्यकता है।

उपलब्धियां

आर्थिक सर्वेक्षण के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एवं नियोजित विकास अवधि की आर्थिक प्रगति एवं उपलब्धियों की साफ एवं सही तस्वीर प्राप्त होती है। सर्वेक्षण की तालिका में वर्णित मूल सूचक, चयनित सूचक तथा 1950-51 और उसके बाद सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि पर गौर करें। इस उल्लेखनीय आर्थिक विकास का आम जनता पर प्रभाव उनके जीवन प्रत्याशा के क्षेत्र में नज़र आता है, जो 1950-51 के मुकाबले आज दुगुनी हो गई है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की दिशा में बगैर किसी गंभीर कार्यकलाप के 35 वर्ष गुजर गए। जबकि आम जनता के स्वास्थ्य की दशा दयनीय रही, तब एक नयी पहल हुई। भारतीय सामाजिक विज्ञान परिषद और चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने संयुक्त रूप से स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाओं से संबंधित एक समग्र अवधारणा प्रस्तुत की। उनकी रिपोर्ट - 'सब के लिये स्वास्थ्य : एक वैकल्पिक रणनीति,

1981' में स्वास्थ्य को समग्र आर्थिक-सामाजिक विकास का एक आवश्यक अवयव माना गया। इस रिपोर्ट की व्यापक सराहना हुई। लेकिन यह भी जल्द ही सरकारी परिदृश्य से ओझल हो गया।

हालांकि, यह गैरसरकारी एजेंसियों, विशेषकर फाउंडेशन फॉर रिसर्च इन कम्युनिटी हेल्थ के लिये एक गंभीर चुनौती बनी रही। यह संस्था इस अवधारणा के मूल तत्वों के परीक्षण से जुड़ी थी कि ग्रामीण समुदाय अपने स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों का 70 प्रतिशत ख्याल कुछ स्थानीय महिलाओं (दाई) के प्रशिक्षण के जरिये कर सकता है।

फिर, स्वास्थ्य के स्तर में व्यथित कर देने वाली विषमता क्यों? 2005 की मध्यावधि समीक्षा के अनुसार सुधारात्मक कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। दसवीं योजना में सभी स्तरों की जनस्वास्थ्य व्यवस्थाओं के पुनर्गठन और पंचायती राज संस्थाओं को जिम्मेदारियां व कोष अंतरित करने की बात कही गई है। चूंकि पंचायती राज संस्थाओं को जिम्मेदारियां एवं कोष हस्तांतरित नहीं की गई है, इसलिये बच्चों (5 वर्ष से कम) एवं माताओं की मृत्यु से संबंधित दसवीं योजना के लक्ष्य एवं उद्देश्य

संभावित रूप से पूरे नहीं हो पाएँगे और भारत में कुपोषण के शिकार बच्चों की तादाद अधिक होगी। समीक्षा के निष्कर्षों में कहा गया है कि ग्रीब लोगों की स्वास्थ्य-सुरक्षा से संबंधित आधारभूत संरचना या तो क्रियाशील नहीं है या फिर वहां तक अधिकांश लोगों की पहुंच नहीं है। एक धारणा यह है कि सरकारी जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के असफल होने की मुख्य वजह शहरों में प्रशिक्षित डॉक्टरों एवं नर्सों का ग्रामीण क्षेत्रों में रहने व काम करने से कठराना है।

समय से सबको स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराना एक गंभीर चुनौती है।

पिछड़े क्षेत्र

पिछड़े क्षेत्र मृत नहीं हैं। लोग वहां रह रहे हैं और संसाधनों के दबाव की वजह से गुजारे लायक ही सही, पर कमा रहे हैं। हालांकि विपरीत परिस्थितियों में बने रहने के उनके जीवट से यह प्रतीत होता है कि वे संसाधनों से परिपूर्ण हैं। इसी तथ्य के पीछे इस राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रशासन का राज छिपा है। लोग क्या कर रहे हैं, उन्हें किन मज़बूरियों का सामना करना पड़ रहा है और आगे बढ़ने के प्रति उनकी सोच क्या है आदि तथ्यों का अध्ययन व सर्वेक्षण ग्राम सभाओं के माध्यम से किया जाना चाहिए। इस अभियान में संबंधित क्षेत्र में उपलब्ध तमाम शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं को शामिल और सक्रिय करना चाहिए और क्षेत्र में जनकल्याण में संलग्न सम्मानित नेतृत्व को प्रेरित करना चाहिए। इससे शक्ति और मज़बूरियों के साथ-साथ उपलब्ध सांस्थानिक संसाधनों को पहचानने में मदद मिलेगी और आधारभूत संरचना निर्माण के नयी दिल्ली के निर्धारित एजेंडे से बचा जा सकेगा।

इस साल की शुरुआत में 250 पिछड़े जिलों में विषमता व असमानता दूर करने के लिये पंचायती राज मंत्रालय को 5,000 करोड़ रुपये की राशि वाला पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष की जिम्मेदारी दी गई है। इसका मूल उद्देश्य इन क्षेत्रों में विकास को प्रेरित करना है। इसके दो विकल्प हैं। पहला, अतीत में लागू किए गए

5,000 करोड़ रुपये की राशि से 50 करोड़ रुपये की उपलब्ध प्राप्त करने सरीखे कार्यक्रमों के साथ आगे बढ़ा जाए। या फिर, एक मौलिक रचनात्मक प्रवृत्ति के साथ हर एक रुपये से तीन रुपये मूल्य की उपलब्ध हासिल की जाए और अपने हाथ में संचित उपर्युक्त राशि की उपलब्ध 15,000 करोड़ रुपये मूल्य के बराबर कर दी जाए।

विकास और सामाजिक भेदभाव सबसे पहले बच्चे

हमारे 15 वर्ष की आयु वाले कुल बच्चों में से आधे से अधिक कुपोषण के शिकार हैं। क्रूर तथ्य यह है कि हमारे पास अनाज की कमी नहीं है, पर वे बच्चों का पेट भरने की बजाय सरकारी गोदामों में पड़े हुए हैं। यदि यही होना है और ऐसे ही होना है तो विकास का मतलब क्या है?

क्या स्थिति की गंभीरता को पूरी संजीदगी से देखा गया है? एक साल पहले हमारे वित्तमंत्री ने संसद को बताया कि 0-3 वर्ष की आयु के 44 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। जबकि, योजना आयोग के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के 0-5 वर्ष के 50 फीसदी बच्चे कुपोषण से ग्रसित हैं। वित्तमंत्री ने समन्वित बाल विकास कार्यक्रमों के लिये जो इस प्रकार के बच्चों को पोषण प्रदान करते हैं, बजटीय आवंटन 2005-06 में बढ़ाकर 3,300 करोड़ रुपये कर दिया जिसे 2006-07 में और बढ़ाकर 4,000 करोड़ रुपये कर दिया गया। हालांकि, इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि इन बढ़े हुए आवंटनों से कुल कितने बच्चों को लाभान्वित किया जाएगा और भोजन उपलब्ध कराने की मात्रा क्या होगी। इस चुनौती पर सवेदना से अधिक विचार के साथ सोचने की आवश्यकता है।

महिलाओं के लिये महिलाओं द्वारा विकास योजना

राज्य-व्यवस्था में योजनाएं एक खास पद्धति से बनाई जाती हैं। योजना से संबंधित दस्तावेजों की व्यवस्था, कोष की मांग, उनका आवंटन और वितरण आदि प्रक्रियाएं इसी

पद्धति के नमूने हैं। विभाग, तकनीकी निकाय, फील्ड कार्यकर्ता और निगरानी व्यवस्था सरीखे कार्यान्वयन संबंधी संरचना इसी पद्धति का अनुसरण करते हैं।

दूसरी ओर, महिलाओं के लिये योजना निर्माण में 'समन्वित रणनीति' की आवश्यकता होती है (मोजर)। राज्य व्यवस्था में इसका एक अंतर्हीन सिलसिला है, जिसने बहुत कम ही अच्छा परिणाम दिया है। 'नोडल एजेंसियों' या 'राष्ट्रीय मशीनरी' के माध्यम से लक्ष्य हासिल करने का प्रयास भी सांगठनिक बाधाओं की वजह से बेकार साबित हुआ है।

दूसरे शब्दों में, योजना-निर्माण की वर्तमान व्यवस्था महिलाओं के लिये उपयुक्त नहीं है। पंचवर्षीय योजनाओं में महिला हितों का समन्वयन

फील्ड सर्वेक्षणों के माध्यम से प्राप्त द्वितीयक आंकड़े व सूचनाएं पर्याप्त रूप से इतने व्यापक और सही नहीं होते कि उनसे महिलाओं की स्थिति में समय-समय पर आए परिवर्तनों को रेखांकित किया जा सके। हालांकि, यदि योजना के फायदों को वंचित समूह की महिलाओं तक और अधिक कारण तरीके से पहुंचाया जा सके तो इन आंकड़ों व सूचनाओं से कुछ खास सांगठनिक या व्यवहार संबंधी संकेत अवश्य मिलते हैं।

सरकारी मशीनरी को कई तरह से बेहतर बनाया गया है और गांवों तक पहुंचाया गया है। किंतु यह ग्रीबों, (विशेषकर ग्रीब महिलाओं) की दशा में बेहतरी के रूप में परिलक्षित नहीं होता है।

भारतीय संविधान में वर्णित इस तथ्य को स्वीकार करने की आवश्यकता है कि पुरुषों के समान महिलाओं को भी सामाजिक या आर्थिक गतिविधियों में स्वतंत्र हैंसियत से भागीदार बनने का पूर्ण अधिकार है और वे महज घर की एक खामोश सदस्य भर नहीं हैं। इससे योजना निर्माण की समस्त अवधारणा में एक व्यापक बदलाव आएगा। □

(लेखक प्रसिद्ध गांधीवादी और योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य हैं)

योजना भवन और योजना की यादें

○ एच.बाई. शारदा प्रसाद

खुशबूति शिंह योजना के पहले संपादक थे। अपनी आत्मकथा में वे बताते हैं कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की मुख्य वजह यह थी कि वे “पूरे भारत में धूम सकें, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को देख सकें, बांधों, फैक्ट्रियों और ग्रामीण क्लिनिकों में जा सकें; छोटे शहरों व गांवों में ठहर सकें” और इस प्रकार अपने देश को जान सकें। अपने जीवन के इस चरण का वर्णन करने के लिये उन्होंने जिन शीर्षकों को चुना है, उन्हें ‘भारत की खोज’ कहना उचित होगा। जब योजना के मुख्य सूत्रधार मूल ‘भारत की खोज’ के लेखक थे तो, अन्य किसी को कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं थी। यही नहीं, इस योजना को सभी दलों व वर्गों का सर्वसम्मत समर्थन हासिल था।

कुशल फोटोग्राफर टी.एस. नागराजन के सहयोग से खुशबूति सिंह ने ‘खुशबूति फार्मूला’ (जिसे उन्होंने बाद के अंकों के संपादन के दौरान आजमाया) को अमल में लाए बगैर ही एक बेहद सजीव व पठनीय अंक निकाला। योजना तब न्यूज़प्रिंट पर टेबलायड आकार में प्रकाशित होती थी। उन्हें यह आशा थी कि उनकी यह पत्रिका पूरे देश में चर्चा का विषय बनेगी। लेकिन, सरकार द्वारा उपयुक्त वितरण नेटवर्क कायम करने में अक्षम होने के कारण उनकी इस उम्मीद पर पानी फिर गया। यहां तक कि सामुदायिक विकास केंद्रों को मुफ्त में वितरित की जाने वाली प्रतियां भी यूं ही पड़ी रह गईं। दो साल के इस हताशापूर्ण अनुभव के बाद 1958 के अंत में खुशबूति सिंह ने इस पत्रिका को छोड़ दिया।

उनके बाद मैंने कार्यभार संभाला। मेरी पृष्ठभूमि और प्रकृति खुशबूति सिंह से बिल्कुल भिन्न थी। एक पेशेवर समाचारपत्रकर्मी को

बेहद कम भ्रांतियां होती हैं और इसलिये उसे हतोत्साहित नहीं किया जा सकता। उनके उत्तराधिकारी के रूप में मैं यह दावा करत्यां नहीं करता कि जिन बिंदुओं पर खुशबूति सिंह असफल रहे थे वहां मैं सफल रहा। लेकिन, मैंने अपने कार्य को बेहद संतोषजनक पाया। खुशबूति सिंह के जमाने में शुरू की गई कई सकारात्मक चीजों को मैंने बरकरार रखा। रिपोर्टज़ एवं विवरण तथा वार्तालाप के लहजे में लेखन पर उनके द्वारा दिए गए जोर को मैंने भी जारी रखा। लेकिन, मैंने बहस और परिचर्चा को और अधिक स्थान दिया। आखिरकार योजना भी बहस और विवाद का विषय बनती जा रही थी। योजना भवन में आलोचना और तिरस्कार करने वाले लोग भी थे। देश के वित्तमंत्री टी.टी. कृष्णमाचारी तक ने कहा कि योजना आयोग द्वारा जितनी मात्रा में कागज़ बर्बाद किया गया उतने में देश एक नया जहाज़ बन सकता था। कई दूसरे लोगों ने योजना आयोग को ‘तरलोक सभा’ कहते हुए आयोग के मुख्यालय तरलोक सिंह पर कटाक्ष किया और आयोग के, जिसका मुख्यालय संसद भवन से अधिक दूर नहीं था, संविधानेतर स्वरूप पर अप्रत्यक्ष हमला किया।

मैंने योजना भवन को काम करने का एक उपयुक्त स्थान पाया। यह सरकार में एक विश्वविद्यालय जैसा स्थान था। इसने एक रूटीन सरकारी कार्यालय के बोझिल वातावरण की बजाय कालेजनुमा वातावरण को बरकरार रखा। यहां विचारों की परवाह करने वाले पुरुषों और महिलाओं की बड़ी तादाद थी। आप अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उन नामचीन हस्तियों से मिल सकते थे जो यहां योजनाकारों से मिलने आते थे अथवा आयोग में सलाहकार के रूप में कार्य करते थे। मुझे प्रोफेसर रोजेन्स्टीन रोडान, जॉन रॉबिन्सन, अल्वा

मिरडल, डॉ. पाल अप्पलेबी और नोरमन बोरलॉग के साथ हुई बातचीत याद आती है। वी.टी. कृष्णमाचारी, गुलजारीलाल नंदा और अशोक मेहता सरीखे योजना आयोग के उपाध्यक्ष सहज ही उपलब्ध और उदार थे। और, तरलोक सिंह हमेशा मददगार थे।

योजना भवन में जिन लोगों के साथ मेरी निकटतम और टिकाऊ मित्रता हुई उनमें पीतांबर पंत, काली विश्वास, के.एन. श्रीराज, एस.आर. सेन, के.एस. कृष्णस्वामी, ए. वैद्यनाथन, टी.एन. श्रीनिवासन और बी.एन. मिन्हास प्रमुख हैं। इन लोगों ने देश की समस्याओं को गहराई से समझने में मुझे सहायता प्रदान की। मैं विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों और लेखकों को योजना के लिये अपना योगदान देने के लिये राजी करने में सफल रहा। एक बार इकोनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली के संस्थापक-संपादक सचिन चौधरी ने मजाकिया उलाहना के स्वर में मुझसे कहा कि उनके यहां लिखने वाले सभी लेखकों को योजना अपनी और खींच रहा है। योजना को समृद्ध करने वालों में एस. श्रीनिवासाचार, शीला धर, एम.ए. हुसैनी, अमूर कृष्णस्वामी व एम.के. परधी (जो सहायक संपादक थे) और फोटोग्राफर टी.एस. नागराजन प्रमुख थे। मैं योजना आयोग में रिसर्च अधिकारी आई. ई.सोरेस, जिनका हाल ही में निधन हुआ, का भी उल्लेख करूंगा जिन्होंने स्वयं को योजना परिवार के साथ जोड़ा।

और चूंकि यह पत्रिका एक संदर्भ पत्रिका के रूप में स्थापित होती गई, इसका आकार भी बदलता गया। ब्लिंड्ज के आकार से बदलकर यह और अधिक पारंपरिक और आसानी से संग्रह करने के लायक आकार में तब्दील हो गया। विभिन्न विश्वविद्यालयों के अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र विभाग के

साथ-साथ समाचारपत्रों के दफ्तरों में यह एक आवश्यक पठन सामग्री बन गई। हमने योजना के उद्देश्यों को इन शब्दों में परिभाषित किया: “योजना सरकारी कार्यक्रमों की सहायता समाज के प्रत्येक वर्ग तक इसके संदेशों व अर्थों को पहुंचाकर, हमारी प्रगति की कथा सुनाकर, इसकी कमियों को इंगित कर विकास की समस्याओं की वस्तुनिष्ठ पहचान और खुली बहस को प्रोत्साहित कर, विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों के बीच बौद्धिक संवाद को बढ़ावा देकर तथा अन्य परिक्रामाओं को उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराकर कर रही है।”

वस्तुनिष्ठता का दावा यूं ही नहीं था। मुझे याद आता है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना पर केंद्रित योजना के एक विशेषांक में प्रकाशित इस आशय के एक लेख को, जिसमें उक्त योजना के मसौदे को ‘बिना युद्धघोष के युद्ध

के मैदान में जाना’ कहा गया था, जवाहरलाल नेहरू ने इस कदर गंभीरता से लिया था कि तीसरी पंचवर्षीय योजना की भूमिका उन्होंने खुद अपने हाथों से लिखा। बाद में पंडितजी के निजी सचिव से मुझे ज्ञात हुआ कि योजना उन पत्रिकाओं में से थी जिसे जवाहरलाल नेहरू प्राप्त होते ही अपनी मेज पर रखने का निर्देश देते थे।

मुझसे यह अक्सर पूछा जाता है कि एक सरकारी पत्रिका में सरकार की आलोचना करने वाले इन्हें अधिक लेख मैं कैसे छाप लेता था। मेरा जवाब है, “किसी व्यक्ति से अनुमति या सहमति नहीं लेकर।” सुझाव के साथ समस्या यह है कि यह मांगने पर दी जाती है और सहमति के साथ दिक्कत यह है कि मांगने पर यह रोक रखी जाती है।

मैं एक और तथ्य का उल्लेख करना चाहता

हूं। योजना के संपादक के तौर पर मैंने यह नियम बनाया (खुशवंत ने भी बनाया था) कि इस पत्रिका में न तो किसी मंत्री या अधिकारी की ओर न ही किसी परियोजना के उद्घाटन समारोह की तस्वीर प्रकाशित की जाएगी। एक अन्य नियम यह भी था कि बगैर मांगे किसी लेख को, चाहे वह किसी बड़े और प्रभावशाली की ही क्यों न हो, नहीं छापा जाएगा। मैंने पंडित नेहरू की तस्वीर एक मर्तबा तभी छापी जब उनका देहांत हो गया।

हम राष्ट्र निर्माण में योगदान करने वाले अनेक अज्ञात लोगों के बारे में लिखने में सक्षम थे और यह नहीं सोचते थे कि विकास की प्रक्रिया सिर्फ आर्थिक प्रगति तक ही सीमित है।

(लेखक योजना के भूतपूर्व संपादक हैं)

(पृष्ठ 97 का शेषांश)

● ग्रामीण बीमा विकास कोष

ग्रामीण बीमा के विस्तार के लिये विकास कार्य हाथ में लेने के लिये ग्रामीण बीमा विकास कोष की स्थापना की जा सकती है।

● फसल बीमा

करीब 14 प्रतिशत किसानों को फसल बीमा के अधीन कवर किया जा रहा है। आवश्यकता एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार सभी किसानों और सभी फसलों को इसमें शामिल करने की है।

प्रौद्योगिकी

प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रमुख बाहक है। प्रौद्योगिकी थकान और प्रौद्योगिकी अंतर दोनों से बचा जाना चाहिए। इसके लिये अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार को पुनर्जीवित करने की ज़रूरत होगी। सुझाव है कि आईसीएआर की सभी संस्थाएं और सभी कृषि विश्वविद्यालय वर्ष 2006-07 को कृषि प्रौद्योगिकी वर्ष के रूप में मनाया जाए। इस वर्ष का प्रमुख उद्देश्य कृषक परिवारों के साथ अनुसंधान और ज्ञान प्रबंधन में भागीदारी को सुदृढ़ बनाया जाना होगा।

भूमिहीन खेतिहार मज़दूरों को कुशल मज़दूरों में बदलना हमारा उद्देश्य होना चाहिए ताकि वे

अपने समय और श्रम का अधिक आर्थिक लाभ उठा सकें। प्रशिक्षण उन कौशलों में दिया जाना चाहिए, जो बाजार की मांग के अनुसार उद्यम को संगठित कर सकें। प्रशिक्षण का तरीका खुद करके अनुभव प्राप्त करने वाला होना चाहिए- करो और सीखो।

उत्पादन के लिये आदानों की आवश्यकता होती है। अतः उचित आदान, सही समय और सही कीमत पर उपलब्ध होना चाहिए। आदान आपूर्ति प्रणाली किसानों की हितैषी होनी चाहिए और जहां तक संभव हो, इसका नियंत्रण कृषक स्वसहायता समूह के हाथ में होना चाहिए। गुणवत्ता मानकों को सख्ती से अपनाया जाना चाहिए। प्रौद्योगिकी पैकेज को प्रभावी होने के लिये उसके साथ-साथ विस्तार और आदान आपूर्ति क्षेत्रों में उपयुक्त पैकेज के साथ ही आजमाना चाहिए।

बाजार

जीवन पद्धति और आजीविका दोनों ही रूपों में कृषि की आर्थिक संभाव्यता का निर्णय अंततः उसके सुनिश्चित और लाभकारी विपणन के अवसरों पर ही निर्भर करेगा। बाजार सुधार का कार्य उत्पादन-उपयोग-व्यापार शृंखला की हरेक कड़ी पर

पूरा और समय पर ध्यान दिया जा सके।

हमें लगातार हो रहे कृषि के पतन पर मूक दर्शक नहीं बने रहना चाहिए। मानव सुरक्षा और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता, दोनों ही दांव पर लगे हैं। समग्र आर्थिक विकास का तब तक कोई अर्थ नहीं है, जब तक हम अपनी जनसंख्या के 60 प्रतिशत लोगों के आर्थिक स्वास्थ्य और उत्तरजीविता पर ध्यान नहीं देते। यदि कृषि नवीकरण वर्ष के कार्यक्रम पर तेज़ी से और समर्पण की भावना से काम किया गया तो बिना सामाजिक और पर्यावरणीय हानि के यह हमारे खेतों की उत्पादकता और लाभदेयता में निरंतर सुधार लाकर देश को एक सदाबहार हरित क्रांति के पथ पर ले जाने में मदद कर सकेगा। छोटे जोतों की उत्पादकता में सुधार का एक अकेला कदम ही देश से भूख और ग्रीष्मीय मिटाने में सबसे बड़ा योगदान होगा। इसी के साथ, फसलोपरांत प्रौद्योगिकी और कृषि प्रसंस्करण में प्रस्तावित आईसीएआर-सीएसआईआर 60 हजार प्रयोगशाला से खेतों तक प्रदर्शन कार्यक्रमों के जरिये गैर-कृषिगत रोज़गार के अनेक अवसरों के साधन से ही देश भारत निर्माण के पूर्व लाभों को हासिल कर सकेगा। □

(लेखक राष्ट्रीय कृषक आयोग के अध्यक्ष हैं;

1 अगस्त, 2006 अंक से)

राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा 11वीं योजना के मसौदे को मंजूरी

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा कृषि के पुनर्जागरण के आहवान के साथ राष्ट्रीय विकास परिषद ने 11वीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे को मंजूरी दे दी है।

डॉ. सिंह ने 11वीं योजना के दौरान नौ प्रतिशत की विकास दर के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु 'कठिन' नीतिगत परिवर्तनों के लिये राज्यों से सहयोग मांगते हुए कहा कि कृषि क्षेत्र गंभीर संकट में है और आधारभूत, संरचना के क्षेत्र में कई बड़ी बाधाएं हैं।

देश की 11वीं योजना के मसौदे की मंजूरी के लिये आहूत राष्ट्रीय विकास परिषद की 52वीं बैठक का उद्घाटन करते हुए डॉ. सिंह ने कहा, "हमें कई बाधाओं को पार करना है, जिनमें से अधिकांश के लिये केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कठिन नीतिगत परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।"

दसवीं योजना के दौरान पिछले चार वर्षों से 8 प्रतिशत की विकास दर के साथ भारत को मज़बूती के साथ तेज़ी से प्रगति करने वाले विकासशील राष्ट्र की कतार में शामिल कराने वाली अर्थव्यवस्था के बेहतर प्रदर्शन की सराहना कहते हुए डॉ. सिंह ने कहा, "दुनिया ने हमारी संभावनाओं का सकारात्मक आकलन किया है और यह देश में होने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के तेज़ प्रवाह से ज़ाहिर भी है।"

मुद्रास्फीति की समस्या को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा, "हम इसे पांच प्रतिशत के भीतर के स्तर पर नियंत्रित करने के लिये कठिबद्ध हैं।" उन्होंने यह भी कहा, "इस योजना में कृषि क्षेत्र की कमज़ोरियों को दूर करने को सर्वोच्च प्राथमिकता अवश्य देनी चाहिए।"

कृषि क्षेत्र का पुनरुत्थान किए बगैर हम समन्वित विकास की अपेक्षा नहीं कर सकते।" कृषि क्षेत्र, जिस पर कुल ग्रामीण जनसंख्या का आधा हिस्सा निर्भर है, में 1990 के दशक के मध्य से लेकर अब तक होने वाले दो प्रतिशत से भी कम वार्षिक विकास दर की

ओर इशारा करते हुए डॉ. सिंह ने कहा, "आज संपूर्ण कृषि व्यवस्था संकट में है।"

वर्ष 2007-12 के दौरान नौ प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि का विस्तृत खाका खींचते हुए डॉ. सिंह ने कहा, "आधारभूत संरचना के क्षेत्र में निजी निवेश को तेज़ी से बढ़ावा देना होगा, जिसे योजना के मसौदे में विकास दर को दहाई अंक में ले जाने के क्रम में एक बड़ी बाधा माना गया है।"

सड़क, रेलवे, बंदरगाह, हवाई अड्डा और ऊर्जा के क्षेत्रों में वृहद पैमाने पर विस्तार और गुणात्मक विकास की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, "इस प्रकार के विस्तार कार्यों के लिये बड़े पैमाने पर निवेश की ज़रूरत है और इसे सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के जरिये प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

उन्होंने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि यदि ऊर्जा क्षेत्र वित्तीय दृष्टि से अव्यावहारिक हो तो निजी-सरकारी भागीदारी से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी जोड़ा कि आधारभूत संरचना के विकास के क्रम में सार्वजनिक निवेश का उपयोग उन क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जिनमें निजी क्षेत्र कोई रुचि नहीं दिखाते।

उन्होंने कहा, "तीव्र विकास के लिये अपेक्षित निवेश निजी क्षेत्र की ओर से आएगा और इसके लिये एक मज़बूत आर्थिक ढांचा, निवेशकों के अनुकूल माहौल तथा नये उद्यमियों की ज़रूरतों का ख्याल रखने में सक्षम एक मज़बूत एवं कल्पनाशील वित्तीय क्षेत्र की आवश्यकता होगी।"

हालांकि, डॉ. सिंह ने चेताया कि सकल बजटीय समर्थन राजकोषीय दूरदर्शिता एवं स्थिरता की कीमत पर नहीं दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि सकल बजटीय समर्थन में विभिन्न राज्यों तथा केंद्र द्वारा 2.5 प्रतिशत की वृद्धि "न्यूनतम वृद्धि है जिसके जरिये कृषि आधारभूत संरचना तथा सामाजिक क्षेत्र में

सार्वजनिक निवेश के अपने महत्वाकांक्षी एजेंडे को आगे बढ़ा सकते हैं।"

इस संदर्भ में सभी मुख्यमंत्रियों से समर्थन की अपील करते हुए उन्होंने कहा, "केंद्र एवं विभिन्न राज्यों के बीच जिम्मेदारियों के बंटवारे का मुद्दा एक नाजुक मसला है।"

उनका कहना था कि एक लंबे समय तक केंद्र के संसाधनों को उन क्षेत्रों में लगाया जाता रहा है जिनमें राज्य सरकारों की प्राथमिक जिम्मेदारी थी। उन्होंने कहा, "इस प्रकार के कार्यक्रमों के संपूर्ण लागत में राज्यों की एक अहम हिस्सेदारी अवश्य होनी चाहिए। इससे भागीदारी का अहसास बढ़ेगा और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में दक्षता आएगी।"

एक समृद्ध, समतावादी एवं समन्वित राष्ट्र के रूप में भारत का आहवान करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि हाशिये पर खड़े वर्गों- अनुसूचित जाति/जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों और बच्चों का देश के 'संसाधनों पर पहला अधिकार' होना चाहिए ताकि वे सबल हो सकें। उन्होंने अल्पसंख्यकों के कल्याण को चिंता का एक महत्वपूर्ण विषय बताया।

आने वाले वर्षों में निपुण मानव संसाधन में संभावित कमी की ओर इशारा करते प्रधानमंत्री ने कहा कि देश को 'प्राथमिक शिक्षा से परे माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की ओर' बढ़ना होगा।

डॉ. सिंह ने सुनिश्चित रोज़गार के जरिये ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षातंत्र विकसित करने के उद्देश्य से देश के सभी जिलों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कार्यक्रम के विस्तार के प्रति केंद्र की प्रतिबद्धता को भी दोहराया।

समन्वित विकास की ज़रूरत पर बल देते हुए उन्होंने कहा, "हमें ऐसे महत्वाकांक्षी योजनाओं के निर्माण की ज़रूरत है जिससे अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों को भी विकास के फल में से वाज़िब हिस्सा प्राप्त हो सके।"

RAU'S IAS

A name that Nation trusts

Amazing Success

Our 2005 Exam Results : Nine positions secured by our students in first 20 and 49 in first 100 with overall 203 total selections. As regards the past achievements, Study Circle has contributed nearly one-third of the total selections done for Civil Services by UPSC since 1953.

It is a well known fact that Rau's is the most trusted and recommended name all over the country for IAS & PCS coaching.

Unbeatable Strategy

Answers that matter : The most crucial fact about coaching is that it should improve the quality of your answers in the minimum possible time. It is precisely this training on which we focus on at Rau's to give an extra edge to the answers you give / write in the Civil Services Examination.

Be Sure

We have no branches or associates anywhere in India except Jaipur. Our name which has become a legend among students for the highest standards in teaching, and hence has been copied by a lot of people across India, but no one can match our quality.

Programme Highlights

Civil Services/PCS Exam - 2007 & Judicial Services Exam - 2007

- ◆ Personal Guidance (English Medium) is available for -
General Studies/ Essay, History, Sociology, Public Administration, Geography, Psychology, Law & Commerce.
- ◆ पर्सनल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
सामान्य अध्ययन / निर्बंध, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र एवं लोक प्रशासन में उपलब्ध।
- ◆ Postal Guidance in English Medium available for -
General Studies, History, Sociology, Public Administration and Geography.
- ◆ पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
केवल सामान्य अध्ययन, भारतीय इतिहास एवं भूगोल में उपलब्ध।
- ◆ Hostel facility arranged.

**कोई भी लक्ष्य बड़ा नहीं ।
जीता वही जो डरा नहीं ॥**

**If you are taught by
the stars, sky is the limit.**

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO of Rs. 50/- favouring



RAU'S IAS STUDY CIRCLE

Head Office : 309, Kanchanjunga Bldg., 18, Barakhamba Road, Connaught Place, New Delhi-110001

Phone : 23738906-07, 23318135-36, 32448880-81, 65391202, Fax: 23317153

Jaipur Centre : 701, Apex Mall, Lal Kothi, Tonk Road, Jaipur - 302015, Ph.: 0141-6450676, 3226167, 9351528027

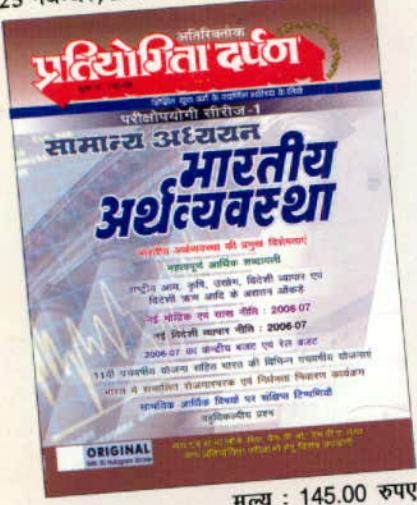
For full details on fast-track log-on our website: www.rauias.com

The Original Rau's / Rao's - Since 1953

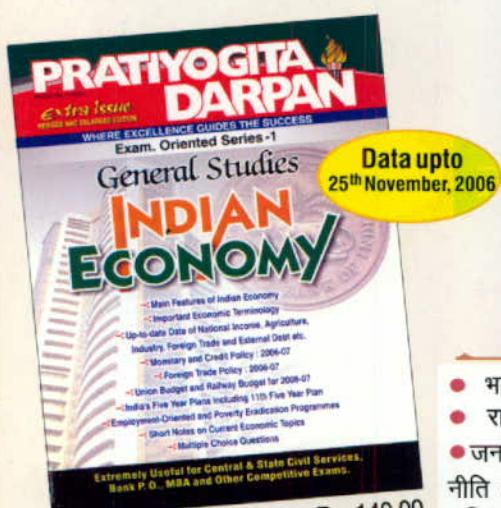
संघ एवं राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के सामान्य अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभदायक सामग्री, विभिन्न विश्वविद्यालयों के भारतीय अर्थशास्त्र के प्रश्न-पत्र के लिए भी उपयोगी.

अब बिक्री के लिए
उपलब्ध

25 नवम्बर, 2006 तक के अद्यतन आँकड़े



मूल्य : 145.00 रुपए



Price : Rs. 140.00

To purchase online log on to
www.pratiyogitadarpan.org

प्रतियोगिता दर्पण

2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : 2530966, 2531101, 3208693/4

Fax : (0562) 2531940 E-mail : info@pratiyogitadarpan.org Website : www.pratiyogitadarpan.org

फोन नं. : दिल्ली 23251866, 23251844, इन्हौर 2535892, पटना 3094629, लखनऊ 2270019, इलाहाबाद 2460028, कोलकाता 22527816
चरखी दादरी (01250) 220120, जयपुर 2326019, देहरादून 2658555, रायपुर 2225851, रैंडी 2307374, घनबाद 2203179, मुमई 22075640

टॉपर्स की राय में...

...प्रतियोगिता दर्पण के अतिरिक्तांक योजनाबद्द, संक्षिप्त, सटीक एवं अद्यतन तथ्यों से परिपूर्ण हैं।

—सुश्री मोना प्रूथी
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में प्रथम स्थान

...प्रतियोगिता दर्पण की अतिरिक्तांक सीरीज बहुत ही अच्छी एवं लाभदायक है। इसमें प्रारम्भिक परीक्षा से सम्बन्धित सभी जानकारी एक ही स्थान पर एकत्रित मिल जाती है। मैंने भारतीय अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक का उपयोग किया है तथा इसे बेहद लाभप्रद पाया है। मुझे सम्पूर्ण विश्वसनीय जानकारी एक ही स्थान पर मिल गई।

—सुश्री गुरनीत तेज
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में द्वितीय स्थान

...प्रतियोगिता दर्पण की अतिरिक्तांक सीरीज वास्तव में विलक्षण है। इसके भारतीय अर्थव्यवस्था तथा राजनीति विज्ञान के अतिरिक्तांक से मुझे विशेषकर बहुत सहायता मिली।

—रम्योंद कुमार
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में तृतीय स्थान

...प्रतियोगिता दर्पण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्तांक सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए परम उपयोगी है।

—जुहैर बिन सगीर
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में 5वाँ स्थान

...प्रतियोगिता दर्पण के भूगोल तथा अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांकों में ऐसे बहुविकल्पीय प्रश्नों का समावेश है जैसे कि सिविल सर्विस परीक्षाओं में अक्सर पूछे जाते हैं।

—डॉ. अभिनव
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में 12वाँ स्थान

मुख्य आकर्षण

- भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं—एक दृष्टि में
- महत्वपूर्ण आर्थिक शब्दावली
- राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण आदि के अद्यतन आँकड़े
- जनगणना-2001 के अन्तिम आँकड़े● मौद्रिक एवं साख नीति : 2006-07 ● विदेशी व्यापार नीति : 2006-07 ● 2006-07 का केन्द्रीय बजट एवं रेल बजट ● 11वीं पंचवर्षीय योजना सहित भारत की समस्त पंचवर्षीय योजनाएं ● भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्भनता निवारण कार्यक्रम ● भारत-2006, आर्थिक समीक्षा : 2005-06 तथा प्रमुख केन्द्रीय मंत्रालयों के नवीनतम प्रतिवेदनों पर आधारित महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री ● सामग्रिक आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ ● महत्वपूर्ण बहुविकल्पीय प्रश्न.